अंक : 65, भाग : 2, वर्ष : 2019-20
Vol. : 65, No. : 2, Year : 2019-20

ISSN:0554-9884
U.G.C. Care List Journal
PRAJÑĀ in GROUP 'B'
Multidisciplinary (21) & Indian Language (45)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका

प्रज्ञा

PRAJÑĀ

''महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक''

पूज्य मालवीय जी के प्रति महात्मा गांधी के उद्‌गार

मैं तो मालवीजी महाराज का पुजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुति के वचन लिख सके? जो कुछ लिखेगा उसे अपूर्ण सा प्रतीत होगा। मालवीजी के दर्शन मैंने सन् 1890 की साल में चित्र द्वारा किया था, वह चित्र विलायत में इंडिया पत्र जो मो. डिगबी निकालते थे उसमें था। माना जाय कि वही छबि मैं आज भी देख रहा हूँ। जैसे उनके लिबास में ऐसे ही उनके विचार में ऐक्य चला आया है और इस ऐक्य में मैंने माधुर्य और भक्ति पाये हैं। आज मालवीजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है? यौवन काल से आरम्भ करके आज तक उनकी देश-भक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है। काशी विश्वविद्यालय के मालवीजी प्राण हैं, काशी विश्वविद्यालय मालवीजी का प्राण है, यह नरवीर हमारे लिये दीर्घायु हो।

विलायत जाते हुए **मोहनदास गांधी**

7-9-31

प्रज्ञा

PRAJÑĀ

''महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक''

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अंक 65, भाग 2

वर्ष 2019-20

Published
by
The Banaras Hindu University

PRAJÑĀ
(Journal of the Banaras Hindu University)
Vol. 65 No. 2, 2019-20: "MAHATMA GANDHI SMRITI VESHESHANK"
ISSN 0554-9884
U.G.C Care List Journal
PRAJÑĀ in GROUP 'B'
Multidisciplinary (21) & Indian Language (45)

© Banaras Hindu University
January, 2020

All correspondence should be addressed to
The Editor 'PRAJÑĀ'
BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI - 221 005

Printed at
B.H.U. Press
BANARAS HINDU UNIVERSITY

प्रज्ञा

मुख्य संरक्षक : प्रो. राकेश भटनागर

कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संरक्षक मण्डल

प्रो. विजय कुमार शुक्ला
रेक्टर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रो. आर.के. जैन
निदेशक, चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रो. प्रमोद कुमार जैन
निदेशक, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (बी.एच.यू.)

प्रो. अनिल कुमार त्रिपाठी
निदेशक, विज्ञान संस्थान

प्रो. रमेश चन्द
निदेशक, कृषि विज्ञान संस्थान

प्रो. ए. एस. रघुबंशी
निदेशक, पर्यावरण एवं धारणीय विकास संस्थान

प्रो. सुजीत कुमार दुबे
निदेशक, प्रबन्ध शास्त्र संस्थान

प्रो. विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र 'विनय'
प्रमुख, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय

प्रो. इनु मेहता
प्राचार्या, महिला महाविद्यालय

प्रो. दिप्ती प्रकाश मोहन्ती
प्रमुख, दृश्य कला संकाय

प्रो. आर.पी. पाठक
प्रमुख, सामाजिक विज्ञान संकाय

प्रो. रूद्र प्रकाश राय
प्रमुख, विधि संकाय

प्रो. राजेश शाह
प्रमुख, संगीत एवं मंच कला संकाय

प्रो. ओम प्रकाश राय
प्रमुख, वाणिज्य संकाय

सम्पादक मण्डल

प्रो. जय शंकर झा
अंग्रेजी विभाग, कला संकाय

प्रो. सदाशिव कुमार द्विवेदी
संस्कृत विभाग, कला संकाय

प्रो. राधेश्याम राय
हिन्दी विभाग, कला संकाय

प्रो. देवेन्द्र कुमार
सिरामिक अभियांत्रिकी विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (बी0एच0यू0)

प्रो. कमल नयन द्विवेदी
द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रो. आनन्द प्रसाद मिश्र
भूगोल विभाग, विज्ञान संस्थान

प्रो. मिथिलेश कुमार पाण्डेय
अंग्रेजी विभाग, कला संकाय

प्रो. सुमन जैन
महिला महाविद्यालय

डॉ. ज्ञान प्रकाश मिश्र
पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, कला संकाय

डॉ. शत्रुघ्न त्रिपाठी
ज्योतिष विभाग, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकाय

सम्पादक

प्रो. अशोक सिंह
प्रमुख, कला संकाय

मुख्य सम्पादक (मानद)

प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय
इमरिटस प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

कुलगीत

मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्वविद्या की राजधानी।
यह तीन लोकों से न्यारी काशी।
सुज्ञान धर्म और सत्यराशी॥
बसी है गंङ्गा के रम्य तट पर, यह सर्वविद्या की राजधानी। मधुर०॥
नये नहीं हैं ये ईंट पत्थर।
है विश्वकर्मा का कार्य सुन्दर॥
रचे हैं विद्या के भव्य मन्दिर, यह सर्वसृष्टी की राजधानी। मधुर०॥
यहाँ की है यह पवित्र शिक्षा।
कि सत्य पहले फिर आत्म-रक्षा॥
बिके हरिश्चन्द्र थे यहीं पर, यह सत्यशिक्षा की राजधानी। मधुर०॥
वह वेद ईश्वर की सत्यबानी।
बनें जिन्हें पढ़ के ब्रह्मज्ञानी॥
थे व्यास जी ने रचे यहीं पर, यह ब्रह्म-विद्या की राजधानी। मधुर०॥
वह मुक्तिपद को दिलानेवाले।
सुधर्मपथ पर चलाने वाले॥
यहीं फले-फूले बुद्ध शंकर, यह राज-ऋषियों की राजधानी। मधुर०॥
सुरम्य धाराएँ वरुणा अस्सी।
नहाए जिनमें कबीर तुलसी॥
भला हो कविता का क्यों न आकर, यह वागविद्या की राजधानी। मधुर०॥
विविध कला अर्थशास्त्र गायन।
गणित खनिज औषधि रसायन॥
प्रतीचि-प्राची का मेल सुन्दर, यह विश्वविद्या की राजधानी। मधुर०॥
यह मालवी की है देशभक्ति।
यह उनका साहस यह उनकी शक्ति॥
प्रकट हुई है नवीन होकर, यह कर्मवीरों की राजधानी।
मधुर मनोहर अतीव सुन्दर, यह सर्वविद्या की राजधानी॥

- डॉ. शान्ति स्वरूप भटनागर

★

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

भारतरत्न पं० मदन मोहन मालवीय जी

संस्थापक - काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आविर्भाव : वि.सं. 1918 पौषकृष्ण 8 (25.12.1861)
तिरोभाव : वि.सं. 2003 मार्गशीर्षकृष्ण (12.11.1946)

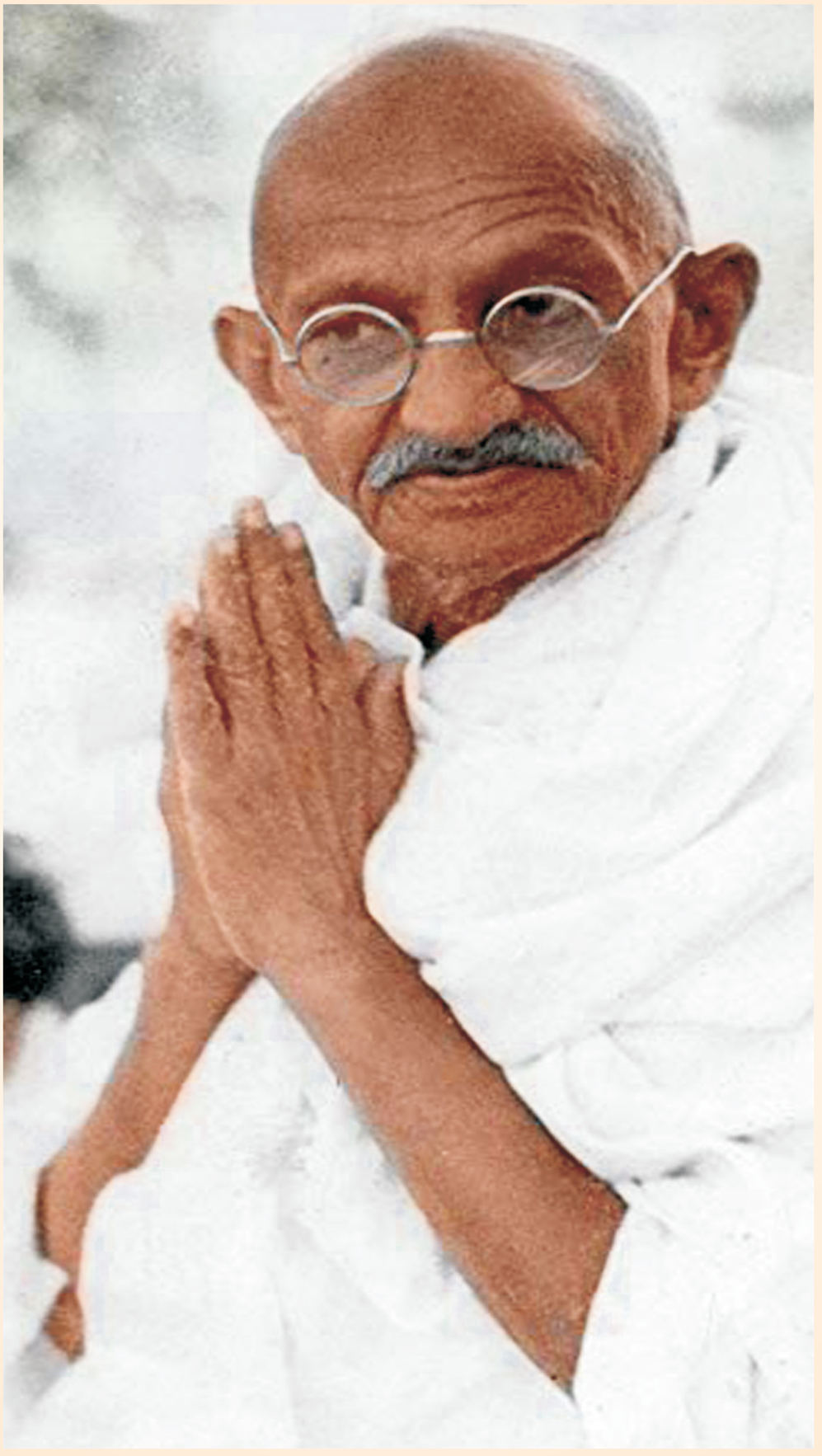

सत्यमेव जयते

प्रधान मंत्री
Prime Minister

संदेश

महात्मा गांधी जी की जयंती के 150 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा 'प्रज्ञा' जर्नल के 'महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक' के प्रकाशन के बारे में जानकर प्रसन्नता हुई है।

स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर अब तक, हमारे जीवन के विविध पहलुओं और विचारों में गांधी जी के आदर्शों और सिद्धांतों की अमिट छाप स्पष्ट रूप से दिखती है। उनके विराट चिंतन में राष्ट्रीयता, सत्य, अहिंसा, करुणा, समानता, नैतिकता और दर्शन से लेकर स्वच्छता जैसे जीवन को दिशा देने वाले सभी विषय समाहित हैं।

बदलते समय के साथ गांधी जी के जीवन दर्शन और विचारों की प्रासंगिकता पूरी दुनिया में बढ़ी है। मुझे विश्वास है कि गांधी जी के जीवन व विचारों को जन-जन तक, विशेषकर युवा पीढ़ी तक पहुंचाने में महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

विशेषांक के प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों को बधाई व शुभकामनाएं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
भाद्रपद 29, शक संवत् 1941
20 सितंबर, 2019

डॉ. श्रीनिवास पाण्डेय
मुख्य संपादक (मानद), प्रज्ञा जर्नल
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
उत्तर प्रदेश- 221005

डि. प्रशांत कुमार रेड्डी, भा.प्रशा.से.
D. Prasanth Kumar Reddy, IAS

सत्यमेव जयते

भारत के उप-राष्ट्रपति के निजी सचिव
PRIVATE SECRETARY
TO THE VICE-PRESIDENT OF INDIA
नई दिल्ली/NEW DELHI - 110011
TEL.: 23016344 / 23016422 FAX : 23018124

संदेश

महामहिम उपराष्ट्रपति जी को यह जानकर हर्ष हुआ है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी द्वारा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के 150वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में "प्रज्ञा" के "महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक" का प्रकाशन किया जा रहा है जो कि सराहनीय प्रयास है।

वर्तमान समय में गांधी जी के विचार हमारे लिए नैतिकता के प्रामाणिक मानदंड स्थापित करते हैं। गांधी जी को सामूहिक जन चेतना और क्षमता पर अगाध विश्वास था। हमारी साझी नियति के प्रति उनका विश्वास और सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों को दूर करने के प्रति उनके संकल्पनिष्ठ प्रयास, आज भी हमारे लिए प्रासंगिक हैं।

"प्रज्ञा" के प्रकाश्यमान "महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक" की सफलता हेतु माननीय उपराष्ट्रति जी अपनी हार्दिक शुभकामनाऐं संप्रेषित करते हैं।

प्रशांत
(डि. प्रशांत कुमार रेड्डी)

नई दिल्ली;
19 दिसंबर, 2019

सत्यमेव जयते

अध्यक्ष, लोक सभा

SPEAKER, LOK SABHA

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के अवसर पर अपनी पत्रिका **'प्रज्ञा जर्नल'** का विशेष स्मारक संस्करण प्रकाशित कर रहा है।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना महान बुद्धिजीवी और दूरदर्शी महामना पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा की गई थी जो यह समझ गए थे कि राजनैतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकेगी, जब हम प्रगतिशील, शिक्षित और सुसंस्कृत युवाओं की पीढ़ी को तैयार कर पाएंगे। समय के साथ, यह विश्वविद्यालय भारत के सर्वोत्तम शिक्षा केंद्रों में से एक केंद्र के रूप में विकसित हो गया है जिसमें उपयुक्त शिक्षण परिवेश और विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए बेहतरीन सुविधाएं उपलब्ध हैं। यह विश्वविद्यालय ऐसी मेधावी पीढ़ी तैयार करने में प्रयासरत है जो न केवल अपने विषयों से भली-भांति परिचित हो बल्कि बौद्धिक रूप से प्रखर हो और सामाजिक रूप से भी जागरूक हो। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय जिस प्रकार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर विशेष रूप से विज्ञान, साहित्य, प्रबंधन, प्रौद्योगिकी और कला के क्षेत्रों में अपना उल्लेखनीय योगदान दे रहा है, मैं उसकी सराहना करता हूं।

"महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक" राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी को समर्पित है जिनके बारे में महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंसटाईन ने लिखा था कि **'आने वाली नस्लें शायद मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि हाड़-मांस से बना हुआ कोई ऐसा व्यक्ति भी धरती पर चलता-फिरता था।' जिन आदर्शों को मशाल बनाकर उन्होंने भारत की आजादी के लिए संघर्ष किया वह अतुलनीय है।** महात्मा गांधी की 150वीं जयंती के अवसर पर सत्य, अहिंसा, शांति, सादगी और भाईचारा के उन आदर्शों से नई पीढ़ी को परिचित कराने हेतु यह विशेष अंक वास्तव में बहुत सार्थक और उपयोगी होगा और इसके लिए मैं ***'प्रज्ञा जर्नल'*** पत्रिका से जुड़े सभी लोगों के प्रति धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

पत्रिका के सफल प्रकाशन की शुभकामनाओं सहित।

(ओम बिरला)

राजनाथ सिंह
RAJNATH SINGH

सत्यमेव जयते

रक्षा मंत्री
भारत
DEFENCE MINISTER
INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी की "**प्रज्ञा**" पत्रिका के "महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक" का प्रकाशन किया जा रहा है।

यह गर्व का विषय है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा महात्मा गाँधी के 150वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में पत्रिका "**प्रज्ञा**" के 'महात्मा गाँधी स्मृति विशेषांक' का प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया है। यह एक सराहनीय प्रयास है। "**प्रज्ञा**" पत्रिका में हिंदी, संस्कृत एवं अंग्रेजी तीनों भाषाओं में शोध-प्रपत्र/लेख प्रकाशित किया जाना भी इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। यह पत्रिका अपने प्रकाशन के समय से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की वैदुष्य परम्परा एवं उपलब्धियों का सतत निर्वहन करती आ रही है।

मैं "**प्रज्ञा**" पत्रिका के "महात्मा गाँधी स्मृति विशेषांक" के सफल प्रकाशन के लिए बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ।

"जय हिन्द"

(राजनाथ सिंह)

नई दिल्ली
01 अक्टूबर, 2019

Office : Room No. 104, Ministry of Defence, South Block, New Delhi-110011
Tel. : +91 11 23012286, +91 11 23019030, Fax : +91 11 23015403
E-mail : rmo@mod.nic.in

रमेश पोखरियाल 'निशंक'
Ramesh Pokhriyal 'Nishank'

सत्यमेव जयते

मंत्री
मानव संसाधन विकास
भारत सरकार
MINISTER
HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका 'प्रज्ञा' राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के 150वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में 'महात्मा गाँधी स्मृति विशेषांक' प्रकाशित करने जा रही है।

महात्मा गाँधी जी विश्व भर में अहिंसा, पारस्परिक सद्भाव और भ्रातृभाव के लिए जाने जाते हैं। हिंसा से त्रस्त दुनिया हमारे देश की ओर तथा महात्मा गाँधी के आदर्शों की ओर निहारती है। महात्मा गाँधी का जीवन मानवीय आदर्शों की प्रयोगशाला रही है। उन्होंने अपने जीवन में सत्य के साथ अनेक प्रयोग किए, जिसे उन्होंने विस्तार से अपनी आत्मकथा में दर्ज किया है। इन प्रयोगों के आधार पर ही उन्होंने कहा कि दुनिया में सत्य से बेहतर कुछ नहीं, क्योंकि जहाँ सत्य है, वहाँ अहिंसा है और जहाँ अहिंसा है, वहीं ईश्वर है।

गाँधी जी जीवन भर छुआछूत, जातिवाद, बाल-विवाह, धार्मिक उन्माद सहित समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों और बुराईयों के खिलाफ लड़ते रहे। उन्होंने स्वच्छता को भी जीवन का एक अहम हिस्सा माना और कहा कि जहाँ साफ-सफाई है वहाँ ईश्वर का वास होता है। भारत सरकार का स्वच्छता अभियान महात्मा गाँधी से ही प्रेरित है।

मुझे खुशी है कि पत्रिका ऐसे विराट महामानव पर शोधपूर्ण विशेषांक प्रकाशित करने जा रही है जिसमें उनके जीवन एवं लेखन को विविध अकादमिक एवं शोधपूर्ण दृष्टियों से विवेचित-विश्लेषित किया जाएगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस विशेषांक में महात्मा गाँधी जी पर उत्कृष्ट एवं ज्ञानवर्द्धक लेख होंगे जो गाँधी जी के सिद्धांतों और जीवन मूल्यों की समसामयिक प्रासंगिकता को रेखांकित करेंगे।

मैं पत्रिका के सुरूचिपूर्ण प्रकाशन हेतु अपनी अग्रिम शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(रमेश पोखरियाल 'निशंक')

सबको शिक्षा, अच्छी शिक्षा।

स्वच्छ भारत

Room No. 3, 'C' Wing, 3rd Floor, Shastri Bhavan, New Delhi-110 115
Phone : 91-11-23782387, 23782698, Fax : 91-11-23382365
E-mail : minister.hrd@gov.in

डॉ० महेन्द्र नाथ पाण्डेय
Dr. Mahendra Nath Pandey

सत्यमेव जयते

मंत्री
कौशल विकास और उद्यमशीलता मंत्रालय
भारत सरकार
Minister
Ministry of Skill Development & Entrepreneurship
Government of India

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है कि विश्वविश्रुत काशी हिंदू विश्वविद्यालय की समादृत शोध पत्रिका ''प्रज्ञा'' का 'महात्मा गांधी स्मृति' विशेषांक प्रकाशित होने जा रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 150 वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में विश्वविद्यालय द्वारा किया गया यह पुनीत कार्य प्रशंसनीय एवं चिरस्मरणीय है। हम सभी जानते हैं कि इस महान विश्वविद्यालय के संस्थापक भारत रत्न पूज्य महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी एवं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी में अत्यंत मधुर एवं घनिष्ठ संबंध थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी महामना को महान राष्ट्रभक्त एवं दूर दृष्टि सम्पन्न श्रेष्ठ शिक्षाविद् मानते थे। वह महामना का अत्यंत आदर एवं सम्मान करते थे। महामना के आग्रह पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी काशी हिंदू विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में पधारे थे और इस अवसर पर उनके द्वारा दिया गया ऐतिहासिक उद्‌बोधन अत्यंत प्रेरणादायी था।

इस महान विश्वविद्यालय द्वारा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की स्मृतियों को संजोने के लिए 'प्रज्ञा' जर्नल के विशिष्ट अंक का प्रकाशन वर्तमान राष्ट्रीय परिवेश में अत्यंत प्रासंगिक एवं उपयोगी है। इस निमित्त इस विश्वविद्यालय के कुलपति, कुलगुरू, कुलसचिव, मुख्य संपादक प्रोफेसर श्रीनिवास पाण्डेय एवं पत्रिका के प्रकाशन कर्म से जुड़े हुए सभी लोगों को मैं साधुवाद देता हूं। आशा करता हूं कि इस शोध पत्रिका द्वारा आज के युवा वर्ग को विशेष लाभ एवं प्रेरणा मिलेगी, जिससे वे वर्तमान राष्ट्रीय परिवेश में फैली हुई अराजकता एवं हिंसा के माहौल को दूर कर देश के सम्यक विकास में यथाशक्ति योगदान करेंगे। इस विशेषांक के सफलता हेतु मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूं।

सादर!

(डॉ0 महेन्द्र नाथ पाण्डेय)

Skill India
कौशल भारत-कुशल भारत

कमरा नं. 516, पंचम तल, 'ए' विंग श्रम शक्ति भवन, रफी मार्ग, नई दिल्ली - 110001
Room No. 516, 5th Floor, 'A' Wing, Shram Shakti Bhawan, Rafi Marg, New Delhi-01 Tel.: 011-23465801 Fax : 011-23465825
निवास : 9, त्यागराज मार्ग, नई दिल्ली / 9, Tyagraj Marg, New Delhi-110011
दूरभाष/Phone : +011-23018556, 23018558, मोबाईल/Mobile : +91-9415023457

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये
प्रो॰ धीरेन्द्र पाल सिंह
अध्यक्ष
Prof. D. P. Singh
Chairman

सत्यमेव जयते

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
University Grants Commission
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
Ministry of Human Resource Development, Govt. of India
बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली-110002
Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi-110002
दूरभाष Phone : कार्यालय Off : 011-23234019, 23236350
फैक्स Fax : 011-23239659, e-mail : cm.ugc@nic.in | web: www.ugc.ac.in

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के 150वें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में अपनी शोध पत्रिका ***"प्रज्ञा"*** का ***"महात्मा गाँधी स्मृति विशेषांक"*** का प्रकाशन करने जा रहा है।

पत्रिका के माध्यम से विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को महात्मा गाँधी जी के विचारों, आर्दशों एवं उनकी सादगी को जानने एवं अपनी साहित्यिक एवं रचनात्मक प्रवृत्ति को विकसित करने का अवसर प्राप्त होता हैं। मैं आशा करता हूँ कि अधिक से अधिक छात्र तथा शिक्षक इस अवसर का लाभ उठायेगें तथा अपने विचारों से समाज व राष्ट्र को नई दिशा देने में अग्रणी भूमिका निभायेगें।

इस अवसर पर मैं विश्वविद्यालय के कुलपति, कुलसचिव, शिक्षकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों, सभी छात्र–छात्राओं तथा सम्पादक मंडल के सभी सदस्यों को बधाई देता हूँ और शोध पत्रिका ***"प्रज्ञा"*** के विशिष्ट अंक के सफल प्रकाशन हेतु अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(धीरेन्द्र पाल सिंह)

4 सितम्बर, 2019

प्रो. राकेश भटनागर
कुलपति
Prof. Rakesh Bhatnagar Ph.D.
FNA, FASc, FNASc
Vice-Chancellor

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
Banaras Hindu University
(Established by Parliament by Notification No. 225 of 1916)
Varanasi–221005 (INDIA)
Phone : 91-542-2368938, 2368339
Fax : 91-542-2369100, 2369951
E-mail : vc@bhu.ac.in
Website : www.bhu.ac.in

१८ दिसम्बर २०१९

शुभ-संदेश

इस वर्ष राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी का १५० वाँ जन्म दिवस मनाया जा रहा है। इस संदर्भ में देश की अनेक संस्थायें महात्मा गांधी के जीवन एवं उनके उपदेशों से सम्बन्धित विविध प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन कर रहीं हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और इस महान विश्वविद्यालय के संस्थापक भारतरत्न पूज्य महामना पंडित मदन मोहन मालवीय में अत्यंत घनिष्ठ एवं मधुर सम्बन्ध थे। महात्मा गांधी जी महामना जी का अत्यन्त आदर एवं सम्मान करते थे। उन्होंने सपष्ट रूप से कहा है कि— ''मैं मालवीय जी से बड़ा देशभक्त किसी को नहीं मानता। मैं सदैव उनकी पूजा करता हूँ। जीवित भारतीयों में मुझे उनसे ज्यादा भारत की सेवा करने वाला कोई दिखायी नहीं देता''। मेरा मानना है कि इस महान विश्वविद्यालय द्वारा महात्मा गांधी को उनके १५०वें जन्म दिवस के अवसर पर स्मरण करना अत्यन्त उचित एवं प्रशंसनीय कार्य है।

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है कि विश्वविश्रुत काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सामादृत शोध पत्रिका ''प्रज्ञा'' द्वारा ''महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक'' का प्रकाशन किया जा रहा है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह प्रतिष्ठित पत्रिका पाठकों के अन्तर्मन पर महात्मा गांधी के ऐतिहासिक अवदानों की अमिट छाप छोड़ेगी, जिससे आज के युवा वर्ग में राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं राष्ट्रप्रेम का भाव और अधिक प्रबल होगा।

मैं ''प्रज्ञा'' जर्नल के इस विशेषांक के संकलन, सम्पादन एवं प्रकाशन से जुड़े समस्त लोगों को बधाई देता हूँ और शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ कि यह विशेषांक अपने लक्ष्य में पूर्णरूपेण सफल हो।

(राकेश भटनागर)

सम्पादकीय

इस वर्ष (2019) में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की 150वीं जयंती सम्पूर्ण देश में मनायी जा रही है। इस निमित्त देश की अनेक संस्थाओं द्वारा महात्मा गांधी के जीवन, उनके उपदेशों एवं सद्विचारों से सम्बन्धित विविध प्रकार के कार्यक्रम एवं आयोजन किये जा रहे हैं। इस महोत्सव के संदर्भ में विश्वविश्रुत काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की समादृत शोध पत्रिका **'प्रज्ञा'** महात्मा गांधी के 150वीं जयंती के उपलक्ष्य में **'महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक'** प्रकाशित कर रही है। यह सर्वविदित है कि महात्मा गांधी ने भारत देश को न केवल राजनैतिक स्वतंत्रता दिलायी अपितु भारतीय समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों एवं बुराइयों (छुआ-छूत, जातिगत संकीर्णता, ऊँच-नीच के बीच भेद, आर्थिक असमानता, अतिसय भोगलिप्सा, अत्यधिक धन संग्रह, धार्मिक कट्टरता, संकीर्ण साम्प्रदायिक सोच, मजहबी उन्माद, फिजूल खर्ची एवं दहेज प्रथा आदि) को दूर करने की सार्थक भूमिका निभायी और एक बेहतर देश के निर्माण का प्रयास किया। महात्मा गांधी में हम उदात्त मानवीय भावना, निष्काम एवं सात्विक ज्ञान के उज्ज्वल एवं भास्वर स्वरूप तथा कर्मयोग में अद्भुत समन्वय देखते हैं। इन्हीं तीन महान गुणों की पराकाष्ठा को देखकर गुरुवर रविन्द्र नाथ टैगोर ने उन्हें 'महात्मा' कह कर सम्बोधित किया था।

वर्तमान वैश्विक परिवेश एवं भारतीय समाज अत्यन्त भयावह दौर से गुजर रहा है। हमारे देश की जनता पाश्चात्य शिक्षा एवं विचारों से इस कदर कुप्रभावित हो रही है कि वह देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत एवं विश्व कल्याण की भावना से दिनों दिन दूर होती जा रही है। फलतः आज का युवावर्ग मांस, मदिरा, उन्मुक्त वासना एवं पाशविक व्यवहारों से ग्रसित होता जा रहा है। देशी भोजन के स्थान पर विदेशी आहार-बिहार (फास्ट फूड), संयुक्त परिवार का विघटन एवं एकल परिवार की प्रतिष्ठा, नारी के प्रति कामुक दृष्टि एवं वासनात्मक व्यवहार, बालात्कार, हिंसा, आतंक, लूट एवं डकैती जैसे अनेक अमानवीय व्यावहार एवं पाशविक मनोवृतियाँ आदि का आज के समाज में प्रचार एवं प्रसार हो रहा है। इन सभी कुप्रवृत्तियों से बचने का उपाय महात्मा गांधी के जीवन दर्शन एवं उनके उपदेशों में निहित है। महात्मा गांधी के सद्विचार सम्पूर्ण विश्व के कल्याण एवं समाज के सभी वर्गों के लिए हितकारी हैं। अतः कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी के विचार एवं उनका चिंतन सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है।

महात्मा गांधी की प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता केवल भारत में नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में है। यही कारण है कि 2007 ई. में संयुक्त राष्ट्र संघ ने गांधी जयन्ती को **'विश्व अहिंसा दिवस'** के रूप में मनाने की घोषणा की है। अमेरिकी कांग्रेस ने बापू को दुनिया भर में स्वतंत्रता और न्याय का प्रतीक बताया और गांधी जयन्ती को मनाने का प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में प्रस्तुत किया। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा, महान वैज्ञानिक आइन्सटिन तथा विश्व की अनेक विभूतियों एवं महापुरुषों ने गांधी जी की भूरि भूरि प्रशंसा की है। इस संदर्भ में महान वैज्ञानिक आइन्सटिन का सर्वविदित वक्तव्य विशेषरूप से उल्लेखनीय है- ''एक ऐसा मनुष्य जिसने युरोप की पशुता का मुकाबला एक सीधे-साधे मानव प्राणी की भाँति किया और इस कारण जो सर्वदा के लिए उससे ऊपर उठ गया। हो सकता है कि आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर कठिनाई से विश्वास करें की इस प्रकार का कोई रक्त-मांस वाला पुरुष पृथ्वी तल पर उत्पन्न हुआ होगा।''

वस्तुतः महात्मा गांधी का व्यक्तित्व अत्यन्त विराट एवं बहुआयामी था। उन्होंने 'बसुधैव कुटुम्बकम्' की सनातन भारतीय अवधारणा को आधुनिक, तार्किक एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया और उसमें अन्तर्निहित सम्पूर्ण विश्व के कल्याण एवं विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रभावशाली प्रचार प्रसार किया। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के निर्माण में सत्य, अहिंसा, न्याय, स्वतंत्रता, करुणा, परोपकार, विश्वमैत्री, सामाजिक समानता, संयम, सर्वधर्म समभाव, विश्व शांति एवं निष्काम कर्म योग आदि की नियामक भूमिका थी। महात्मा गांधी के विचारों एवं उपदेशों के अवलम्बन से वर्तमान वैश्विक परिवेश में व्याप्त, हिंसा, आतंक, युद्ध, मजहवी उन्माद, राक्षसी व्यवहार, पाशविक मनोवृत्ति, क्रूरता, अशांति, भयंकर आर्थिक शोषण, फिजूल खर्ची एवं उन्मुक्त वासनात्मक कार्यकलापों आदि से मुक्ति पायी जा सकती है।

प्रस्तुत अंक (अंक-65, भाग-2, वर्ष-2019-20) में महात्मा गांधी के विचारों, उपदेशों, चिंतनों, विविध प्रकार के सामाजिक व्यवहारों एवं उनके विभिन्न कार्यकलापों से सम्बन्धित कुल 37 शोध प्रपत्र/लेख संकलित हैं। इसमें 28 लेख हिंदी भाषा में, 01 लेख संस्कृत भाषा में और 08 लेख अंग्रेजी भाषा में लिखे गये हैं। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि ये शोध प्रपत्र/लेख सुधीजनों में स्वीकार्य होगें और साथ ही आज के युवावर्ग को भी अनेक उपयोगी संदेश देगें। ध्यातव्य है कि पाठकों की सुविधा हेतु **'प्रज्ञा' जर्नल के अंक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की वेबसाइट www.bhu.ac.in पर उपलब्ध हैं।**

'महात्मा गांधी स्मृति विशेषांक' के प्रकाशन के इस अवसर पर सर्वप्रथम मैं इस महान विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. राकेश भटनागर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सकारात्मक सोच एवं आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से हम सदा लाभान्वित होते हैं। तदनन्तर कुलगुरु (रेक्टर) प्रो. विजय कुमार शुक्ल को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनके कर्मशील जीवन से हमें प्रेरणा मिलती है। तदनन्तर कुलसचिव, डॉ. नीरज त्रिपाठी एवं वित्त अधिकारी, अभय ठाकुर के प्रति उनके सकारात्मक सहयोग के लिए आभार व्यवत करता हूँ। देश की जिन महानविभूतियों (प्रधान मंत्री- श्री नरेन्द्र मोदी,उप राष्ट्रपति - श्री वेंकैया नायडू, लोकसभा अध्यक्ष - श्री ओम बिरला, रक्षा मंत्री- श्री राजनाथ सिंह, मानव संसाधन मंत्री- डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', कौशल विकास और उद्यमशीलता मंत्री - डॉ. महेन्द्र नाथ पाण्डेय एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष- प्रो. धीरेन्द्र पाल सिंह आदि) ने अपनी शुभकामनायें देकर हमें अनुगृहित किया है; इन सभी महानुभावों के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ। इस अंक को समृद्ध करने में जिन विद्वान लेखकों ने अपना शैक्षणिक योगदान किया है, उन्हें मैं हृदय से साधुवाद देता हूँ। **'प्रज्ञा'** संरक्षक मण्डल एवं सम्पादक मण्डल के सभी सदस्यों के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ। बी.एच.यू. प्रेस के प्रभारी प्रो. हीरा लाल प्रजापति एवं उनके सभी सहयोगियों को उनके सकारात्मक सहयोग के लिए शुक्रिया अदा करता हूँ। अंत में **'प्रज्ञा'** के अपने सहयोगियों जयप्रकाश, राजेश कुमार एवं अशोक कुमार को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस अंक के प्रकाशन में सक्रिय सहयोग किया।

(डॉ0 श्रीनिवास पाण्डेय)
मुख्य सम्पादक (मानद), प्रज्ञा जर्नल
इमरिटस प्रोफेसर एवं पूर्वाध्यक्ष, हिंदी विभाग
तथा पूर्व प्रमुख, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

विषय-सूची

1. महात्मा गाँधी के वैचारिक व्यक्तित्व के निर्माण की बुनियादः 'तुलसी रामायण' एवं 'गीता माता' 1
डॉ. श्रीनिवास पाण्डेय

2. पशु-शक्ति- इतिहास के रहते गांधी-दर्शन सम्भव नहीं 6
प्रो. सुमन जैन

3. गांधी चिन्तन का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक आयाम 9
प्रो. आनन्द प्रसाद मिश्र

4. गांधीजी और गीता का व्यावहारिक दर्शन 13
डॉ. विचित्रसेन गुप्त

5. गांधीजी की भाषा-दृष्टि 16
डॉ. मदन मोहन पाण्डेय

6. महात्मा की दृष्टि में धर्म : गाँधी का एक अध्ययन 20
डॉ. श्रुति मिश्राा

7. पारिस्थितिकी संकट, जीवन मूल्य और गाँधी चिंतन 26
डॉ. धर्मजंग

8. गीतानुरागी महात्मा गांधी 32
डॉ. पवनकुमार शास्त्री

9. आज के संदर्भ में गांधी-चिंतन को समझना 36
डॉ. सुनील कुमार मानस

10. महात्मा गांधी के स्वतंत्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीयता की भावना का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्रतिफलन 40
डॉ. ऋतम्भरा तिवारी

11. राष्ट्रोत्थान : महात्मा गाँधी की पत्रकारिता 45
डॉ. अभिषेक उपाध्याय एवम् प्रो. वशिष्ठ अनूप

12. सिन्धी कवि किशिनचन्द बेवस के काव्य पर गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव 50
डॉली मेघनानी एवं प्रो. सदानन्द शाही

13. महात्मा गांधी एवं भारतीय संस्कृति 53
ज्योति सिंह एवं डॉ. विनय कुमार

14. महात्मा गाँधी का शिक्षा में योगदान 58
नेहा गुप्ता एवं डॉ. सुकुमार चट्टोपाध्याय

15. गाँधी-मल्हार 62
वेद प्रकाश मिश्र एवं प्रो. वी. बालाजी

16. महात्मा गाँधी जी के सांस्कृतिक विचार और हिन्दी साहित्य 65
योगेश यादव एवं प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय

17. गांधी दर्शन पर चलने वाली कद्दावर संस्थाओं का संचालन (एक चर्चा) 68
सुदर्शन आयंगार

18. वर्तमान समय में महात्मा गांधी के विचारों की स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रासंगिकता 73
शैलेश कुमार, गोविन्द नारायण श्रीवास्तव एवं आनन्द प्रसाद मिश्र

19. महात्मा गाँधी का शिक्षादर्शन एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता 77
डॉ. विजय कुमार सिंह एवं डॉ. माया सिंह

20. प्रेमचंद की कहानियों में गाँधीवाद का प्रभाव 82
निवेदिता कुमारी एवं डॉ. नीरज खरे

21. वर्तमान वैश्विक सन्दर्भ में बापू के अहिंसा सिद्धान्त की सार्थकता 85
शुभंकर बाबू एवं प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय

22. अहिंसा के पुजारी द्वारा हिंसकों द्वारा रचित चक्रव्यूह का सफल-भेदन 88
प्रो. महेन्द्र नाथ दूबे

23. महात्मा गाँधी की दृष्टि में जीवन-प्रबंधन 94
योगेश उपाध्याय एवं प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

24. जैन धर्म का अहिंसा सिद्धांत और महात्मा गांधी 98
डॉ. विवेकानन्द जैन

25. मार्क्स बनाम गाँधी : इक्कीसवीं सदी के विशेष संदर्भ में 102
डॉ. सत्यपाल शर्मा

26. गाँधी, हिन्दी पत्रकारिता और स्वाधीनता आंदोलन 106
सौरभ सिंह विक्रम

27. गाँधी का बदहाल टालस्टाय फार्म 110
नीरज धनकड़

28. 21 वीं सदी और गांधी की प्रासंगिकता 113
डॉ. हेमेन्द्र कुमार सिंह

29. गांधी महात्मभिः आत्मकथारूपेण सत्यान्वेषणम् 116
डॉ. प्रिङ्कर अग्रवाल

30. Penological pupose of punishment : A Gandhian perspective 122
Prof. Bibha Tripathi

31. Need of the Corporate Social Responsibility on the line of Mahatma Gandhi 126
Dr. Anup Kumar Mishra

32. Reflection of Economic Ideology of Mahatma Gandhi in Devolopment Plans of the Country 134
Anurag Singh

33. Mahatma Gandhi : An Idol for Today's Managers And Enterprenures 140
Sameera Khan and Dr. Neha Pandey

34. Imagining Gandhi's Conversation with Young Minds in Contemporary India 143
Dr. Swati Sucharita Nanda

35. Mahatma Gandhi's Views On Health 148
Vishal Gupta and Dr. Vandana Verma

36. Examining The 'Gooseberry' Cutlivation And Its Productivity Trends In District Pratapgarh 151
Mukesh Kumar Yadav and Dr. Anup Kumar Mishra

37. Reconfiguring The Role of Gandhi : Nation, History and Ideology in Select Indian Fiction in English 158
Prof. Mithilesh Kumar Pandey

38. **''प्रज्ञा'': नियम एवं निर्देश** 31

आवश्यक सूचना : **''प्रज्ञा''** पत्रिका के इस अंक में छपे हुए सभी लेखों/शोध-प्रपत्रों में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक अथवा विश्वविद्यालय प्रशासन का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

महात्मा गाँधी के वैचारिक व्यक्तित्व के निर्माण की बुनियादः 'तुलसी रामायण' एवं 'गीता माता'

डॉ. श्रीनिवास पाण्डेय[*]

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रज्ञावान युगपुरूष थे। वे भारतीय आध्यात्मिक चेतना एवं सांस्कृतिक बोध तथा पाश्चात्य चिन्तन पद्धति एवं वैज्ञानिक सोच से समन्वित दूरदृष्टि सम्पन्न महापुरुष थे। उन्होंने देश एवं विदेश में प्रचलित अनेक विचारों एवं दर्शनिक दृष्टिकोणों का गम्भीर अध्ययन किया था और उन्हें युगानुरूप नवीन कलेवर प्रदान कर अपने व्यावहारिक जीवन एवं आचरण में उतारा था। उन्होंने गतानुगतिका एवं रूढ़ियों से ऊपर उठकर समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों, कुरीतियों एवं दुर्वव्यवस्थाओं का सकारात्मक युगानुरूप समाधान निकाला। उनके वैचारिक व्यक्तित्व के निर्माण में विश्व प्रसिद्ध अनेक विचारकों एवं दार्शनिकों की मान्यताओं का बहुत प्रभाव पड़ा था, लेकिन उन सब में 'तुलसी रामायण' एवं 'गीता माता' का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, जिसे हम उनके वैचारिक व्यक्तित्व की बुनियाद कह सकते हैं। गाँधी जी विश्वकवि तुलसीदास कृत 'श्रीरामचरितमानस' को 'तुलसी रामायण' एवं 'श्रीमद्भगवत्गीता' को 'गीता माता' कहते थे। इस संदर्भ में उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि 'भगवतगीता' और 'तुलसी रामायण' से उन्हें अपार शक्ति मिलती है। दुनिया के अन्यान्य धर्मों के प्रति अति आदर-भाव होते हुए भी उनके हृदय पर उनका उतना असर नहीं होता, जितना कि श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।

महात्मा गाँधी जी की आत्मकथा में स्पष्ट उल्लेख है कि बचपन में ही उनके मानस पर 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक एवं 'तुलसी रामायण' का गहरा एवं अमिट प्रभाव पड़ा और वह जीवन पर्यन्त कायम रहा। उनके वैचारिक व्यक्तित्व के निर्माण एवं संस्कारों की निर्मिति में 'हरिश्चन्द्र नाटक', 'तुलसी रामायण' एवं 'गीता माता' की अविस्मरणीय भूमिका है। इस संदर्भ में वे अपनी आत्मकथा के प्रारम्भ में ही स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि ''पर जिस चीज का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा वह था रामायण का पारायण..... यह रामायण श्रवण रामायण पर मेरे आत्यन्तिक प्रेम की बुनियाद है। मैं आज तुलसीदास की रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ।'' स्पष्ट है कि बालक मोहनदास के अबोध मन पर रामायण के परायण का अमिट प्रभाव पड़ा।

महात्मागाँधी केवल भावुक व्यक्ति की भाँति तुलसी रामायण की प्रशंसा नहीं करते, अपितु वे एक सुधी साहित्यिक समीक्षक की भाँति तुलसी रामायण के साहित्यिक गुणों का सूक्ष्म विवेचना करते हैं और सुचिंतित तर्कों द्वारा तुलसीरामायण को विश्व का सर्वोत्तम ग्रंथ सिद्ध करते है। वे उत्कृष्ट विषय वस्तु, उत्तम कोटि का कलात्मक सौंदर्य तथा रमणीय काव्य-भाषा की दृष्टि से भी तुलसी रामायण को संसार की आधुनिक भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ मानते है। ध्यातव्य है कि 4 फरवरी, 1921को कोलकाता में राष्ट्रीय महाविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर बंगला भाषी समुदायों के बीच अत्यन्त निर्भीकता पूर्वक उन्होंने घोषणा की- ''आप हिंदी भाषा की साहित्यिक दरिद्रता की बात करते हैं, किन्तु यदि आप तुलसीदास की 'रामायण' को गहराई से पढ़ें, तो शायद आप मेरी इस राय से सहमत होंगे कि संसार की आधुनिक भाषाओं के साहित्य में उसके मुकाबले में कोई दूसरी किताब नहीं ठहरती। उसके एक ही ग्रंथ ने मुझे जितनी श्रद्धा और आशा दी है, उतनी किसी दूसरी किताब से मुझे नहीं मिली।'' गाँधी जी तुलसी रामायण के वैचारिक प्रभाव के महत्व को बताने के बाद भी यहीं नहीं रुकते अपितु उसके साहित्य सौंदर्य एवं कलात्मक वैभव को भी रेखांकित करते हुए आगे कहते हैं- ''मेरा ख्याल है वह हर तरह की आलोचना और छानबीन के बाद साहित्यिक सौन्दर्य, अलंकार और धार्मिक प्रेरणा, सभी दृष्टियों से खरी उतरेगी।''

गाँधी जी जगह-जगह अपने प्रबचनों में अनेक उद्धरणों एवं दृष्टान्तों द्वारा तुलसी रामायण के महत्व को दृढ़तापूर्वक स्थापित करते थे। वे अनेक तर्कों एवं तथ्यों के आलोक में 'तुलसीदास' की उपयोगिता एवं सार्थकता पर प्रकाश डालते हैं। इस संदर्भ में 28 दिसम्बर, 1947 को दिल्ली की प्रार्थना सभा में प्रकट किये गये उनके उद्गार दृष्टव्य हैं – ''मैं जो कहता हूँ कि धर्म की जड़ दया है, तो वह तुलसीदास का है।..... उनकी रामायण जितनी चलती है, उतनी सारे हिन्दुस्तान में दूसरी कोई पुस्तक नहीं चलती – शायद ही दुनिया में कोई दूसरी पुस्तक चलती होगी।''

महात्मा गाँधी के वैचारिक व्यक्तित्व के निर्माण में 'दया' एवं 'करुणा' की केन्द्रीय भूमिका है। उनके सभी नैतिक मूल्यों एवं आध्यात्मिक चिंतन में दया के विविध रूप एवं अनेक स्तर मिलते है। उनके अनुसार सभी धर्मों का मूलाधार 'दया' है। इस विचार की प्रेरणा उन्हें तुलसीदास के साहित्य से मिली थी। इस संदर्भ में 'हिंद स्वराज' के नवम्बर 1909 अंक में महात्मा गाँधी जी स्पष्ट रूप से लिखते हैं-

---

* एमरिटॅस प्रोफेसर एवं मुख्य सम्पादक 'प्रज्ञा' जर्नल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

''कवि तुलसीदास ने कहा है, 'दया धरम को मूल है, देह मूल अभिमान। तुलसी दया ने छोड़िये जब लग घट में प्रान', मुझे तो यह वाक्य शास्त्र बचन की तरह लगता है। जैसे दो और दो चार होते हैं, ऊपर के वाक्य पर मुझे उतना ही भरोसा है। दयाबल आत्मबल है, वह सत्याग्रह है।'' इस कथन से स्पष्ट है कि 'सत्याग्रह' एवं दया बल (करुणा) का व्यावहारिक रूप, उन्हें तुलसी रामायण के नायक श्रीराम के जीवन से मिलता है; जिसका सूक्ष्म मनन, चिंतन एवं विवेचन करके उन्होंने उक्त निष्कर्ष निकाला था।

तुलसी रामायण का केन्द्रीय प्रेरक तत्व दया (करुणा) है। तुलसी के राम रावण के अन्याय एवं अत्याचार का विनाश, दया एवं करुणा की भावना से प्रेरित होकर किया था। उनका रावण से कोई व्यक्तिगत बैर नहीं था, न ही उन्हें रावण की सोने की लंका से कोई मोह था। उन्होंने तो रावण के हिंसक अत्याचारों से पीड़ित निर्दोष वनवासियों एवं ऋषियों/मुनियों की पीड़ाओं को दूर करने के लिए संकल्प लिया था। चित्रकूट प्रवास के दौरान जब उन्हें मनुष्य की हड्डियों एवं कंकालों का विशाल पहाड़ दिखायी पड़ा तो उन्होंने इस बारे में वनवासियों से जिज्ञासा प्रकट की। तब ऋषियों ने रावण के भयंकर अत्याचार, दारुण शोषण एवं क्रूर हिंसक कर्मों का मार्मिक चित्रण करते हुए कहा-

''अस्थि समूह देखी रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।''[1]

तब ऋषि-मुनि उन्हें बताते हैं-

''निसिचर निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुवीर नयन जल छाये।''[2]

महान पराक्रमी एवं सहनशील राम, जिनके आँखों में आँसू शत्रुओं के प्रबल आघातों से नहीं आते, उस राम के आँखों में आँसू उनकी प्रबल दया भावना के कारण आये। यह दया भावना केवल कोरी सहानुभूति एवं वाणी तक ही सीमित नहीं रही अपितु वे उन्हें क्रियाशील बनाते हैं और वे दृढ़ निश्चय करते हुए युगान्तकारी संकल्प लेते हैं, कठोर प्रतिज्ञा करते है-

''निसिचर हीन करुऊँ महि भुज उठाई पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह''।।[3]

वे सभी मुनियों के आश्रम में जाकर उन्हें निर्भयता प्रदान करते हैं कि मैं अब आ गया हूँ, आपकी रक्षा के लिए, इसलिए अत्याचारी रावण से डरने की जरूरत नहीं है।

श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष दया एवं करुणा की भावना से परिचालित रहा। रावण के क्रूर अत्याचार एवं घोर अपमान से ठुकराये हुए विभीषण जब श्रीराम की शरण में आते हैं तब श्री राम इसी दया भाव से प्रेरित होकर विभीषण को अपनी शरण में लेते हैं और उन्हें न केवल अभयदान देते हैं; अपितु उन्हें लंका का भावी नरेश भी घोषित करते हैं। इस संदर्भ में भयभीत विभीषण की उक्ति विचारणीय है-

''श्रवन सुजसु सुनि आयउँ। प्रभु भंजन भव भीर
त्राहि त्राहि आरति हरन। सरन सुखद रघुबीर।।''[4]

विभीषण के इस दीन वचन को सुनकर श्रीराम ने विभीषण को गले से लगाकर निर्भयता प्रदान की-

''दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा।।''[5]

इसी प्रकार बानर राज बालि के भय एवं अत्याचार से पीड़ित सुग्रीव की मार्मिक व्यथा को सुनकर श्रीराम अत्यन्त द्रवित होते हैं। अत्यन्त करुण स्वर में सुग्रीव बालि के अत्याचार का हृदय स्पर्शी वर्णन करता है-

''रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरू नारी।
ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला।।''[6]

सुग्रीव की दारुण अवस्था एवं भयभीत मनोदशा को देखकर श्रीराम दया भाव से प्रेरित होते हैं और बालि के बध की स्पष्ट घोषणा करते हैं-

''सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहिं एकहिं बान।
ब्रह्म रूद्र सरनागत गएँ न उबरीहिं प्रान''।।[7]

महात्मा गाँधी श्रीराम के जीवन संघर्ष से भलि-भाँति परिचित थे, अतः उन्हें भी अपने जीवन संघर्ष एवं स्वतंत्रता आन्दोलन में श्रीराम के दयाभाव से काफी प्रेरणा मिली थी।

गाँधी जी सक्रिय स्वतंत्रता आन्दोलन के पूर्व सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया था और देश की जनता की गरीबी, भुखमरी एवं फटेहाल जिन्दगी को करीब से देखा था, जैसा कि भगवान श्रीराम ने बनवास काल में दीन दुखियों की पीड़ाओं को नजदीक से अनुभव किया था। बिहार के चम्पारण की घटना ने उन्हें भीतर से झकझोर कर रख दिया था। उन्होंने भी राम की तरह दया भाव से प्रेरित होकर भारत की जनता को अंग्रेजों के अत्याचार से मुक्ति का संकल्प लिया और सत्य एवं अहिंसा के द्वारा देश को आजाद कराया।

गाँधी जी के जीवन की अविस्मरणीय एवं युगान्तकारी घटना है, दक्षिण अफ्रीका में ट्रेन से बलात बाहर फेंका जाना। उस क्षण भी उन्हें श्रीराम के संकल्प से प्रेरणा मिली होगी कि जब अंग्रेज मुझ जैसे पढ़े-लिखे (बैरिस्टर) को प्रथम का वैध टिकट होने के बाद भी ट्रेन से बाहर निर्दयतापूर्वक फेंक देते हैं, तो हमारे देश की भोली-भाली एवं निर्दोष जनता पर यह सरकार कितना घोर अन्याय एवं क्रूर अत्याचार कर रही होगी। इस घटना ने उनके भीतर छिपे दयाभाव को जागृत कर दिया और वे इसी भाव से प्रेरित होकर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आवाज बुलन्द की। इस संदर्भ में मुझे दक्षिण अफ्रीका (डर्बन) की सांस्कृतिक यात्रा का स्मरण हो रहा है। जब 80 वर्षीय नवयुवक अफ्रीकन गाइड ने (ऐसा उसने अपना

परिचय दिया था) उस प्लेटफार्म पर ले जाकर कहा कि ''ए सिंपल मैन मोहनदास बार्न इन इण्डिया बट् ही बिकेम महात्मा इन माई कंट्री ऐट दिस पट्टीकुलर प्लेस''। इस कथन में मुझे उसकी गर्वोक्ति महसूस हुयी और साथ ही अपने देश का अपमान। मैंने तुरन्त उस गाइड महोदय से कहा '' ह्वाई नाट एन अदर परसन बिकेम महात्मा फ्राम दक्षिण अफ्रीका या इंग्लैण्ड''। वह अवाक सा मेरा मुँह देखता रहा और अत्यन्त विनीत भाव से इसका कारण जानना चाहा। तब मैनें उसे विस्तार से बताया कि ''ड्यू द इफेक्ट आफ तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस''। यह घटना सितम्बर, 2002 (सितम्बर 05-08) की है जब, मैं भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद नयी दिल्ली के प्रतिनिधि के रूप में अठारहवें अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन डर्बन दक्षिण अफ्रीका में भाग लेने गया था।

गाँधी के दया भाव को आधुनिक हिंदी कवियों ने विशेष महत्व दिया है। दया भाव को केन्द्रित करके अनेक आधुनिक कवियों ने महत्वपूर्ण कवितायें लिखी हैं, जिन पर गाँधी जी के वैचारिक व्यक्तित्व का गहरा असर है। इस संदर्भ में कविवर रामधारी सिंह दिनकर की निम्न पंक्तियाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं-

''ऊँच नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है।

दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है''॥[8]

'सत्याग्रह' एवं 'अहिंसा' महात्मा गाँधी के वैचारिक व्यक्तित्व का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। सत्य एवं अहिंसा के महत्व का प्रतिपादन भी तुलसी रामायण में सम्येक रूपेण किया गया है। तुलसीदास ने अपने रामायण में स्पष्ट रूप से कहा है- **''सत्य सुकृत सब मूल सुहाये''** अर्थात सभी सुकृत्यों धर्मों एवं नैतिक मूल्यों के मूल में सत्य की प्रतिष्ठा है। तुलसी के राम सत्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। वे संसार में मंगल की स्थापना हेतु इस धरती पर अवतरित हुए और सत्य धर्म का पालन करते हुए वे इस पृथ्वी को असुरों के अत्याचारों एवं अन्यायों से मुक्त किया- **''सत्य संध पालक श्रुति सेतू। राम जनम जग मंगल हेतू॥''** इसी प्रकार तुलसीदास ने अहिंसा को भी परम धर्म कहा है-

'परमधर्म श्रुति विदित अहिंसा। पर निन्दा सम अघ न गरीसा॥'

राम अंतिम क्षण तक रावण का हृदय-परिवर्तन का प्रयास करते हैं। ज्ञानीनाम अग्र-गण्यम् श्री हनुमान जी महाराज रावण को बहुत समझाते हैं। मंदोदरी, कुम्भकर्ण एवं माल्यवंत जैसे स्वजन भी रावण को समझाते हैं। युद्ध आरम्भ होने से ठीक पूर्व श्रीराम युवराज अंगद को लंका में भेज कर रावण को समझाने का अंतिम प्रयास करते हैं। हृदय परिवर्तन में असफल होने पर श्रीराम अन्तिम विकल्प के रूप में रावण से युद्ध करते हैं।

गाँधी की सत्य पक्षधरता को ध्यान में रखकर आधुनिक युग के अनेक हिंदी कवियों ने महत्वपूर्ण कवितायें लिखी हैं। इस संदर्भ में श्री गोपल शरण सिंह की निम्न पंक्तियां विशेष रूप से दृष्टव्य हैं, गाँधी के यहाँ आदि से अंत तक सत्य की ही प्रतिष्ठा है-

''सत्य ध्येय था, सत्य साध्य था तथा सत्य था साधन।

सत्यदेव का ही होता था, वहाँ सदा आराधन''॥[9]

इसी प्रकार बालकृष्ण शर्मा नवीन जी ने भी गाँधी जी के सत्य प्रेम को इन शब्दों में वाणी प्रदान की है-

''सदा एक ही वस्तु पूज्य है, वह है सत्य, असत्य नहीं।

असत्य अर्चना का इस जग में, हो सकता है तथ्य नहीं॥''[10]

गाँधी जी ने सत्य को ईश्वर का पर्याय माना है। उनके अनुसार ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है। इस संदर्भ में 'हरिजन' (22.04.1929) में प्रकाशित निम्न पंक्तियाँ अवश्य विचारणीय हैं- ''मेरे पास सिवा सत्य के कोई दूसरा ईश्वर पूजा के योग्य नहीं है।'' इसी प्रकार उन्होंने सत्य एवं अहिंसा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए 'हरिजन' में लिखा- **''सत्य के समान कोई नहीं और अहिंसा ही परम धर्म है।''**[12]

रामनाम एवं रामराज्य का गाँधी जी के वैचारिक क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार उनके सपनों का आदर्श राज्य, 'रामराज्य' है। नैतिकता मूलक आदर्श समाज व्यवस्था एवं खुशहाल जनजीवन ही रामराज्य का प्रतीकार्थ है। उन्होने कई बार कहा है कि ''मेरी कल्पना का स्वराज्य इस संसार में और आप के अंतर में 'ईश्वरीय राज्य' अर्थात राम राज्य की अनुभूति से कम नहीं है। मैं इस स्वप्न की प्राप्ति के लिए काम करना और मरना चाहूँगा, चाहे इसे कभी प्राप्त न कर सकूँ।'' इस प्रकार हम देखत है तुलसी के राम गाँधी के अन्तर्मन में बसे हुए हैं। वे राम को प्रतीक एवं व्यावहारिक रूप (दोनो को) स्वीकारते हैं। कहा जाता है किं अंत समय में उनके मुख से 'हे राम' ही निकला था। इसका संकेत नरेन्द्र शर्मा की निम्न पंक्तियों में नीहित है-

''राम नाम पुण्यात्माओं का अंत समय का धन है।

ब्रह्म ज्ञान का है प्रतीक, ऐसा अनमोल रतन है॥''[13]

स्पष्ट है कि गाँधी जी के मानस पर तुलसी रामायण के राम एवं उनके गुणों की अमिट छाप है। उन्होने भी वनवासी राम के समान दीन दुखियों के बीच देश भ्रमण कर जनता के कष्टों को अपने अनुसार दूर किया। राम का शस्त्र था धनुष-बाण और गाँधी का शस्त्र था सत्य-अहिंसा। ये युगानुरूप साधन थे। दोनों का लक्ष्य एक ही था, जनता की पीड़ा एवं दुःखो को दूर करना।

गाँधी जी के सामने भयंकर **द्विविधा** थी कि वे अपने देश के शासक (ब्रिटिश) सत्ता का विरोध कैसे करें? क्या यह राज द्रोह है? अपने राजा का विरोध करना कहाँ तक न्यायोचित है? शासक से असहयोग करना क्या सत्य की पक्ष धरता है? इस प्रकार के अनेक प्रश्न गाँधी जी को भीतर से बेचैन किये थे। इस संशय एवं **द्विविधा** से मुक्त होने का मार्ग उन्हें तुलसी रामायण के विभीषण के जीवन संघर्ष से मिला। 'सत्याग्रह' एवं 'सविनय अविज्ञा आन्दोलन' का प्रेरक सूत्र उन्हें विभीषण के सविनय विरोध में मिला। विभीषण ने रावणी अत्याचार से मुक्ति हेतु भगवान राम के शरण में जाना उचित समझा, क्योंकि श्रीराम सत्य एवं न्याय के पक्षधर थे। श्रीराम का मार्ग धर्मानुमोदित एवं न्योयोचित था, अतः वह बार-बार रावण को अधर्म मार्ग से हटने की सलाह देता है। वह रावण को सत्य मार्ग पर लाने की भरपूर चेष्टा करता है और उसे समझाता है कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति हेतु सम्पूर्ण लंका राष्ट्र को संकट में न डालें। इस युद्ध में रावण की महत्वाकांक्षा की शिकार लंका की निर्दोष जनता होगी। अहंकारी एवं क्रूर शासक रावण न केवल विभीषण की सलाह की उपेक्षा करता है अपितु भरी हुयी सभा में उस पर लात प्रहार कर घोर अपमानित करता है और लंका के राज्य से निष्कासित करने का आदेश देता है। ऐसे अवसर पर विभीषण अत्यन्त विनित एवं कातर भाव से रावण से निवेदन करता है और विवशता में लंका छोड़ कर सत्य स्वरूप राम की शरण में जाता है। इस संदर्भ में विभीषण का विनीत रूप में रावण को सत्यमार्ग का सुझाव देना उसके 'सत्याग्रह' एवं 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' का संकेत करता है-

''तुम पितु सरिस भलेहिं मोहिं मारा।

राम भजे हित नाथ तुम्हारा॥''

'श्रीमद्भगवतगीता' में भारतीय सांस्कृतिक चेतना, सनातन धार्मिक भावना, वैदिक वाङ्मय, उपनिषद एवं समस्त दार्शनिक सिद्धान्तों का सारभूत तत्व समाहित है। सनातन वैदिक परम्परा में ऋषियों एवं मुनियों द्वारा सुरक्षित ज्ञान परम्परा का समावेश अत्यन्त संक्षिप्त एवं सरल रूप में 'गीता' में हुआ है। यह एक ऐसा विश्वप्रसिद्ध कालजयी ग्रंथ है, जिसकी रचना किसी आश्रम, विश्वविद्यालय एवं शोध संस्थान में नहीं हुयी, अपितु इसकी रचना युद्ध क्षेत्र में सन्नद्ध पक्ष-विपक्ष की सेनाओं के बीच हुयी। यह ग्रंथ केवल सैद्धान्तिक सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन नहीं करता अपितु मनुष्य एवं समाज के व्यावहारिक जीवन में भी अमर संदेश देता है। यह ऐसी कालजयी रचना है जिसकी समायानुकूल व्याख्या अनेक मनीषियों एवं विद्वानों ने की है और अपने-अपने युग के अनुरूप हर समस्याओं का समाधान प्राप्त किया है। इस परम्परा में आद्य शंकराचार्य, बालगंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, विवेकानन्द, एवं महर्षि अरविन्द जैसे अनेक चिन्तकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस लेख के आरम्भ में ही कहा गया है कि 'गीता' एवं 'रामचरितमानस' महात्मा गाँधी के सर्वाधिक प्रिय ग्रंथ थे। अपने कठिन दिनों एवं जेल में बन्दी के समय गाँधी जी को 'गीता' से अपार प्रेरणा एवं ऊर्जा मिलती थी। 'गीता' के महत्व को लोगों में प्रचारित करने हेतु उन्होंने तीन प्रमुख ग्रंथो की रचना की 'गीता प्रवेशिका', 'गीता पदार्थ कोश' एवं गीता माता'। ये तीनों महात्मा गाँधी द्वारा रचित अत्यन्त लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ है। गीता बोध के आरम्भ में दिया गया गाँधी जी का यह वक्तव्य अत्यन्त प्रसिद्ध है- ''गीता हमारी सद्गुरु रूप है और हमें विश्वास रखना चाहिए कि उसकी गोद में सिर रखकर हम सही सलामत पार हो जायेगें।''[14] गीता के प्रति गाँधी जी का यह समर्पण, निष्ठा एवं विश्वास उनके अगाध गीता प्रेम का परिचायक है। सद्गुरु और माता के समान गीता उनके लिए श्रद्धास्पद एवं ममतामयी थी।

महात्मा गाँधी की आत्मकथा में गीता द्वारा प्राप्त प्रेरणाओं से सम्बन्धित अनेक संस्मरण है। वे कई स्थानों पर लिखते हैं कि जब उनके मन में घोर निराशा एवं अवसाद के क्षण आते थे, तब उन्हें गीता में ही नव उत्साह की किरण दिखायी देती थी, जिससे शक्ति पाकर वे अपने जीवन के अनेक विषम क्षणों को पार कर सके। गीता निराशा से ऊपर उठने और सभी दुखों से उबरकर आनंद का अनुभव करने में उन्हें हमेशा मदद करती थी। इस संदर्भ में उनका यह कथन विचारणीय है- ''जो मनुष्य गीता का भक्त होता है, उसके लिए निराशा की कोई जगह नहीं, वह हमेशा आनंद में रहता है।''[15]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गाँधी के वैचारिक व्यक्तित्व के निर्माण में 'तुलसी रामायण' एवं 'गीतामाता' की महती भूमिका है। उनके विचार, संस्कार, आचरण एवं व्यवहार में सर्वत्र इन दोनों महान ग्रंथों की झलक मिलती है। बहुत कम ऐसे महापुरुष हैं जो इन ग्रंथों का केवल सैद्धान्तिक विवेचन ही नहीं करते अपितु अपने व्यवहारिक जीवन में उतारते हैं। महात्मा गाँधी जी के जीवन के अनेक प्रसंगो एवं घटनाओं में इन दोनों ग्रंथों ने प्रभावशाली भूमिका निभायी है, जिसको उन्होंने अनेक बार स्वीकार किया है। वैदिक ज्ञान की ऋषिपरम्परा के सारभूत अंशों को अत्यन्त सार्थक एवं युगानरूप प्रदानकर महात्मा गाँधी ने युगान्तकारी काम किया और अपने व्यवहार एवं आचरण द्वारा समस्त विश्व को प्रभावित किया। उनका कर्म एवं ज्ञान भावी पीढ़ियों का युगों-युगों तक मार्ग दर्शन करता रहेगा। 'गीता' एवं 'श्रीरामचरितमानस' का गाँधी पर जो प्रभाव पड़ा उस पर कई स्वत्रंत पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। यहाँ पर उक्त दोनों महान ग्रंथों के प्रभाव का कुछ संकेत भर किया गया है।

संदभ ग्रंथ-सूची

1. गोस्वामी तुलसीदास, 'श्रीरामचरितमानस', गीता प्रेस, गोरखपुर, 'अरण्यकाण्ड' 9/6
2. वही, 9/8

3. वही, दो0 10
4. वही, सुन्दरकाण्ड दोहा0 45
5. वही, दोहा 46/2
6. वही, किष्किन्धा काण्ड, 6/11,12
7. वही, दो सं0 6
8. रामधारी सिंह दिनकर, 'रश्मिरथी' प्रथम सर्ग पृ0सं0 1
9. श्री गोपालशरण सिंह, 'जगदालोक' सर्ग 4, पृ0सं0 71
10. श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन, 'ऊर्मिला' पृ0सं0 526
11. 'हरिजन' 22.04.1929
12. वही
13. नरेन्द्र शर्मा, 'रक्त चंदन', देवालय, पृ0सं0 32
14. महात्मा गाँधी, 'गीता माता' सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
15. वही, पृ0सं0 305

●

पशु-शक्ति- इतिहास के रहते गांधी-दर्शन सम्भव नहीं

*प्रो. सुमन जैन**

''हिन्द में हो गये अनेक वीर और पवित्र
पुरुषों का खून मेरी नसों में बहता है।
हिन्द में जन्में हुए ऐसे महापुरुषों की
हड्डियों से ही मेरी हड्डियाँ बनी हुई हैं।
हिन्द के भूतकाल में हुए और भविष्य में
होने वाले हिन्दियों के बीच हमेशा का सम्बन्ध
है और उनका सम्बन्ध मेरे साथ है।''[1]

''इस सदी के छठे दशक में हमारे मित्र डोनाल्डग्रूम भूदान-आन्दोलन में सहभागी रहकर इंग्लैण्ड लौट गये। यूरोप के अनेक शिक्षण संस्थानों में जाकर उन्होंने गांधी और गांधी के बाद किये गये कार्यों की जानकारी दी। जहाँ जहाँ बोले, वहां भारतीय विद्यार्थियों ने विरोध किया कि आप क्यों गांधी युग का प्रचार करना चाहते हैं।''[2]

आज यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका एशिया के अनेक देशों में गांधी-विचार का गहरा अध्ययन हो रहा है। सब जानते है कि हम गोरे हों या कि काले, इस धर्म के अनुयायी हो या उस धर्म के, विकसित हो या विकासशील हर समय लड़ते झगड़ते नहीं रह सकते। वैज्ञानिक आविष्कारों के चलते छोटे-बड़े देशों की सैन्य शक्ति बढ़ी है। आधुनिकतम मारक अस्त्र हाथ लग गये हैं, सरकारें अपनी केन्द्रित सत्ता सुदृढ़ करने में जुटी है और आम आदमी की अस्मिता खतरे में है, जिसकी सबसे अधिक चिन्ता गांधी ने की और आम जनता को ऐसी प्रवृत्तियों में लगाया, जिससे भारत एशिया की या दुनिया के किसी भी हिस्से की कुचली या चूसी हुई जातियों की आशा बना रहे। यह आशा की लौ जली ही थी कि 30 जनवरी 1948 को एक भारतीय ने ही गांधीजी को गोली मार दी।

गांधी जी को गये 7 दशक पूर्ण होने को है। दुनिया भर के शान्तिवादी गांधी-विचार को तारक मानने लगे है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने विश्व में बढ़ती हुई हिंसा की प्रवृत्ति को देखकर गांधी का जन्मदिन 2 अक्टूबर को विश्व अहिंसा दिवस के रूप में घोषित कर दिया है। पूरा विश्व गांधी जयन्ती को 'विश्व अहिंसा दिवस' के रूप में मनाता है। आश्चर्य होता है कि विश्व के सभी राष्ट्रों की व्यवस्था सैन्य व्यवस्था पर आधारित है उसमें भी अहिंसा के अतिरिक्त हमारे पास अन्य साधन नहीं है। यह बात सभी राष्ट्रों के राष्ट्र नायक भली-भांति समझते है। तब गांधी के ही देश में उनके नाम से हम क्यों घबराते हैं। परम्परावादी मान्यता, सामन्तवादी संस्कार, पूँजीवादी आकांक्षा, समाजवादी नारे और साम्यवादी संघर्ष के पंचमेल से गांधी ने प्रेम और प्रतिकार की जो नई आचार-संहिता प्रदान की, वही हम नहीं पचा पा रहे हैं।

2 अक्टूबर 1869 को मोहनदास गांधी गुजरात में पैदा हुए। 1888 तक शिक्षा-दीक्षा ली। फिर बैरिस्टर बनने लंदन गये। 1893 में एक मुकदमे की पैरवी के लिए उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वहाँ गोरे शासकों का काला कानून रद्द करवाकर वे 1914 में लौटे। वहाँ उन्होंने सत्याग्रह का आविष्कार किया और अहिंसा की सामूहिक शक्ति का साक्षात्कार खुद किया एवं दूसरों को कराया। फिर बिना शस्त्र उठाये भारत को अंग्रेजी दासता से मुक्ति दिलाने हेतु स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व सम्भाला। 15 अगस्त 1947 को जब देश आजाद हुआ तो देशवासी उनके सम्मान में गाने लगे-

''साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।
दे दी तूने आजादी हमें बिना खड्ग बिना ढ़ाल॥''[3]

गांधी का जीवन घटना प्रधान नहीं है। हर घटना उनकी मंजिल के मार्ग में स्थित मील का पत्थर थी। जितना जिस का उपयोग था, उतना लिया बाकी छोड़ दिया। वे सुबह जहाँ खड़े थे वहाँ दोपहर में नहीं रहे और जहाँ दुपहरी बितायी सायं उससे आगे निकल गये। उन्होंने इतिहास से जितना लिया, उससे अधिक इतिहास जिया, उससे ज्यादा आने वाले इतिहास के लिए किया। इसलिए आखेट युग से साम्राज्यवादी युग तक चली आयी अविच्छिन्न परम्परा को विदाई देते हुए उन्होंने कहा कि आततायी का उत्तर आततायीपन से विकृत्ति का उत्तर विकृत मन से देने वाला युग समाप्त हुआ। उस युग में परस्पर अविश्वास और लादी हुई हुकूमत चली, लेकिन अब परस्पर विश्वास प्रदर्शित कर गये युग का सूत्रपात करना है।

गांधी के सामने दो तरह के लोग थे। राजनेता और धर्मनेता। राजनेताओं का विश्वास शस्त्र पर था, धर्मनेताओं का शास्त्र पर। गांधी ने दोनों की हैसियत बदल दी। सन्तों को सैनिक बनाया और सैनिकों को सन्त। हृदय परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन और व्यवस्था परिवर्तन के लिए। व्रतों की आचार-संहिता दीः-

* प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रम्हचर्य असंग्रहः।

शरीर श्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जनम् ॥

सर्व धर्म समानत्व स्वदेशी स्पर्श भावना ।

विनम्र व्रत निष्ठा से ये एकादश सेव्य है॥[4]

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह का पालन करने वाले सन्त उत्पादन में हिस्सा लेने लगे। छप्पन भोग लगाने वालों ने सादा खाना प्रारम्भ किया। पुलिस की घुड़की से भागने वाले सेना के सामने सीना तानकर खड़े हुए। विदेशी वस्तुओं का व्यामोह छूटा। स्वदेशी उत्पादन बढ़ा। छूआछूत की जगह एक साथ चलने, रहने, काम करने एवं मिलजुल कर दैहिक, दैविक, भौतिक तापों का निराकरण करने की भूमिका तैयार हुई। इसी तरह जो शस्त्र चलाने में माहिर थे, संग्रह ही जिनका पेशा था, भोगों से आसक्ति जिनसे छूटती न भी, बिना विचारे झूठ बोलते थे, वे यम-नियम पालने लगे। देश का नव निर्माण हुआ। रचनात्मक प्रवृत्तियां फैली। यह सब देखकर गोरी सरकार हतप्रभ रह गयी कि अंग्रेजों की उद्धतता की परवाह न करते हुए जो गांधी द्वेष के तमाम बलों को एकत्र कर उचित दिशा में लिये जा रहा है, उसे क्या कहा जाय?

गांधीजी ने अंग्रेजों के दोष गिनाये वैसे ही अपनी कमजोरियाँ भी जगजाहिर की। हिन्दुस्तान के लोग डर के सारे काम करते हैं, भय से सच नहीं बोलते। सरकार को धोखा देते हैं। स्वयं को भी धोखा देते हैं। ढेड़, भंगी आदि के साथ मानवीय व्यवहार नहीं करते। हमारी गुलामी का यही कारण है। करोड़ों भारतीयों पर हूकूमत करने वाले एक लाख गोरों से कह दे कि आज से हम गुलाम नहीं रहेंगे तो या तो ये लोग चले जाऐंगे, या हमारे भाई बनकर रहेंगे। परन्तु ऐसा करने की शक्ति प्राप्त करने की पहली सीढ़ी यह है कि हिन्दू, मुसलमान, जैन-बौद्ध, सिक्ख, इसाई, पारसी आदि आपस में भाई-चारा रखें। अपव्ययी मअि ढ़ग से संचालित सरकारी विभागों, खर्चीले अधिकारियों और मनमानी करने वाले शासकों से छुटकारा पाने हेतु अपनी आदतें बदले। शिक्षित-अशिक्षित, संन्यासी-गृहस्थ मिलकर राष्ट्रीय उपासना के तौर पर कम से कम आधा घंटा रोज चरखा चलायें। पानी की एक-एक बूंद, अनाज के एक एक कण, यहां तक कि कागज के छोटे-छोटे से टुकड़े का भी सही उपयोग करें । यही बात समय के बारे में भी है। समय हमारी सम्पत्ति नहीं है। हम तो इसका उपयोग करने वाले ट्रस्टी हैं। याद रखें- ''मेहनत सेवा राम की अब न घड़ी आराम की।''

गाँव, नगर, प्रदेश व देश की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति उपलब्ध साधनों से करने की तकनीक में हम पिछड़े हुए नहीं है, परन्तु राष्ट्रीय पैमाने पर अभी तक हममें त्याग तथा अनुशासन नहीं आया। कौटुम्बिक क्षेत्र में हमने अनुशासन और त्याग का जितना विकास किया है, उतना संसार के किसी राष्ट्र ने नहीं किया है। यूरोप में मनुष्य नहीं, परन्तु संस्कृति खराब है और भारत में संस्कृति नहीं मनुष्य खराब है। भारत दुनिया के उन गिने-चुने राष्ट्रों में हैं, जिन्होंने अनेक सभ्यताओं का पतन देखा है, लेकिन वे समय बचे रहे हैं। यह भारत का सौभाग्य ही है कि यहाँ अपनी पुरानी सभ्यता जीवित है, हालांकि उस पर अंधविश्वासों और बुराइयों की परत जम गयी है, लेकिन अभी तक भारत अंधविश्वासों तथा बुराइयों को दूर करने की क्षमता का परिचय देता रहा है, वही क्षमता राष्ट्रीय व्यवहार में दिखायी दिये बिना निस्तार नहीं है।

गांधी जी का एक एक शब्द लोक-मानस में बैठने लगा। प्रत्येक जाति, सम्प्रदाय, भाषा वर्ग के लोगों में सुधार की आकांक्षा पैदा हुई। लोग सामाजिक धार्मिक सुधारों से सहमत हुए। कुछ विरोधी रहे उन्हें समझाया गया- एक समय ऐसा था, जब हमारे पूर्वज मनुष्यों की बलि चढ़ाते थे। वह रिवाज पैशाचिक था, अधर्म था, परन्तु उन्हें तो वह पुण्य ही लगता था। उन्हें आज के हिसाब से नापने का अन्याय हम न करें। यदि उनके साथ न्याय करना है तो हमें स्वयं को उनकी स्थिति में रखना चाहिए और यह समझना चाहिए कि जब नर मेध बंद हुआ तो उन्हें कैसा लगा होगा? यह जो मैं कह रहा हूँ यह भूतकाल के पापों के बचाव के लिए नहीं, यह बताने को कहता हूँ कि उनके पाप के मूल में उनका अज्ञान था। आज के अंधरूढ़ियों की स्थिति भी ऐसी ही समझिए।

कमजोर को बलवान और पापी को पुण्यात्मा बनाने की समन्वित रीति नीति कारगर रही, तब गांधी ने दुखती रग पर हाथ रखा और यह कहकर समझ विकसित की कि शरीर नश्वर है, उसमें रहने वाली आत्मा अनश्वर यह तथ्य भारतीय शास्त्रों में परिपूर्णता के साथ प्रतिपादित हुआ है, लेकिन रामायण महाभारत आदि ग्रन्थों में अवतारी पुरुषों का खून का प्यासा बैर से भरा, दुश्मन के प्रति दयाहीन भी बताया गया है। राजा-महाराजा तो खून का दरिया बहाने वाले थे ही। मुझे वे सब लुटेरे मालूम होते हैं। उन्हें एक खास उद्देश्य पूरा करना था, उसके लिए उन्होंने पराक्रम किया। हमारी जनता ने सभी राजाओं को संतुष्ट रखने की कोशिश की। पशुओं को नैवेद्य चढ़ाया, सांपों की भी पूजा की। सब कुछ स्वार्थ साधने के लिए किया। मुस्लिम काल में हिन्दू-से-लड़ने के लिए मुसलमानों से कम तत्पर न थे। इतना जरूर था कि वे संगठित नहीं थे। भूतकाल में दया के प्रति सिद्धान्त के रूप में बौद्ध धर्म भी पूरी तरह असफल सिद्ध हुआ। अगर दंत कथायें सत्य हैं तो महान शंकराचार्य ने हिन्दुस्तान से बौद्धधर्म को निकाल बाहर करने के लिए अवर्णनीय निर्दयता से काम लेने में संकोच नहीं किया था। जैनों में खून देखकर जबरदस्त डरने का वहम है, परन्तु दुश्मन के विनाश से इस पृथ्वी पर और किसी को जितना आनन्द हो सकता है, उतना जैनों को भी होगा। ब्रिटिशकाल में तो जनता का जबरन निःशस्त्रीकरण हो गया है परन्तु दिल से मारने की इच्छा जरा भी नहीं गयी। गांधीजी यह बात समझा कर चुप ही नहीं हुए वरन् ब्यौरेवार बताया कि पाषाण, दंड, दलवार, तोप-बंदूक और बमों के इस्तेमाल से हिंसा

उत्तरोत्तर बढ़ी है और द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रयुक्त अणुबम की अत्यन्त करुण कहानी ने स्थापित कर दिया है कि हिंसा से हिंसा की आशा रखना बेइमानी है।

हम सभी परिचित हैं कि 1939 से 1945 तक चले द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, रूस ने अपने मित्र देशों के साथ मिलकर जर्मनी, जापान, और इटली को हराया। जापान के हिरोशिमा नागासाकी के नगरों पर परमाणु बम गिराये। उस युद्ध में 2.2 करोड़ लोग मृत्यु को प्राप्त हुए। 2.925 करोड़ अपंग या घायल हुए, 2.125 करोड़ विस्थापित हुए। इण्टरनेशनल रिव्यू ऑफ डिप्लोमेटिक पॉलिटिकल साइंस के अध्ययनानुसार उतनी रकम संहार की जगह सृजन में लगती तो 2 लाख से अधिक आबादी वाले हर नगर के लिए पुस्तकालय, पाठशाला, अस्पताल के लिए 25-25 करोड़ डालर का अनुदान मिल जाता। इसके अलावा विकसित राष्ट्रों का हर नागरिक भी 12 हजार डालर के भव्य मकान, 4 हजार डालर के कीमती सामान तथा 20 हजार डालर के अनुदान पा सकता था।

नवयुग निर्माता गांधी की बात जितनी आसानी से युद्ध-पीडित देशों के लोग समझते, उतने भारतीय नहीं। भारत में अहिंसा की बात है, अहिंसा निष्ठा कहाँ? आम मान्यता है कि अहिंसा का स्थान व्यक्तिगत साधना में है। राजनैतिक या सार्वजनिक में यह नहीं चल सकती । गांधी ने इसे वही चलायी । आखेट युग से अणु युग तक दी गयी हिंसा की चुनौती को स्वीकार करने का साहस इतिहास में पहली बार गाँधी ने किया, इसलिए वह बेजोड़ है। बेमिसाल है। पहली बार अहिंसा का प्रयोग गांधी ने सार्वजनिक राजनीतिक जीवन में किया। यह गांधी का करिश्मा है कि जिन अंग्रेजों के राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, वे बोरिया-बिस्तर बांधकर भारत से जाने के बाद भी भारत के मित्र रहे और दो सौ साल उनके क्रूर शासन को झेलने के बाद भी भारतीयों के मन में उनके प्रति संवेदना रही।

लोकमान्य तिलक का नारा था - ''स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे हम प्राप्त करेंगे । गांधी जी ने गोलमेज परिषद में कहा - ''मैं नम्रतापूर्वक स्वराज्य की मांग करता हूँ, क्योंकि बिना उसके हिन्दुस्तान के गरीबों का उद्धार होने वाला नहीं है।'' स्वराज्य पाते ही हम अधिकारों की अंधी दौड़ में शामिल हो गये। कर्तव्य बहुत पीछे छूट गया, गांधी से रिश्ता टूट गया। महात्मा गांधी बापू, राष्ट्रपिता आदि शब्दों की आड़ में अपना मुंह छिपाने लगे। प्रतिमा कौन कहे, परछाई पूजी जाती है। इसलिए शान, सत्ता सम्पन्नता के लिए स्वतंत्र भारत के नेता प्रतिवर्ष 30 जनवरी को दिल्ली में राजघाट स्थित बापू की समाधि पर श्रद्धा सुमन चढ़ाने का रस्म अदा करते हैं।

'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' शिव की आराधना करने के लिए शिव बनना पड़ता है। वैसे ही गांधी कार्य गांधी बने बिना नहीं हो सकता। गांधी के नाम पर सुख-सुविधा बटोरना, ताप नियंत्रित महलों में रहना देश की दौलत का सफाया करने वाले अनुत्पादक प्रकल्पों को प्रश्रय देना और भिन्न मत वालों के प्रति अशिष्टता दिखाना अनुचित है। उन्होंने 29 जनवरी 1948 को कहा भी था कि भारत के शहरों और कस्बों से भिन्न आप अपने सात लाख (आज यह संख्या करोड़ों में) गांवों की दृष्टि से सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी अभी प्राप्त करना है। जब तक यह हमें प्राप्त नहीं हो जाती तब तक शानदार मकान हमें क्यों चाहिए। जिस देश की आधी आबादी गरीबी की रेखा से नीचे जाने को विवश हो, महिलाओं के पास बदलने के लिए साड़ी न हो, कुपोषण से बच्चे बिना मौत मरते हो वहां शान दिखाना, पांच सितारा होटल बढ़ाना व्यसनों को प्रोत्साहित करना धोखा है। जहाँ-जहाँ शासक ऐसे धोखा देंगे वहाँ सच्ची लोकशाही के ध्येय की ओर बढ़ने के मार्ग में सैनिक शक्ति पर लोकशक्ति की विजय का संघर्ष अनिवार्य है।

अतः वर्तमान संदर्भ में गांधी का चिंतन, रचनात्मक कार्य राष्ट्र और व्यक्ति के लिए अनिवार्य है।

संदर्भ

1- मोहनदास करमचंद गांधी : जोहान्सवर्ग (दक्षिण अफ्रीका) 5 मई 1906

2- आचार्य शरद कुमार साधक : बदली नजर नजारा बदले, पृ0 21

3- कवि प्रदीप की रचना

4- एकादश व्रत

●

गांधी चिन्तन का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक आयाम

प्रो. आनन्द प्रसाद मिश्र[*]

महात्मा गांधी हमारे बीच दैहिक रूप में 70 साल से अधिक समय तक विद्यमान न होने के बावजूद, अपने विचारों एवं कर्मों के संदेश से दुनिया और भारत को अभिसिंचित कर रहे हैं। मानवता के विकास में गांधीजी के योगदान को सदैव याद किया जाता रहेगा। 20वीं सदी जब हिंसा के चक्रव्यूह में फँसी थी, उस समय गांधी जी ने समूचे विश्व को सत्य के प्रयोग एवं अहिंसा का सूत्र दिया। उन्होंने विश्व को संदेश देते हुए कहा- 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है', और इसीलिए गांधी याद किये जाते रहेंगे। मानवता के इतिहास यात्रा में- अपने जीवन संदेश एवं सत्य के लिए प्रयोग के लिए! गांधी आर्थिक एवं राजनैतिक स्वतंत्रता की संकल्पना को पश्चिम के चिन्तन से ग्रहण करने के बावजूद भी उसमें व्यापक परिवर्तन भी किए। गांधी ने हिन्दुस्तान के अनवरत संस्कृति प्रवाह की वैचारिकी एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि की जमीनी सच्चाई को स्थापित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वस्तुतः गांधी अपने सभ्यतामूलक विमर्श के लिए इतिहास में सदैव याद किये जाते रहेंगे। मानव की संस्कृति और उसका सौन्दर्य बोध उसके परिवेश से जुड़ा जीवन के चिरंतन एवं अन्तःप्रक्रिया का ही प्रतिफलन होता है। प्रकृति का विराट रूप और उसका नैसर्गिक स्वरूप अपने प्रवाह और विविधता के गर्भ से भाषा, संस्कृति और मानव व्यवहार के बहुरंगी स्वरूप को अस्तित्व में लाता है। चिन्तन की जमीनी बारिकियाँ गांधी को हिन्दुस्तान पर गहन अन्वेषण के लिए प्रेरित करती रही हैं और गांधी अपने वैचारिकी का आधार हिन्द स्वराज में प्रतिपादित करते हुए कहते हैं- 'जो बीज हमारे पुरखे बोये हैं, उसकी बराबरी कर सके ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आयी। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया, मिस्र की बादशाही चली गयी, जापान पश्चिम के शिकंजे में फंस गया और चीन का कुछ भी कहा नहीं जा सकता। लेकिन गिरा-टूटा जैसा भी हो हिन्दुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत हैं।'

गांधी अपने 150वीं जयंती के पुरा होने पर अमुर्त रूप से हमारे बीच आज भी प्रेरणा स्त्रोत बने हुए हैं। गांधी 21वीं सदी के साभ्यतामूलक विमर्श के अग्रणी महानायक हैं जो विश्व की चुनौतियों को समझने का नवीन संदर्भ प्रस्तुत करते हैं, और इन्हीं संदर्भो में गांधी को देश और विदेश में उनके 150वीं जयंती के अवसर पर याद किया जा रहा है। वस्तुतः यह गांधी की विरासत को 21वीं सदी में समझने और आत्मसात कर विश्व की हिंसक टकराहट को समाप्त करने का अवसर भी देता है। मार्टिन लुथर किंग ने जब 1964 में शान्ति के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त किये तो उन्होंने इसका श्रेय महात्मा गांधी को देते हुए कहा, ''वह गांधी थे जिन्होंने अपने देश की जनता को ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्त कराते हुए सदियों से उसके द्वारा जारी राजनैतिक वर्चस्व और आर्थिक शोषण की प्रक्रिया से निजात दिलाया।''[7] उपरोक्त तथ्य यह साबित करता है कि गांधी अनेक वैश्विक सभ्यतामूलक विमर्श के केंद्रिय आकर्षण हैं। गांधी जीवन के जमीनी सच्चाई से जुड़कर सत्य के खोज में अनवरत नित्य नवीन सांसारिक तत्वों से टकराने वाले महान योद्धा हैं और यही उन्हें महात्मा की श्रेणी में ऐतिहासिक महत्व प्रदान करता है।

गांधी जी हिन्दुस्तान के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए, एशिया के इस भूखण्ड को उसके नैसर्गिक भौगोलिक पहचान से जोड़कर ही समझने का प्रयास करते रहे। गांधी जी मानते थे- हमने अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा लिखित किताबों से इतिहास ज्ञान अर्जित किया। हमने अपनी मातृभाषा अथवा राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी में किताबें नहीं लिखी। यह सांस्कृतिक पराभव है, जिससे भारत गुजर रहा है~ उनका मानना था कि हिन्दुस्तान को बड़े शहरों, व उनके रहन-सहन एवं ज्ञान से नहीं समझा जा सकता है। हिन्दुस्तान को समझने के लिए यहाँ के 7 लाख गांव और उसमें निवास करने वाले लोगों पर अध्ययन करना होगा और समझना होगा।[4,5] गांधी हिन्दुस्तान के गांव को शक्ति का केन्द्र एवं उत्पादन की इकाई मानते थे। वह पश्चिम की विस्तारवादी, मुनाफे पर आधारित विकास, अवधारणा के विकल्प के रूप में हिन्दुस्तान की ग्रामीण संरचना और उत्पादन पद्धति को देखते थे। हिन्दुस्तान का गांव समुचे विश्व को विकास के टिकाऊ, सहभागी, समरस एवं प्रकृति के रक्षक के रूप में एक नवीन अवधारणा के साथ प्रस्तुत करता है। गांधी इसीलिए समाज वैज्ञानिक अध्ययन में इतिहास, साहित्य एवं भूगोल विषय को एक साथ समावेशित करने पर बल देते रहे हैं। यह सुविचारित विचार गांधी के वैचारिकी को भारत के ग्रामीण समाज को समझने के लिए एक नवीन दृष्टि प्रदान करता है। गांधी का अपने ग्रामीण समाज से मोह जीवन पर्यंत बना रहा। गांधी के इस ग्रामीण समाज से लगाव को गोखले ने और मजबूत किया। साथ ही, कालान्तर में अम्बेडकर के दलित प्रश्न को समझने और समाधान हेतु सत्ता से दूर ग्रामीण अंचल को अपना कार्यक्षेत्र बनाया।

समाज, इतिहास एवं भौगोलिक संदर्भ :- गांधी जी समाज, इतिहास एवं भूगोल को एक समन्वित सोच के रूप में देखते थे। इतिहास लेखन में 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' गांधी

* प्रोफेसर, भूगोल विभाग, विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जी की एक महत्वपूर्ण कृति है। वस्तुतः प्रकृति के बिना मनुष्य का अस्तित्व नहीं, समाज का अस्तित्व नहीं, समाज के इतिहास का अस्तित्व नहीं। गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास लिखते समय पहले अध्याय का शीर्षक दिया, 'भूगोल'। गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका के अर्थतंत्र और उसके समाज को लिखते हुए, वहाँ के भौगोलिक पृष्ठभूमि को भी दर्शाया। उन्होंने लिखा, ''दक्षिण अफ्रीका में जिस तरह के अर्थतंत्र का विकास हुआ, उसका गहरा सम्बन्ध वहाँ की प्रकृति से है। दक्षिण अफ्रीका का मुख्य व्यवसाय खेती है। यह देश इसके लिए है भी बहुत अच्छा। इसके कुछ भाग तो अत्यंत उपजाऊ और रमणीय है।''[2] यहाँ भौगोलिक परिवेश एवं अर्थतंत्र के रिश्ते को बखूबी उजागर करते हैं। गांधीजी कहते हें, ''दक्षिण अफ्रीका में जोहानिसबर्ग नाम का नगर है, और उसके पास हीरे की खाने हैं। ये खाने भी प्रकृति की देन है। यहां मनुष्य खानो से उत्पादन करते हैं और समाज में नए सम्बन्ध कायम होते हें।' गांधी यहाँ विकास, सामाजिक संरचना, भौगोलिक पृष्ठभूमि एवं संसाधन के बीच स्थापित अन्तःसम्बन्धों का वर्णन करते हैं।

हिन्दुस्तानियों के द्वारा प्रस्तावित सत्याग्रह का इतिहास लिखने से पहले गांधीजी अफ्रीका के आदिवासियों का परिचय देते हैं। जो लोग नस्लवादी दृष्टि से इतिहास लिखते हैं, उनके लिए अफ्रीका का इतिहास काले आदमियों का इतिहास है 'परन्तु गांधी इसे अलग तरीके से देखते हैं।' ''वह काले आदमियों में उनकी भाषाओं और जातियों की पहचान करते हैं।'' उनकी जातियों के नाम ही उनकी भाषाओं के नाम भी हैं। गांधी जी जुलू अफ्रीकी आदिवासियों की भाषा का विशद विवेचन करते हुए कहते हैं कि, ''जुलू भाषा अत्यन्त मधुर है। उसके शब्दों के अन्त में ज्यादातर 'आ' की ध्वनि होती है। इसलिए भाषा कानों को कोमल और मधुर लगती है।''[2] गांधी जी का उपरोक्त कथन भाषा और समाज सम्बन्धी सोच उनके गम्भीर भौगोलिक चिन्तन को प्रदर्शित करता है। दरअसल भाषा एवं अनगिनत बोलियों का विकास मानव समुदाय अपने आस-पास के प्रकृति एवं उसके भौगोलिक 'परिवेश के साथ अन्तःसम्बन्ध, परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया के तद्जनित भावनात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा ही होता है। दुनिया में प्रचलित भाषा एवं बोलियों के विविधता का रिश्ता सूक्ष्म जलवायु, उच्चावच, जल प्रवाहतंत्र, नदी, पहाड़, पठार, मैदान और समुद्र जैसे भौगोलिक विविधताओं से जुड़ा हुआ है। मानव अपने बहुलवादी भौगोलिक पृष्ठभूमि के बीच अपने नैसर्गिक अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने के लिए भाषा एवं बोलियों का परिष्कार कर, अपने जीवन के क्रियाकलापों में उपयोग करता है। भाषा का उद्भव, मानव एवं प्रकृति के लम्बे परस्पर अन्तःप्रक्रिया से होता है। यह अन्तःप्रक्रिया संचयी ज्ञान श्रृंखला की कड़ी भी है और इसीलिए दुनिया में लगभग 7000 भाषा एवं बोलियों का बजूद अपने अन्दर ईलाकाई ज्ञान को समेटे हुए है। भाषा का रिश्ता भूगोल एवं इतिहास से मजबूती के साथ जुड़ा हुआ है। गांधीजी अपने जीवन के अनुभवों, जो उन्होंने सत्य के साथ प्रयोग में किया था, उससे भाषा, इतिहास एवं भूगोल के रिश्ते को बखूबी समझा था।

गांधी का इतिहास बोध

गांधी इतिहास को उसके समग्र रूप में देखते थे, तथा इतिहास को उसके सभ्यता मूलक संदर्भ में खोजने की कोशिश करते थे। गांधी इतिहास को समझाते हुए कहते हैं कि, इतिहास का शब्दार्थ है : 'ऐसा हो गया।' 'इतिहास' जिस अंग्रेजी शब्द का तरजुमा है और जिस शब्द का अर्थ बादशाहों या राजाओं की तवारीख होता है। उसका अर्थ लेने से सत्याग्रह का प्रमाण नहीं मिल सकता। जस्ते की खान में आप अगर चाँदी ढूंढ़ने जायें, तो वह कैसे मिलेगी? 'हिस्ट्री' में दुनिया के कोलाहल की ही कहानी मिलेगी। इसलिए गोरे लोगों में कहावत है कि जिस राष्ट्र की 'हिस्ट्री' (कोलाहल) नहीं है, वह राष्ट्र सुखी है। राजा लोग कैसे खेलते थे, कैसे खून करते थे, कैसे बैर रखते थे, यह सब 'हिस्ट्री' में मिलता है। अगर यही इतिहास होता, अगर इतना ही हुआ होता, तब तो दुनिया कब की डूब गयी होती। अगर दुनिया की कथा लड़ाई से शुरू होती, तो आज एक भी आदमी जिंदा नहीं रहता। 'हिस्ट्री' अस्वाभाविक बातों को दर्ज करती है। सत्याग्रह, स्वाभाविक है, इसलिए उसे दर्ज करने की जरूरत ही नहीं है।''

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि गांधी मानते थे- सच्चाई के साथ खड़ा होना, सत्य के लिए आग्रह करना- मनुष्य जाति के इतिहास का अभिन्न अंग है। गांधी इसके भौगोलिक संदर्भ एवं विभिन्न सभ्यताओं के बीच देखने और समझने का गम्भीर प्रयास करते रहे हैं। गांधी जी इतिहास लेखन पर अपनी राय रखते हुए कहते हैं, 'जो तलवार चलाते हैं उनकी मौत तलवार से ही होती है। हमारे यहाँ ऐसी कहावत है कि 'तैराकी की मौत पानी में डुबने से होती है। गांधी जी इतिहास को समझते हुए कहते हैं ''हिन्दुस्तान अंग्रेजों ने लिया सो बात नहीं है, बल्कि हमने उन्हें दिया है। हिन्दुस्तान में वे अपने बल से नहीं टिके हैं, बल्कि हमने उन्हें टिका रखा है। वह कैसे सो देखें। आपको मैं याद दिलाता हूँ कि हमारे देश में दरअसल वे व्यापार के लिए आये थे। आप अपनी कंपनी बहादुर को याद कीजिए। उसे बहादुर किसने बनाया? वे बेचारे तो राज करने का इरादा भी नहीं रखते थे। कंपनी के लोगों की मदद किसने की? उनकी चाँदी को देखकर कौन मोह में पड़ जाता था? उनका माल कौन बेचता था? इतिहास सबूत देता है कि यह सब हम ही करते थें।'' यहां गांधी औपनिवेशिक विचार सत्ता को इतिहास के कारक तत्त्व एवं सामाजिक-भौगोलिक संदर्भ में देखते हुए उजागर करते हैं। गांधी इतिहास के सर्वांगीण पक्ष को उद्घाटित करते हुए एक ऐतिहासिक मीमांसा प्रस्तुत करते हुए आगे कहे हैं, ''करोड़ों कुटुम्बों का क्लेश प्रेम की भावना में समा जाता है, डूब जाता है। सैकड़ों राष्ट्र मेलजोल से रहे हैं। इसको 'हिस्ट्री' नोट नहीं करती, 'हिस्ट्री' कर भी नहीं सकती। जब इस दया की प्रेम की ओर सत्य की धारा रूकती है, टूटती है तभी इतिहास में वह लिखा जाता

है। 'हिस्ट्री' अस्वाभाविक बातों को दर्ज करती है। सत्याग्रह स्वभाविक है, इसलिए उसे दर्ज करने की जरूरत ही नहीं है।'' गांधी यहाँ इतिहास की विवेचना के लिए सामाजिक और भौगोलिक संदर्भ को महत्त्व प्रदान करते हैं। किसी भी समाज के बीच व्याप्त जन पक्ष को उस समाज के बीच विकसित होते साहित्य और उसके विमर्श के द्वारा समझा जा सकता है। गांधी जी साहित्य और भूगोल के बीच निर्मित ऐतिहासिक संदर्भ को बखूबी समझते हैं और इसी को ध्यान में रखते हुए गांधी जी भूगोल, इतिहास एवं साहित्य के बीच मजबूत कड़ी स्थापित करने की बात करते हैं। गांधी जी का यह चिन्तन भौगोलिक चिन्तन की परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जिसे भारत के भौगोलिक चिन्तन में उचित महत्त्व प्रदान करने की आवश्यकता है।

भूगोल इतिहास एवं साहित्य के अन्तःसम्बन्ध

भौगोलिक इकाई अपने भौगोलिक पृष्ठभूमि के चलते एक स्वतंत्र पहचान के रूप में परिलक्षित होता है। भौगोलिक पृष्ठभूमि को निर्धारित करने वाले तत्त्व अपने स्थानिक-समय संदर्भ में परिवर्तनशीलता एवं विविधता को दर्शाते हैं और इसी के चलते धरातल पर विभिन्नता दिखायी पड़ती है। धरातलीय विभिन्नता के बीच से ही भाषायी विविधता का उद्भव होता है। गांधी जी इस भौगोलिक सन्दर्भ को भली-भांति समझते थे। उनका मानना था, ''भाषाएं उनके बोलने वाले लोगों के चरित्र का प्रतिबिम्ब होती हैं।''[2] भाषा का सम्बन्ध अपने भौगोलिक परिवेष के साथ अटूट होता है। दुनिया की प्रचलित भाषाएं मानव, प्रकृति और उसके भौगोलिक परिवेश के बीच होने वाले अन्तःप्रक्रिया का प्रतिफल और मानवीय अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। गांधी जी इस तथ्य से अच्छी तरह अवगत थे। गांधी जी मानते थे, ''माँ के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने से टूट जाता है।''[2] यह गांधी जी के जमीनी लगाव को दिखाता है। गांधी जी अपने भौगोलिक चिन्तन के चलते भारतीय शिक्षा में भूगोल, इतिहास और साहित्य तीनों को मिलाकर एक साथ पढ़ाने की जरूरत पर बल देते थे। उन्होंने 1917 में साकल चंद शाह को लिखा, ''मुझे लगता है कि इतिहास और भूगोल को जो अलग-अलग रखा गया है। गुजराती के साथ मिला दिया जाय। हम गुजराती भाषा के माध्यम से मानसिक शक्ति का विकास करना चाहते हैं।''[2]

गांधी जी मैकाले द्वारा निर्धारित शिक्षा के बड़े विरोधी थे। उनका मानना था कि अंग्रेजी शिक्षा हमारे साहित्य और उसके धरोहर को महत्त्व नहीं देती हैं, तिरस्कार करती है। ऐसे में हमें इतिहास, भूगोल और अपने साहित्य को एक साथ पढ़ने एवं समझने की कोशिश करनी चाहिए। गांधी जी इसके लिए गुजराती लेखक मलबारी का हवाला देते हैं। वह बताते हैं, ''मलबारी ने कहा है कि इतिहास-भूगोल पढ़ाना हो तो, पहले बच्चों को घर का भूगोल और इतिहास सिखाना चाहिए। मुझे याद है कि मुझे इंग्लैण्ड की 'काउंटियों' को रटना पड़ा तथा भूगोल जैसा दिलचस्प विषय मेरे लिए जहर हो गया था। इतिहास में भी मुझे कोई उत्साहप्रद जैसी कोई बात नहीं मिली।[2]

गांधी जी भौगोलिक परिवेश को अपने सामाजिक-राजनैतिक गतिविधियों को संचालित करने में महत्त्व प्रदान करते थे। अफ्रीका से आने के बाद भारत में जब गांधी आये, और सामाजिक-राजनैतिक गतिविधियों में शामिल होने से पहले वह समूचे भारत को समझने के लिए पदयात्रायें किये, ऐसा करके वह भारत के धरातलीय एवं सामाजिक स्वरूपों को देखना और समझना चाहते थे। यह गांधी के भौगोलिक चिन्तन का आग्रह ही था कि कांग्रेस के अधिवेशन रिपोर्ट में अधिवेशन स्थल के भौगोलिक परिवेश को रेखांकित करने पर जोर दिया जाने लगा। गांधी जी ने पंजाब से सम्बन्धित कांग्रेस की रिपोर्ट में पहले अध्याय का शीर्षक दिया- 'पंजाब' और उसमें नीचे लिखा, इतिहास और भूगोल की दृष्टि से प्राचीन इतिहास (पंजाब) की झलक दिखाने के बाद गांधी जी पंजाब की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हैं और उसके क्षेत्रफल आदि का परिचय देते हैं।''[2]

गांधी जी राष्ट्रीय आंदोलन के मजबूती के लिए भारत के भौगोलिक विविधताओं का खूब ख्याल करते थे। वह औपनिवेशिक विचारों के खिलाफ अपने तर्क की मजबूती के लिए सामाजिक-भौगोलिक संदर्भों का उद्धरण करते थे। उन्होंने अपने विचार में कहा- मैकाले ने भारतीयों को नपुसंक माना, यह उनके अधम अज्ञान का सूचक है। भारतीय नामर्द कभी रहे ही नहीं। जिस देश में पहाड़ी लोग और बाघ व बघेरे साथ-साथ रहते हों, उनके निवासी सचमुच डरपोक हों तो उनका तो नाश ही हो जाए। आप कभी खेतों में गए हैं? मैं आपसे विश्वास के साथ कहता हूँ कि खेतों में आज भी हमारे किसान निर्भय होकर सोते हैं। अंग्रेज और आप वहाँ सोने में आनाकानी करेंगे। बल तो निर्भयता में है।''[2] गांधी यहाँ हमारे राष्ट्रवाद की खुराक भौगोलिक एवं सामाजिक संदर्भों से प्राप्त करते हैं। यह गांधी के भौगोलिक चिन्तन का मानवीय पक्ष है, जिसे मानव भूगोल के विकास में उपयोगी बनाया जा सकता है।

गांधी जी राष्ट्रीय आंदोलन के मजबूती के लिए इलाकाई भौगोलिक पृष्ठभूमि एवं सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए प्रेरित करते थे। गांधी जी मानते थे कि व्यक्ति सर्वसुलभ पृथ्वी को दूसरे के साथ रहकर उपयोग करना सीखें।[8] गांधी मानव और प्रकृति के बीच सदियों से स्थापित रिश्ते को अच्छी तरह से समझते थे। वह मानते थे, ''मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज से बगैर सरोकार के अपने को ब्रह्माण्ड से एकाकार और अपने अहम को मिटा नहीं पायेगा। उसकी सामाजिक अन्तरसम्बद्धता आस्था को परखने एवं यथार्थ से जुड़ने का मौका देती है। यदि मानव दूसरों के मुकाबले अति ऊँचाई पर है, या खुद शिखर पर चढ़ सकता है, तो वह घमंडी हो जाता है। मानव कि यह स्थिति धरातल पर बोझ और

मूर्खतापूर्ण है।''[6] गांधी अपने चिन्तन में व्यक्ति और प्रकृति के बीच सरल, सहज और स्वायत्त सम्बन्ध की बात करते हैं। उनके लिए मानव और उसकी आत्मा की स्वतंत्रता सर्वोपरि है। वह हिन्दुस्तान की सभ्यता और भूमि को प्रकृति और मानव के बीच स्वायत्त सम्बन्ध को आदर्श मानते थे। गांधी कहते हैं, ''अंग्रेज और अमेरीकन अध्यापक और उनका इतिहास और कविता हमें स्वतंत्रता की बात नहीं समझा सकते। यदि उन्हें स्वतंत्रता को सही अर्थों में समझना है, तो उन्हें बगैर किसी आग्रह और घमंड के भारत आकर सीखना होगा। उन्हें एक अच्छे 'सत्य शोधक' की तरह यहाँ आना होगा।''[3] गांधी अपने विचारों एवं कार्यशैली में अनवरत रूप से हिन्दुस्तान के गांव, उसके उत्पादन, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परिवेश, प्रकृति और विकास के रिश्ते पर गहन शोध करते रहे। वह अपने सघन यात्राओं, विमर्श एवं शोधपरक दृष्टि से हिन्दुस्तान के भौगोलिक पहचान, इतिहास एवं भाषायी विकास के बीच अन्तः सम्बन्धों को व्याख्यायित करते रहें।

भौगोलिक चिन्तन में गांधी मार्ग

आधुनिक भारतीय भौगोलिक चिन्तन मूलतः औपनिवेशिक विस्तार के सहयोगी के रूप में ब्रिटिश सहयोग से विकसित हुआ। भौगोलिक चिन्तन के विकास का यह रूप बहुत हद तक भूगोलवेत्ताओं को हिन्दुस्तान के सभ्यतामूलक विमर्श एवं ग्रामीण समाज के यथार्थ से दूर रखा। गांधी जी अपने व्यापक यात्राओं के जरिए हिन्दुस्तान की जमीनी सच्चाई से अवगत हुए। अपने अनुभवों से उन्होंने भौगोलिक प्रदेशों के पृष्ठभूमि के अनुसार राष्ट्रीय आंदोलनों में गांधी जी द्वारा किये शोध सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार एवं जनपक्षीय जुड़ाव समकालीन दौर के भूगोल के शोधार्थियों के लिए प्रेरणाश्रोत का काम कर सकता है। ग्रामीण समाज, उसके अधिवास उत्तरोत्तर विकसित होती उत्पादन प्रक्रिया, सांस्कृतिक विरासत एवं भौगोलिक महत्त्व के तत्त्वों का अध्ययन गांधी जी द्वारा स्थापित चिन्तन दृष्टि से किया जा सकता है। समकालीन दौर में भारतीय भौगोलिक अध्ययन वैश्विक बाजारवादी दबाव, तकनीकी विस्तार एवं जनपक्ष का तिरस्कार एवं एकांगी चिन्तन प्रक्रिया से समयाग्रस्त हो गया है। आज भौगोलिक अध्ययन में ग्रामीण परिवेश को ध्यान में रखकर उसमें उत्पन्न होते नित्य नये संदर्भों को शामिल कर नवीन चिन्तन पद्धति का विकास करना होगा। उपरोक्त संदर्भ में गांधी आज भी हमारे बीच प्रासंगिक है, विशेषकर 21वीं सदी के युवा भूगोलवेत्ताओं के लिए।

संदर्भ सूची

1. गांधी, (1949) हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद
2. रामविलास शर्मा (2008) : गांधी, आम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली पृ.381-401
3. Antony Coptey, 2002, Is there a Ghandhian Defination of Liberty? in (edited) Volume, (Anthony J. Parel in Gandhi, Freedom and Self Rule, Vistaar Publication, New Delhi) P. 26
4. Gandhi Speech, Before Inter-Asian Relations Conference, 02.04.1947, https.www.mkgandhi.org/speech/interasian.htm. 27.03.2019
5. Ghandhi, Harijan 20.04.1947 PP. 116-117
6. Gandhi, Young India, 21.03.1929
7. Indianexpress.com 150 years of Gandhi, 15.05.2019

   Parel, Anthony J. (2002), "Gandhi, Freedom, and Self-Rule" (ed.), Vistaar Publications, New Delhi
8. Ronald J.T. (2002) in edited Volume Anatomy J. Parel in Gandhi, Vistaar Publication, New Delhi P. 26

●

गांधीजी और गीता का व्यावहारिक दर्शन

*डॉ. विचित्रसेन गुप्त**

गांधीजी जैसे महापुरुष धरती पर यदा-कदा जन्म लेते हैं जिनके कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व से न केवल उनकी मातृभूमि बल्कि संपूर्ण मानव जाति लाभान्वित और प्रेरित होती है। विख्यात आंग्ल नाटककार विलियम शेक्सपियर ने अपने प्रसिद्ध सुखान्त नाटक 'Twelfth Night' में लिखा है : Some are born great, some achieve greatness, and some have greatness thrust upon them. (कुछ लोग जन्मजात महान होते हैं, कुछ लोग महानता अर्जित करते हैं जबकि कुछ लोगों पर महानता थोप दी जाती है)। गांधीजी दूसरी श्रेणी में आते हैं। उन्होंने महानता अर्जित की थी और भगवद्गीता को अपने नित्य-प्रति के आचरण में लाकर अर्जित की थी। यदि भगवद्गीता नहीं होती तो मोहनदास करम चंद गांधी — एक अव्वल या सामान्य दर्जे के वकील, राजनेता अथवा कुछ और होते — गांधीजी — राष्ट्रपिता — युगपुरुष अथवा महात्मा गांधी नहीं होते।

भारत भूमि पर जन्म लेने वाला शायद ही कोई महापुरुष या महानायक हो, जिसे भगवद्गीता से प्रेम न रहा हो। गांधीजी से उम्र में लगभग 8 वर्ष बड़े भारतीय राजनीति के शिखर पुरुष, कांग्रेस के शीर्षस्थ नेता, महान शिक्षाविद, पत्रकार, वकील तथा सर्वोपरि राष्ट्रभक्त और हिन्दू धर्मानुरागी पंडित मदन मोहन मालवीय को भी भगवद्गीता से अगाध प्रेम था। उन्होंने स्वयं द्वारा संपादित किए जाने वाले 'अभ्युदय' नामक हिन्दी साप्ताहिक के नाम का औचित्य बताते हुए कहा था कि 'हमें देखना चाहिए कि और किन-किन अच्छे भावों को यह शब्द उत्पन्न कर सकता है। इसका पहला अक्षर 'अ' अखिल लोक की उत्पत्ति और रक्षा करने वाले, समस्त कल्याणों के निधान, परम कारुणिक, सर्वशक्तिमान विष्णु भगवान का सूचक है जिनके स्मरण मात्र से सब पाप दूर होते हैं और मन में पवित्र भाव और मंगलकारी वासनाएं प्रवृत्त होती हैं। इसका दूसरा अक्षर 'भ्' हमको सबसे पहिले उन्हीं भगवान की भक्ति का स्मरण दिलाता है जिन्होंने कहा है — 'न मे भक्तः प्रणश्यति'; और जो भक्ति हमको सबसे अधिक प्रार्थनीय है। फिर हमको यह भूति का, लक्ष्मी का, स्मरण दिलाता है और कहता है — भूत्यै न प्रमदितव्यम् ! — कि जिन बातों से तुम्हारे देश की सम्पत्ति बढ़े, उसके विषय में सचेत रहो। फिर यह सबको भारत, भगवद्गीता, भागवत, भागीरथी, भारती, भाषा और भारतवर्ष का स्मरण दिलाकर आत्मा को आप्यायित करता है।[1] कहने का अभिप्राय यह है कि मालवीय जी के 'अभ्युदय' और गांधीजी के 'सर्वोदय' सिद्धान्त का आधार भगवद्गीता ही है।

वस्तुतः भगवद्गीता का माहात्म्य वाणी से परे है क्योंकि यह एक परम रहस्यमय ग्रंथ है। इसमें प्रयुक्त संस्कृत इतनी सुंदर और सरल है कि थोड़ा अभ्यास करने से सहज ही समझा जा सकता है; और आशय इतना गंभीर है कि आजीवन निरंतर समझते रहने पर भी उसका अन्त नहीं आता। प्रतिदिन नए-नए भाव उत्पन्न होते रहते हैं, इससे यह सदैव नवीन बना रहता है।[2] लेकिन, इस संबंध में गांधीजी का कथन है कि 'गीता शास्त्रों का दोहन है। सारे उपनिषदों का निचोड़ इसके सात सौ श्लोकों में आ जाता है। इसलिए मैंने निश्चय किया कि कुछ न हो सके तो भी गीता का ज्ञान प्राप्त कर लें। आज गीता मेरे लिए केवल बाइबिल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिए वह माता हो गई है। मुझे जन्म देने वाली माता तो चली गई किन्तु, संकट के समय गीता-माता के पास जाना मैं सीख गया हूँ। मैंने देखा है जो कोई इस माता की शरण में जाता है, उसे ज्ञानामृत से वह तृप्त करती है। कुछ लोग गीता को महा गूढ़ ग्रंथ मानते हैं किन्तु हमारे जैसे साधारण मनुष्य के लिए यह गूढ़ नहीं है। सारी गीता का वाचन आपको कठिन मालूम हो तो आप केवल पहले तीन अध्याय पढ़ लें। गीता का सार इन तीनों अध्यायों में आ जाता है। बाकी के अध्यायों में वही बात अधिक विस्तार से और अनेक दृष्टियों से सिद्ध की गई है। यह भी किसी को कठिन मालूम हो तो इन तीन अध्यायों में से कुछ श्लोक छाँटे जा सकते हैं, जिनमें गीता का निचोड़ आ जाता है। तीन जगहों पर तो यह भी उल्लिखित है कि सब धर्मों को छोड़कर तू केवल मेरी शरण ले। इससे अधिक सरल और सादा उपदेश क्या हो सकता है? जो मनुष्य गीता में से अपने लिए आश्वासन (आत्म कल्याण का सुनिश्चय) प्राप्त करना चाहे तो उसे उसमें पूरा-पूरा मिल जाता है। जो मनुष्य गीता का भक्त होता है, उसके लिए निराशा की कोई जगह नहीं है, वह हमेशा आनंद में रहता है।[3] वस्तुतः भगवद्गीता के प्रति गांधीजी की यह दृष्टि ही उनके जीवन दर्शन का प्रस्थान बिन्दु है।

गांधी जी ने एक बार स्वयं कहा था कि उनका जीवन ही उनका संदेश है। निश्चित तौर पर उनका यह संदेश गीता में वर्णित भगवान श्रीकृष्ण के उपदेशों का व्यावहारिक पक्ष अथवा व्यावहारिक स्वरूप है। साथ ही, इस बात का भी स्पष्ट प्रमाण है कि गीता केवल सैद्धान्तिक और वस्तुनिष्ठ न होकर पूर्णरूपेण व्यावहारिक और सर्वोपयोगी जीवन-शैली है। कहने का अभिप्राय यह है कि गांधीजी के लिए गीता के उपदेश ज्ञान मात्र के लिए नहीं अपितु, कर्म और आचरण में परिणत करने के लिए हैं और उहोंने अपने जीवन के माध्यम से इसे अक्षर शः सत्य कर दिखाया है।

---

* हिन्दी अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गांधीजी ने गीता को 'माता' की संज्ञा से विभूषित किया है। इसके पीछे शायद उनकी यही भावना रही होगी कि जिस प्रकार माँ अपनी संतान का सर्वतोभावेन कल्याण चाहती है उसकी प्रकार गीता के उपदेश भी भगवान ने जीवमात्र के कल्याण के लिए ही प्रतिपादित किए हैं। 'माता' शब्द में दो अक्षरों — 'म' और 'त' का संयोग है। ये दोनों अक्षर क्रमशः 'मंगल' और 'तत्त्व' के वाचक हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो गांधीजी के लिए गीता-माता का तात्पर्य ऐसी दिव्य वाणी से है जिसे परमात्मा ने स्वयं अपने श्रीमुख से जीवात्मा के मंगल के लिए निष्पन्न किया है अर्थात् गीता समस्त 'मंगलों की मूल' है।

गीता 'गेय' है। इस बात को शास्त्रज्ञ पंडितों के साथ-साथ गांधीजी और मालवीयजी जैसे दोनों महापुरुष स्वीकार करते हैं। तभी तो दोनों महापुरुष कहते हैं कि भगवद्गीता को कण्ठ करो। वास्तव में गीता के 'गेय' कहे जाने का मूल मंतव्य क्या है? इसका मूल मंतव्य है — सहज भाव से स्वतःस्फूर्त आत्मचेतना से इन उपदेशों का चिन्तन और मनन करना। जिस प्रकार सहज स्थिति में व्यक्ति अपने अभीष्ट गीत या कविता की पंक्तियों को गुनगुनाता है, ठीक उसी प्रकार अन्तः करण से गीता के उपदेशों को चित्त में धारण करो और आचरण करो — गांधीजी और मालवीयजी यही कहते हैं।

गांधीजी के अनुसार मानव जीवन ज्ञान, भक्ति और कर्म का अद्भुत समन्वय है और गीता इनसे संबंधित सभी समस्याओं का समाधान है। उक्त त्रिवेणी में अवगाहन करने वाला व्यक्ति यथार्थ जीवन का मुक्ता-माणिक चुन लेता है। वस्तुतः गीता का गहन अनुशीलन जीवन के गूढ़ रहस्यों को अनावरित करता है। गांधीजी ने गीता को शास्त्रों के निष्कर्ष रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने अपनी कृति 'गीता माता' में श्लोकों का सरल और व्यावहारिक पक्ष उद्घाटित करते हुए टीका प्रस्तुत की है। उन्हें अटूट विश्वास था कि गीता-भक्त को कभी निराशा नहीं व्यापती और वह सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है।

गांधीजी भारतमाता के ऐसे अमर सपूत हैं जिन्होंने अपने आत्मबल से न केवल भारताय राजनीति का स्वरूप परिवर्तित कर दिया बल्कि समस्त संसार को सत्य, अहिंसा और प्रेम का पाठ भी पढ़ाया। उनका दर्शन कोई सैद्धान्तिक वाग्जाल नहीं है अपितु भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत और सनातन हिन्दू धर्म का आधार भगवद्गीता है। मोह-माया का परित्याग और कर्तव्य के लिए कर्तव्य (Duty for Duty sake) उनका जीवन दर्शन है। 'अभय' (Fearlessness) का संदेश भी गांधीजी ने गीता से ही ग्रहण किया था। गीता के इस संदेश ने गांधीजी को इतनी गहनता से प्रभावित किया कि उनका संपूर्ण जीवन ही इसी से निर्देशित और संचालित जान पड़ता है।

अपने ग्रंथ गीता-माता में गांधीजी ने स्वयं कहा है कि गीता के अग्रलिखित श्लोकों का उनके हृदय पर गहरा असर हुआ था, जो आजीवन बना रहा —

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायतेकामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।

क्रोधाद्भावति संमोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥[4]

उक्त का भावार्थ यह है कि — विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़ भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

इन दो श्लोकों ने गांधीजी की दशा और दिशा दोनों बदल दी और उन्हें यह निश्चय हुआ कि भगवद्गीता अमूल्य ग्रंथ है। इसी धारणा के कारण उन्होंने भगवद्गीता को तत्त्वमीमांसा (Metaphysics) का सर्वोत्तम ग्रंथ माना है। गीता का उपरोक्त उपदेश किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं है बल्कि प्राणिमात्र के लिए है। गीता का यही वचन आगे चलकर गांधीजी के लिए सत्य और अहिंसा तथा सत्याग्रह का आधार बना जिनके मूल में गीता के तीसरे अध्याय में वर्णित आत्म-संयम अथवा इन्द्रिय-निग्रह संबंधी उपदेश हैं। गांधीजी के आत्मबल का आधार उनका आत्म संयम ही था जिसके बल पर उहोंने सत्याग्रह किया और सफल रहे। आत्मबल का पाठ उन्होंने गीता से ही पढ़ा था। तभी तो उन्होंने कहा था कि 'शक्ति शारीरिक क्षमता से नहीं आती है। यह एक अदम्य इच्छा शक्ति से आती है'। गीता में प्रतिपादित उक्त उपदेश के संदर्भ में यह विशेष रूप से ध्यान देने की बात है कि ऊपर से हठपूर्वक इन्द्रियों का दमन करना और मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करना, मिथ्याचार कहा गया है, और ऐसा मूढ़ व्यक्ति करते हैं। इसके विपरीत, ज्ञानी जन मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करते हैं। गांधीजी ने अनासक्त होकर ही कर्मयोग का व्यवहार किया और दुनियां को इसके चमत्कारिक परिणाम से परिचित कराया। वे गीता के अनासक्त होकर कर्म करने के सदुपदेश से इतना प्रभावित थे कि उन्होंने भगवद्गीता का सहज और सरल अनुवाद '**अनासक्तियोग**' नाम से प्रकाशित किया।

गीता में सर्वत्र स्वार्थ रहित होकर त्याग की भावना से कर्म करने का उपदेश दिया गया है। स्वार्थ से प्रेरित होकर अर्थात् इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति सहित कर्म किया जाए तो कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है। महाभारत के प्रणेता व्यासजी ने भी कहा है—

न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्येव भूय एवाभिवर्धते।

कहने का अभिप्राय है कि सुखभोग से विषय वासना की तृप्ति कथमपि नहीं होती लेकिन विषय-वासना अहर्निश हवन सामग्री डालने से अग्नि की ज्वाला धधकने की भाँति तीव्र ही होती जाती है। इसका अर्थ यह है कि सभी प्रकार के सुख साधनों के उपलब्ध होने पर भी व्यक्ति को इन्द्रिय-वासनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए क्योंकि सुखभोग तो केवल इच्छाओं को बढ़ाने वाला होता है। इसीलिए गीता में इन्द्रिय निग्रह पर सर्वाधिक बल दिया गया है। गांधीजी का कथन है कि मन को नियंत्रण में रखते हुए भी मनुष्य अपने शरीर से अर्थात् कर्मेन्द्रियों से कुछ न कुछ अवश्य करेगा लेकिन जिसका मन नियंत्रण में है वह बुरा नहीं कहेगा, बुरा नहीं सुनेगा और बुरा नहीं देखेगा बल्कि ईश्वर का भजन करेगा, सत्संग करेगा। मन को नियंत्रण में रखने वाला व्यक्ति विषयों में रसलीन नहीं होता अपितु, शोभनीय कर्म करता है। इसमें विषयासक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है।[6]

'स्थितप्रज्ञ' दर्शन गीता की अद्‌भुत अवधारणा है। यह गीता का आदर्श पुरुष विशेष है। प्रस्थानत्रयी में गीता का जैसा महत्वपूर्ण स्थान है, वैसा ही महत्वपूर्ण स्थान गीता में 'स्थितप्रज्ञ' का है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित स्थितप्रज्ञ के लक्षण हैं – आध्यात्मिक, निर्व्यक्तित्व, समता की भावना, द्वन्द्व रहित, इन्द्रिय संयमी, निरहंकारी व ममता (मोह) रहित तथा पूर्ण आंतरिक आनन्द। गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस में भगवान श्रीराम को स्थितप्रज्ञ के रूप में चित्रित किया है —

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न ममे्ल वनवासदुःखतः ।

मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमंगलप्रदा।।[7]

गांधीजी की भगवान राम के प्रति दृढ़ आस्था सर्वविदित है। उनकी रामराज की आवधारणा भी भगवान राम के स्थितप्रज्ञ व्यक्तित्व के प्रताप का ही परिणाम है। राम के प्रति गांधीजी की आस्था का सबसे बड़ा प्रमाण है उनका सर्वजन प्रिय भजन — '**रघुपति राघव राजा राम**' और मृत्यु के समय उनके मुख से निकलने वाला शब्द— 'हे राम'। 'स्थितप्रज्ञ' दर्शन के प्रति गांधीजी का झुकाव ही था कि उन्होंने इसे अपनी प्रार्थना का अंग बना लिया था और जबसे उन्होंने 'स्थितप्रज्ञ' संबंधी गीता में प्रतिपादित श्लोकों को अपनी भक्ति के साधन के रूप में अपनाया था तब से हजारों-लाखों व्यक्ति प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभाव से सायंकालीन प्रार्थना में 'स्थितप्रज्ञ' के लक्षणों का पाठ कर इनसे प्रेरणा ग्रहण किया करते थे।[8]

'**हिन्द स्वराज**' के संबंध में एंथनी जे. परेल ने कहा था कि 'Hind Swaraj is the seed from which the tree of Gandhian thought has grown to its full structure'. (हिन्द स्वराज एक ऐसा बीज है जिसमें से गांधी दर्शन का संपूर्ण वृक्ष विकसित हुआ है।[9] यह कथन सत्य है किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि 'हिन्द स्वराज' का बीज श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेशों में निहित है और गांधीजी ने इसे वहीं से ग्रहण किया था।

गांधीजी के मूल सिद्धान्तों में 'न्यासिता' अथवा 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त सर्वप्रमुख है। सरल शब्दों में कहा जाए तो गांधीजी के अनुसार इसका अर्थ है — व्यक्ति उतनी ही वस्तुओं के उपयोग का अधिकारी है जितने से उसकी नित्य-प्रति की आवश्यकताएं पूरी हो जाएं, शेष धन-संपदा सार्वजनिक है। व्यक्ति उसका अभिरक्षक है न कि स्वामी। संभवतः इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने कहा था कि 'मनुष्य की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए धरती पर पर्याप्त संपदाएं हैं लेकिन लालच को पूरा करने के लिए नहीं। इसमें गीता के अपरिग्रह और समत्व भावना (*समत्वं योग उच्यते*) तथा ईशोपनिषद के '*त्येन त्यक्तेन भूंजीथाः*' का समावेश है। गांधीजी की आत्मकथा — 'My Experiment with The Truth' अथवा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' भी गीता को आचरण में लाने के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले परिणामों और प्रभावों की ही कथा है, कुछ और नहीं।

उपरोक्त तथ्यों के विवेचन से स्पष्ट है कि गांधी-दर्शन अथवा गांधीवाद के मूल में सत्य, अहिंसा और प्रेम-भावना की प्रधानता है तथा इन सबका आधार उन्होंने गीता से ग्रहण किया है — चाहे वह इन्द्रिय-निग्रह हो, आत्मबल हो, अपरिग्रह हो, न्यासिता हो या फिर स्थितप्रज्ञ-दर्शन हो। गांधीजी ने अपने आचरण से यह सिद्ध कर दिया कि गीता का दर्शन पूर्णतया व्यावहारिक है और इसके आचरण द्वारा कोई भी व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में सफलता या सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. मालवीयजी के लेख, संपादक- पं. पद्मकान्त मालवीय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962, पृ. 1-2.
2. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2070 (आमुख — श्रीगीताजी की महिमा से उद्धृत)
3. गीता माता, महात्मा गांधी, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 (प्राक्कथन से उद्धृत)।
4. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-2, श्लोक सं. 62-63.
5. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
   कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।
   - श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय - 3, श्लोक सं. 7
6. – वही -
7. श्रीरामचरितमानस, अयो. का. श्लोक सं. 2
8. स्थितप्रज्ञ-दर्शन, विनोबा, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी (प्रकाशकीय से उद्धृत)
9. हिन्द-स्वराज (गांधी का शब्द अवतार), गिरिराज किशोर, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन,पृ. 59

गांधीजी की भाषा-दृष्टि

*डॉ. मदन मोहन पाण्डेय**

हिन्दी भाषा के महत्व को स्वाधीनता आन्दोलन में गांधीजी ने न केवल समझा,बल्कि अन्य लोगों को समझाया भी। हिन्दी इस देश की भाषा बने-यह गांधीजी की हार्दिक इच्छा थी। इसके लिए उन्होंने न केवल अपने साथियों के बीच वातावरण का निर्माण किया, बल्कि जनसामान्य के बीच भी हिन्दी की अस्मिता को विस्तारित किया। वे भाषायी सम्राज्यवाद के विरोधी थे, किन्तु किसी भाषा के विरोधी नहीं थे, वे चाहते थे कि हमारे देश के लोग दूसरी भाषाओं के साहित्य को पढ़ें और उसमें से अपने काम की चीजें निकालें। उन्होंने लिखा है कि ''हमारे युवक और युवतियां अंग्रेजी और दुनिया की दूसरी भाषाएं खूब पढ़ें, किन्तु उनसे मैं आशा करूंगा कि वे अपने ज्ञान का प्रसाद भारत की ओर से संसार को प्रदान करें, जैसे-बोस, राय ओर कवि रवीन्द्रनाथ ने किया था, मगर मैं हरगिज नहीं चाहूंगा कि कोई भी हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाए या उसकी उपेक्षा करे या उसे देखकर शरमाए अथवा यह महसूस करे कि अपनी मातृभाषा के जरिए वह ऊंचा से ऊंचा चिन्तन नहीं कर सकता है।''[1] गांधीजी एक समाज वैज्ञानिक भी थे, इतिहास और राजनीति को भी अच्छी तरह समझते थे। देश और राष्ट्र की निर्माण-प्रक्रिया में भाषा के योगदान को वे महत्व देते थे। हिन्दी ने करोड़ों लोगों को स्वाधीनता के प्रति जागृत किया, इस तथ्य को गांधीजी बहुत अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के दुष्परिणामों की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि आधुनिकता अंग्रेजी वर्चस्व की देन है। वे बार-बार कहते थे कि औपनिवेशिक आधुनिकता से समाज में विभाजन बढ़ता है। वे लगातार वैकल्पिक आधुनिकता के बारे में चिन्तन किया करते थे। आज जिसे देशज आधुनिकता कहा जाता है,गांधीजी ने उसे पहले ही मूर्त्त रूप देने का प्रयास किया। गांधीजी ने अंग्रेजी वर्चस्व के दुष्परिणामों को समझकर ही कहा था कि ''भारत को अपनी ही जलवायु, दृश्यावली और अपने ही साहित्य से पनपना है, भले ही इंग्लैण्ड की जलवायु, दृश्यावली और उसके प्रखर साहित्य से कमतर हों। हमें और हमारी सन्तानों को अपनी विरासत पर ही अपनी प्रगति का महल खड़ा करना है। यदि हम उधार पर जीयेंगे, हम खुद ही अपने को निर्बल कर लेंगे।''[2] यहां गांधी स्पष्ट कह रहे हैं कि उधार की भाषा से सांस्कृतिक संवेदना का विकास सम्भव नहीं है। राष्ट्रीय आन्दोलनों के उभार के साथ हिन्दी की प्रतिबद्धता के प्रति स्वाधीनता के नायकों का लगाव बढ़ा। राजगोपालचारी, सुभाषचन्द्र बोस और गांधी मूलतः हिन्दीभाषी नहीं थे, किन्तु इन तीनों ने हिन्दी भाषा के लिए जो महत्वपूर्ण कार्य किया, उसका सही ढंग से हमने मूल्यांकन नहीं किया। गांधीजी कहते थे कि ''मैं अंग्रेजी का विरोधी नहीं हूं, किन्तु अंग्रेजी की गुलामी का विरोधी हूं।ये भारतीय संस्कृति के विकास और विस्तार की बात करते हैं। उनका कहना था कि यदि हिन्दी भाषा की भूमि यदि उत्तर प्रान्त होगी तो साहित्य का प्रदेश भी समुचित होगा। हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा।''[3] गांधीजी गुजराती के अच्छे लेखक थे और उन्होंने 'हिन्द स्वराज' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी।

यह सही है कि जिस समय स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था, उस समय हिन्दी के विकास के लिए संसाधन बहुत कम थे और व्यक्तिगत प्रयासों से ही हिन्दी के विकास की प्रक्रियाएं सम्पन्न हो रही थीं। गांधीजी ने उस समय लिखा था कि ''अंग्रेजी आज इसलिए पढ़ी जा रही है कि उसका व्यावसायिक एवं राजनीतिक महत्व है। हमारे बच्चे अंग्रेजी यह सोचकर पढ़ते है कि अंग्रेजी पढ़े बिना उन्हें नौकरियां नहीं मिलेंगी। लड़कियों को इसलिए अंग्रेजी पढ़ायी जाती है कि उससे शादी में सहूलियत होगी। मुझे ऐसे परिवारों की जानकारी है, जहाँ अंग्रेजी मातृभाषा बतायी जा रही है। ये सारी बातें मेरी नजर में गुंलामी और घोर पतन के चिह्न हैं। मैं यह बात बर्दाश्त नहीं कर सकता कि देशी भाषाएं इस तरह रौंदी जाएं।''[4] अंग्रेजी के कारण देशी भाषाओं की उपेक्षा हुई है। शिक्षा व्यवस्था में देशी भाषाओं का उपयोग लगभग नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि जो लोग अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर पाए, उनका एक अलग वर्ग बनता चला गया। आज भी अंग्रेजी माध्यम के गली-मुहल्लों में विद्यालय खुलते जा रहे हैं और हिन्दी जैसी समृद्ध और वैज्ञानिक लिपि वाली भाषा पीछे छूटती चली जा रही है। इस प्रसंग में गांधीजी ने मैकाले का जिक्र किया है। उन्होंने लिखा है कि ''मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी, उसने सबको गुलाम बना दिया। अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीय लोगों को और उन्हीं के लिए है तो निःसन्देह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों, निरक्षरों और दलितों-अंत्यजों का हो और इन सबके लिए होने वाला हो तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।''[5] प्रश्न यह है कि भाषा-सम्बन्धी निर्णय करने वाले लोगों ने क्या गांधी के इस आशय् को समझा! गांधी जब हिन्दी भाषा की बात करते थे, तब उनका आशय कि ऐसी हिन्दी से था, जो आम आदमी के समझ में आए। वे भाषायी साम्प्रदायिकता और औपनिवेशिकता से एक साथ संघर्ष कर रहे थे। साथ ही साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद से भी वे टकरा रहे थे।

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री शिवा महाविद्यालय, तेरही, कप्तानगंज, आजमगढ़

उन्होंने हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा नहीं माना, बल्कि पूरे देश की भाषा माना।

गांधीजी की भाषा-सम्बन्धी अवधारणा की मुख्य बिन्दु स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रीय एकता से जुड़ा हुआ है। वे हिन्दी में संस्कृत के मूल शब्दों की अधिकता के पक्षधर नहीं थे। भाषाओं को आवाजाही को वे ठीक से समझते थे। उनकी समझ का आधार उनका अनुभव था। स्वाधीनता आन्दोलन के नेताओं में ये पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने पूरे देश का दौरा किया ओर हर जगह की भाषा संस्कृति पर गौर किया। उन्होंने अपने समय के पूर्व के भाषा वैज्ञानिकों से संवाद स्थापित किया और यह निष्कर्ष निकाला कि भाषा को सहज और धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए। उन्होंने लिखा है कि ''हिन्दी भाषा, वह भाषा है, जिसको उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी अथवा अरबी लिपि में लिखी जाती है। वह हिन्दी एकदम संस्कृतनिष्ठ नहीं है, न वह एकदम फरसी शब्दों से लदी हुई है। गांव की बोली में जो माधुर्य मैं देखता हूं, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की बोली में है, न प्रयाग के पंण्डितों की बोली मे।''[6] स्पष्ट है कि गांधीजी देश में बोली जाने वाली बोलियों के शब्दों को हिन्दी में समाहित करने के पक्षधर थे। कुछ लोग उनकी भाषा को 'हिन्दुस्तानी कहते हैं, किन्तु गांधीजी उस हिन्दुस्तानी के पक्षधर नहीं थे, जो औपनिवेशिक विचारधारा से जुड़ी हुई थी। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी गहरी आस्था थी-इस तथ्य को स्वीकार कर ही उनकी भाषा दृष्टि पर विचार किया जा सकता है। उन्होंने कहा था कि ''भारतीय संस्कृति उन विभिन्न संस्कृतियों का संश्लेषण है, जो इस देश में रच-बस गयी हैं। भारतीय सभ्यता भिन्न-भिन्न धर्मों का प्रतिनिधित्व करने वाली और अपने-अपने भोगोलिक तथा अन्य पर्यावरणों से प्रभावित संस्कृतियों का संगम है। अतः भारतीय संस्कृति भारतीय है। यह न पूरी तरह हिन्दू है, न इस्लामिक और न कोई अन्य। यह इन सबका मिला-जुला रूप है। हमारे युग की भारतीय संस्कृति अभी निर्माणाधीन है।''[7] गांधीजी ने संस्कृति और भाषा के सम्बन्ध को जिस तरह से विवेचित किया है, वह आज पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है। देश की एकता के लिए हिन्दी आवश्यक है- यह बात स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान सभी बड़े नेताओं ने स्वीकार किया था, जिनमें मूल रूप से गैर हिन्दीभाषी नेता महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे।

गांधीजी ने यह स्पष्ट कहा था कि अंग्रेजी की गुलामी यदि बनी रही तो हम उचित दिशा में नहीं विकास कर सकते हैं और न राष्ट्रीय एकता को बचाए रख सकते हैं। गांधीजी जिन प्रदेशों में गए, उन प्रदेशों की बोलियों को महत्व दिया, लेकिन व्यापक स्तर पर हिन्दी को प्रतिष्ठित करने के लिए हर तरह का प्रयत्न किया। गांधीजी किसी भाषा के विरोधी न थे, किन्तु उनके स्वदेशी की भावना में अपनी भाषा का संग्रथन भी था। उन्होंने कहा था कि ''उत्तर में रह रहा हूं, हिन्दू-मुसलमानों के साथ खूब मिला-जुला हूं और मेरा हिन्दी भाषा का ज्ञान बहुत कम होने पर भी मुझे उन लोगों के साथ व्यवहार रखने में जरा भी कठिनाई नहीं हुई। जिस भाषा को उत्तरी भारत में आम लोग बोलते हैं। उसे चाहे उर्दू कहें या चाहे हिन्दी, दोनों एक ही भाषा की सूचक हैं। यदि उसे फारसी में लिखें, तो वह उर्दू में पहचानी जाएगी और नागरी में लिखें तो वह हिन्दी कहलाएगी।''[8] अर्थात गांधीजी यह मानते थे कि हिन्दी और उर्दू में कोई भेद नहीं है। भेद अरबी-फरसी और संस्कृत के शब्दों को मिलाए जाने से उत्पन्न होता है। गांधीजी ने देखा था उर्दूभाषी मौलवी भारत में अपने भाषण हिन्दी में देते हैं। द्रविड़ प्रान्त में भी हिन्दी की आवाज सुनयी देती है। मद्रास में भी लोग हिन्दी में ही बातचीत करते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि प्रेमचन्द ने भी यह बात कही थी, हिन्दी-उर्दू मूलतः एक ही भाषा है। डॉ. रामविलास शर्मा ने भी इस बात पर बल दिया था। गांधी का महत्व इस विषय में यह है कि वे प्रान्तीय भाषाओं को किसी तरह का नुकसान नहीं पहुंचाना चाहते थे। अपनी आत्मकथा में भी उन्होंने भाषा के सन्दर्भ में बड़ी महत्वपूर्ण बात कही है। उन्होंने लिखा है कि ''हिन्दुस्तानी के एक-एक शब्द के अनेक पर्याय होने चाहिए, ताकि ये विभिन्न प्रान्तीय से समृद्ध और विकासोन्मुख राष्ट्र की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। बंगालियों या दक्षिण भारत के लोगों के सामने बोली जाने वाली हिन्दुस्तानी में सम्भवतः संस्कृत से लिए गए शब्दों का अधिक प्रयोग होगा। वह भाषण जब पंजाब में दिया जाएगा तो उसमें अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता होगी। यही बात उस श्रोता वर्ग के सन्दर्भ में लागू होगी, जिसमें मुसलमानों की प्रमुखता हो क्योंकि वे संस्कृत के लिए बहुत से शब्द नहीं समझ सकते।''[9] इस तरह गांधीजी ने भाषा-सम्बन्धी जटिलताओं को हल करने का मार्ग भी सुझा दिया था। ध्यान रहे कि भारत-पाक बंटवारे का एक आधार भाषा भी था। अक्टूबर 1936 के 'हरिजन' में लिखे गए गांधीजी के मन्तव्य को ठीक से समझा नहीं गया।

गांधीजी की भाषा- दृष्टि का एक प्रमाण यह है कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में भी भारतीयों को एकजुट करने में हिन्दी भाषा का प्रयोग किया था। प्रशासन और कानून की भाषा अंग्रेजी थी। गांधीजी उसके विरुद्ध जनसामान्य को हिन्दी में अपनी बात कहकर जागृत करने का प्रयत्न कर रहे थे। उनका प्रयोग सफल रहा। इस सफलता के पीछे उनका अनुभव और चिन्तन दोनों की भूमिका थी। प्रेमचन्द ने कहा था कि अंग्रेज चले जाएं और अंग्रेजी रह जाय तो हम अपने को स्वतंत्र कैसे कह सकते हैं! यही दृष्टिकोण गांधीजी का भी था। हिन्दी को वे इसलिए महत्व देते थे कि उन्हें लगता था कि भारतीयों को जोड़ने वाली यह एकमात्र भाषा है। भाषा का प्रश्न प्रायः जटिल हुआ करता है और वह भी ऐसे देश में जहां लगभग ढाई दर्जन भाषाएं बोली जाती रही हैं। गांधीजी ने भाषा के प्रश्न को जिस गम्भीरता से उठाया, उसे बाद के लोगों ने उतनी गम्भीरता से लेने का प्रयत्न नहीं किया। अंग्रेजी भाषा के प्रति इस देश में बढ़ते लगाव के बीच गांधी की याद आना स्वाभाविक ही है। मधु किश्वर ने लिखा है कि ''एक शैतानी विभेद भारत भर में अंग्रेजी बोलने वाला यह विशिष्ट वर्ग नौकरशाही, राजनीति, सशस्त्र बलों, उद्योग,

व्यवसायों और अन्य व्यावसायिक क्षेत्रों में ऊंचे ओहदों पर बैठा है। इसी कारण यह बहुत छोटा-सा विशिष्ट वर्ग ही ज्यादातर मुद्दों पर, चाहे सामाजिक हों, विधायी, रक्षा-नीति, कृषि-नीति, शैक्षिक हों या चुनाव सुधार से जुड़े, हर तरह के बौद्धिक चर्चा-वार्ता पर छाया रहता है। वे ऐसा दिखाते हैं, मानों राष्ट्रीय महत्व के तमाम मुद्दों पर उनका दृष्टिकोण ही समूचे देश की सोच की झलक है और क्षेत्रीय भाषाओं के विशिष्टजन एक संकुचित जातिगत और बांटने वाले सोच दर्शाते हैं। वे अंग्रेजी को आधुनिकता की भाषा के रूप में पेश करते हैं और उनकी जड़ें स्थानीय भाषाओं में हैं, उन्हें पूर्व-आधुनिक परम्परावादी, प्रगतिविरोधी यहां तक की निराशावादी दृष्टिकोण के बचे-खुचे प्रतिनिधियों की तरह पेश किया जाता है।''[10] इस कथन के आलोक में देखें तो गांधी का महत्व स्पष्ट हो जाता है। मधु किश्वर जिस समय यह बात कह रही हैं, उससे कितने ही वर्षों पूर्व गांधीजी ने अंग्रेजी वर्चस्व को चुनौती थी।

स्वाधीनता आन्दोलन में गांधीजी ने एक विचारधारा का प्रवर्तन किया, जिसमें व्यापक मानवता को समेट लेने की शक्ति थी। इस तथ्य को विदेशी विद्वानों और राजनयिकों ने भी स्वीकार किया। गांधी ने इन्दौर में अपने एक भाषण में कहा था कि हम हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी प्रान्तीय भाषाओं को जब तक उचित स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्य की बातें व्यर्थ होंगी। अब यह कहने की जरूरत नहीं है कि गांधीजी भाषा को स्वराज्य से जोड़कर देखते थे। उन्होंने 19 अगस्त 1921 को 'नवजीवन' में लिखा था कि ''यद्यपि मुझे मालूम है कि 'नवजीवन' को प्रकाशित करना कठिन है, किन्तु मित्रों के आग्रहवश होकर और साथियों के उत्साह से 'नवजीवन' का हिन्दी अनुवाद निकालने की दृष्टता मैं करता हूं। जिस भाषा को करोड़ों हिन्दी-मुसलमान बोल सकते हैं, वही अखिल भारतीय वर्ष की सामान्य भाषा हो सकती है और उसमें जबतक 'नवजीवन' न निकाला जाए, तब तक मुझे दुःख था।''[11] ध्यातव्य है कि गांधीजी ने 'नवजीवन' को पहले गुजराती में प्रकाशित किया था। फिर उन्हें लगा कि अपनी बात को व्यापक स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए हिन्दी में उसका प्रकाशन आवश्यक है। गांधीजी ने राष्ट्रीय एकता के प्रश्न को भाषा से जोड़कर हमारे लिए मार्ग-निर्देशन किया। दुर्भाग्यवश उनके उत्तराधिकारी हिन्दी को उस मार्ग पर नहीं ले जा सके, जिसकी अपेक्षा गांधीजी ने की थी। गांधीजी ने कहा था कि ''राष्ट्रभाषा का यदि प्रचार करना है तो उसके लिए भगीरथ प्रयत्न करना होगा। आप लोग लाटसाहब को या सरकार के दरबार में जो प्रार्थना-पत्र भेजते हैं तो किस भाषा में लिखकर भेजते हैं! यदि हिन्दी में नहीं भेजते हैं तो हिन्दी भाषा में लिखकर भेजिए। मैं कहता हूं कि आप अपनी भाषा में बोलें, अपनी भाषा में लिखें, उनको गरज होगी तो हमारी बात सुनेंगे। मैं अपनी बात अपनी भाषा में कहूंगा, जिसको गरज होगी, वह सुनेगा।''[12] गांधीजी ने यहां अंग्रेजी सरकार को भी चुनौती दी है और साफ-साफ बताया है कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से जो हमारे छात्र निकल कर आ रहे हैं, उनमें विचार करने की शक्ति और साहस कम होता जा रहा है। यह बात आज भी उतनी ही सही है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग हिन्दुस्तान की वास्तविकता को ठीक से समझ ही नहीं सकते। देश का विभाजन हुआ तो दो लिपियों का प्रश्न उठाया गया था, किन्तु गांधीजी ने उसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे जानते थे कि हमारे देश में अनेक भाषाओं की अनेक लिपियां हैं। गांधी ने इस बात को भी डंके की चोट पर कहा कि मैं अंग्रेजी नहीं जानता हूं। यद्यपि उन्होंने विदेश में रहकर कानून की शिक्षा ग्रहण की थी, जो अंग्रेजी ज्ञान के बिना सम्भव ही नहीं थी।

गांधीजी ने जैसे सत्य, अहिंसा और सेवा के प्रश्न को गम्भीरता से लिया, उसी तरह भाषा के प्रश्न को भी गम्भीरता से उठाया। उनके सत्याग्रह में भाषा का प्रश्न जुड़ा हुआ था। गांधीजी ने हिन्दी में जिन पत्रों का प्रकाशन सम्पादन किया, उनकी लोकप्रियता बढ़ती गयी। 1919 में गांधीजी ने स्पष्ट कहा था कि ''हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमानों को अरबी का, फारसियों का फारसी का और भारतवासियों को हिन्दी का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए एक भाषा हिन्दी होनी चाहिए। हमें अपने आपस के व्यवहार में अंग्रेजी को निकाल बाहर करने की आवश्यकता है।''[13] स्पष्ट है कि गांधीजी इस बात के पक्षधर थे कि लोग अपनी भाषा के प्रति न्याय करें, किन्तु जब देश का सवाल आए तो वे हिन्दी में अपनी बात करें क्योंकि हिन्दी पूरे देश की भाषा है। गांधीजी जब यह बात कह रहे थे, तब देश के अन्य बड़े नेताओं ने भी यथावसर उनका समर्थन किया। राहुल सांकृत्यायन से लेकर उस दौर के सभी बड़े लेखकों ने भी हिन्दी का समर्थन किया था। गांधीजी इस बात को पूरी तरह समझते थे कि अंग्रेजी पढ़ा-लिखा वर्ग केन्द्रीयकृत राज्य के ढांचे को बनाए रखना चाहता है और गांधीजी विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। उन्होंने हिन्दी भाषा के विकास के लिए कई दृष्टियों और बिन्दुओं पर किया। 'हिन्द स्वराज' में इन्होंने भाषा के विषय में कई महत्वपूर्ण बातें कहीं। उन्होंने लिखा है कि ''अपने देश में गर मुझे विश्वास पाना हो तो मुझे अंग्रेजी का उपयोग करना पड़ेगा। बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा बोल ही न सकूं। दूसरे आदमी को मेरे लिए तरजुमा कर देना चाहिए। यह कुछ कम दम्भ है! यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है! हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाले हम अंग्रेजी जानने वाले लोग हैं।''[14] यह स्थिति आज भी बनी हुई है। भारतीय भाषाओं के ज्ञान के बिना हम अपने देश समाज और संस्कृति को नहीं समझ सकते। अंग्रेजी और विदेशी के प्रति आग्रही लोग गांधीजी के संघर्ष, प्रयत्न और उनके तार्किक चिन्तन को अभी भी नहीं समझ पाए हैं।

गांधीजी ने गुजराती में महत्वपूर्ण काम किया है, किन्तु वे जानते थे कि गुजराती भाषा देश की भाषा नहीं बन सकती। इसलिए वे लगातार हिन्दी के प्रचार और प्रसार में लगे रहे। गांधीजी के गुजराती ज्ञान का लोहा उनके समय में सभी लोग मानते थे, लेकिन उन्हें तो देश रचना था, देश बनाना था और देश रचने वाला और

देश बनाने वाला कभी भी सामान्य भाषा की व्यापकता के पक्ष को नहीं छोड़ सकता। गांधीजी ने मैकाले की शिक्षा व्यवस्था को भी चुनौती दी। उनका साफ मानना था कि मैकाले ने हमें नीचा दिखाने के लिए नयी शिक्षा व्यवस्था लागू करने का उपक्रम किया। गांधीजी ने 30 सितम्बर 1917 को अखिल भारतीय राष्ट्र भाषा सम्मेलन में हिन्दी को भारत की सामान्य भाषा बनाने की सिफारिश की थी। 30 मार्च 1920 को उन्होंने विजयनगरम की सार्वजनिक सभा में भी हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की अपील की। उनका स्पष्ट मानना था कि अंग्रेजों ने देशी शिक्षा पद्धति का विनाश किया है और ऐसी शिक्षा व्यवस्था लागू की, जिससे विद्यार्थियों में नैतिक बोध खत्म होता चला गया। गांधीजी से पहले और उनके साथ भारतेन्तु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवदी, आचार्य शुक्ल, प्रेमचन्द और निराला ने हिन्दी के लिए अनथक संघर्ष किया। देश आजाद होने के समय अंग्रेजी हट नहीं पायी। इस सन्दर्भ में गांधीजी कह चुके थे कि सावधान रहना होगा, कहीं अंग्रेजी हिन्दुस्तानी का स्थान न हथिया ले। गांधी की बात पर यदि लोग चलते और उनके आशय को समझते तो आज भाषा का सवाल पूरी तरह हल हो चुका होता। दक्षिण में आज भी कभी कभार हिन्दी का विरोध सुनायी पड़ता है। गांधीजी ने इस बात को पहले ही समझ लिया था। इसलिए इन्होंने बार-बार हिन्दी को देश की सर्वमान्य और सामान्य भाषा बनाने पर जोर दिया। गांधीजी यह भी कहते थे कि हिन्दी को प्रतिष्ठित करनें में सामान्य जन की भूमिका महत्वपूर्ण होगी, जिनमें किसान और मजदूर दोनों शामिल होंगे। गांधीजी भारतीय संस्कृति के पोषक थे तथा उनके दृष्टि में भाषा स्मृति का हिस्सा है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिकोत्सव में भाग लेते हुए गांधीजी ने एक बार फिर हिन्दी का समर्थन किया। उन्होंने कहा था कि ''इस सभा के जो अधिकारी वकील हैं, उनसे मैं पूछता हूं कि आप अदालत में अपना काम अंग्रेजी में चलाते हैं या हिन्दी में! यदि अंग्रेजी में चलाते हैं तो मैं कहूंगा कि हिन्दी में चलाएं। जो युवक पढ़ते हैं, उनसे भी मैं कहूंगा कि वे इतनी प्रतिज्ञा करें कि आपस का पत्र-व्यवहार हिन्दी में करेंगे।''[15] गांधीजी इतने पर ही नहीं रूके। उन्होंने यह भी कहा कि साहित्य ही साहित्य को लिखता है। वह हमारी स्मृति का अंग है और अपने कथन के प्रमाणस्वरूप उन्होंने तुलसीदास को याद किया। उनका कहना था कि ''कल डॉ. जगदीश चन्द्र बसु व्याख्यान देंगें। यदि वे बंगला में व्याख्या देगें तो उनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है, किन्तु वे अंग्रेजी में दें तो उनसे मेरा झगड़ा है। नागरी प्रचारिणी सभा का अर्थ है कि जो पुस्तकें डॉ. जगदीश चन्द्र बसु ने अंग्रेजी में लिखी हैं, उनका वह अनुवाद हिन्दी में करें। जर्मनी में जो विद्वतापूर्ण पुस्तकें तैयार होती है, अंग्रेजी में दूसरे ही सप्ताह बाद उनका अनुवाद हो जाता है, इसी से वह भाषा प्रौढ़ है। हिन्दी में भी ऐसा ही होना चाहिए। लोगों को अपनी भाषा की असीम उन्नति करनी चाहिए क्योंकि सच्चा गौरव उसी भाषा को प्राप्त होगा, जिनमें अच्छे-अच्छे विद्वान जन्म लेंगे। जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो, वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती। हमारा मुख्य काम हिन्दी सीखना है, पर तो भी हम अन्य भाषाएं सीखेंगे। अगर हम तमिल सीख लेंगे तो तमिल बोलने वालों को भी हिन्दी सिखा देंगे।''16 गांधीजी की दृष्टि यहां अत्यन्त व्यावहारिक है। उन्होंने भाषा के बहाव और उसके लचीलेपन को महत्व दिया। गांधीजी ने बार-बार इस बात को दुहराया कि हिन्दी के विकास के लिए, उसके विस्तार के लिए हमें देशी भाषाओं से मदद लेनी चाहिए और अंग्रेजी के विरुद्ध खड़ा होना चाहिए। गांधीजी भाषा की पराधीनता को देश की पराधीनता से जोड़ते थे।

सन्दर्भ

1. गांधी : गवेषणा, अंक-101, पृ. 90.
2. गांधी : हरिजन, 1938.
3. गांधी : गवेषणा, अंक-101, पृ. 88.
4. गांधी : गवेषणा, अंक-101, पृ. 90.
5. गांधी : गवेषणा, अंक-101, पृ. 89.
6. गांधी : गवेषणा, अंक-101, पृ. 96.
7. गांधी : महात्मा गांधी के विचार, पृ. 32.
8. गांधी : हरिजन, अक्टूबर 1936.
9. गांधी : हरिजन, अक्टूबर 1936.
10. मधु किश्वर : गवेषणा, अंक-101, पृ. 113.
11. गांधी : नवजीवन, 19 अगस्त, 1921.
12. गांधी : गवेषणा, अंक-101, पृ. 118.
13. गांधी : गवेषणा, अंक-101, पृ. 116.
14. गांधी : हिन्द स्वराज, पृ. 61.
14. गांधी : 5 फरवरी, 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में दिया गया भाषण.
15. गांधी : 5 फरवरी, 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में दिया गया भाषण.

●

महात्मा की दृष्टि में धर्म : गाँधी का एक अध्ययन

*डॉ. श्रुति मिश्रा**

संस्कृत की अस् धातु में शतृ प्रत्यय लगाने से सत् शब्द बनता है और सत् शब्द में तद्धितीय 'यत्' प्रत्यय लगाने से सत्य शब्द बनता है। 'सत्' शब्द का अर्थ है 'होना' या 'अस्तित्व' और सत्य का अर्थ है- 'अस्तित्व से युक्त'। :

गाँधी ने प्रारम्भ में 'ईश्वर सत्य है' ऐसा कहा और बाद में 'सत्य ही ईश्वर है' ऐसा कहने लगे। इस प्रकार गाँधी ने सत्य और ईश्वर का एकीकरण किया है। किन्तु यहाँ यह कठिनाई है कि सत्य जो अवैयक्तिक भाव है उसे व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर से एकरूप कैसे किया जा सकता है। इसीलिए उन्होंने अपने विचारों में उस क्रम को बार-बार स्पष्ट करने प्रयास किया है जो उन्हें ईश्वर को 'सत्य' कहने के लिए बाध्य करता है।

गाँधी के अनुसार सत्य ईश्वर है तो सत्य का निष्ठापूर्वक अनुशीलन ही धर्म है। सामान्यतया धर्म का अर्थ किसी परमात्मरूप शक्ति के प्रति भक्तिपूर्ण समर्पण है। वस्तुतः गाँधी भी इस प्रचलित धारणा के विपरीत नहीं वे उसमें मात्र इतना जोड़ देते हैं कि वह परमात्मरूप शक्ति 'सत्य' है, अतः सत्य के प्रति पूर्ण निष्ठा ही धर्म है।

गाँधी ने धर्म से तात्पर्य किसी सम्प्रदाय विशेष जैसे हिन्दू या इस्लाम से नहीं अपितु उन्होंने धर्म का तात्पर्य उस शक्ति को माना है जो मनुष्य के स्वभाव को पूर्णतया परिवर्तित कर देती है जो मानव को सत्य के साथ सन्नद्ध कर आत्मशुद्धि का साधन बन जाती है यह मनुष्य का वह चिरंतन पक्ष है जो तब तक अशान्त रहता है जब तक अपनी आत्मा की वास्तविकता को न ज्ञात कर ले।

गाँधी ने इस बात को स्वीकारा कि अलग-अलग धर्म एक ही गंतव्य पर पहुँचने के मार्ग हैं। गाँधी कहते हैं, सब धर्म एक ही स्थान पर पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं। अगर हम एक ही लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं, तो अलग-अलग रास्ते अपनाने में क्या हर्ज है? वास्तव में जितने मनुष्य हैं उतने ही धर्म हैं।[1]

गाँधी के अनुसार धर्म वस्तुतः आत्मशुद्धता एवं आत्मोत्थान का साधन है। अपनी शाश्वत वास्तविकता के अनुरूप होना ही धर्म है। गाँधी कहते हैं, प्रेम और अहिंसा का प्रभाव अद्वितीय है। परन्तु वे अपना काम बिना शोरगुल, या प्रदर्शन के करते हैं। उनके लिए आत्मविश्वास का होना ज़रूरी है और आत्मविश्वास के लिए आत्मशुद्धि होनी चाहिये। निष्कलंक चरित्र और आत्मशुद्धि वाले मनुष्यों के प्रति आसानी से विश्वास हो जाएगा और उनके आसपास वातावरण अपने आप शुद्ध हो जाएगा।[2] वे पुनः कहते हैं परन्तु शुद्धि का मार्ग कठिन और दुर्गम है पूर्ण शुद्धता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को मन, वचन और कर्म में सर्वथा विकार रहित बनना पड़ता है। उसे प्रेम और घृणा, राग और द्वेष की विरोधी धाराओं से ऊपर उठना होता है। मैं जानता हूँ कि मुझमें अभी तक वह विविध शुद्धि नहीं आयी है, यद्यपि मैं उसके लिए सतत अविश्रान्त प्रयत्न करता हूँ। यही कारण है कि संसार की प्रशंसा मुझे प्रभावित नहीं करती, सच तो यह है कि वह मुझे चुभती है। सूक्ष्म विकारों पर विजयी होना मुझे शस्त्रबल द्वारा संसार की भौतिक विजय से ही प्रतीत होता है।[3]

धर्म मनुष्य के अंदर एक प्रकार की अशांति उत्पन्न करने का कार्य करता है जो सामान्य दैनिक जीवन की अशांति से पृथक होती है। ये एक प्रकार की आध्यात्मिक पिपासा है जो मनुष्य को शुभ तथा उचित आत्मसात करने के लिए प्रेरित करती है और पूर्ण नैतिकता का भाव जागृत होने पर ही तृप्त होता है।

गाँधी का मानना था कि मनुष्य धर्म के बिना वैसा ही है जैसे बिना जड़ का पेड़। अतः धर्मरूपी आधार पर ही जीवनरूपी भव्य इमारत खड़ी की जा सकती है।

नास्तिकवादियों पर गाँधी का कहना था कि यह बिल्कुल वैसा ही जैसे कोई कहे कि वह साँस तो लेता है किन्तु उसकी नाक नहीं है। बुद्धि से, प्रातिभ ज्ञान से या अंधविश्वास से मनुष्य उस आध्यात्मिक शक्ति के साथ अपना कुछ न कुछ संबंध अवश्य मानता हैं। चाहे कितना ही कट्टर अज्ञेयवादी या नास्तिक क्यूँ न हो वह नैतिक मान्यताओं की अपरिहार्यता को तो अवश्य स्वीकार करेगा क्योंकि वह उसके पालन में कोई न कोई भलाई और उसके उल्लंघन में कोई न कोई बुराई अवश्य समझता है।

'ईश्वर' या 'परमेश्वर' सत्य है की अपेक्षा 'सत्य' ही परमेश्वर है ऐसा कहना अधिक उपयुक्त है।

जहाँ सत्य है वहाँ ज्ञान शुद्ध ज्ञान है ही। जहाँ सत्य नहीं है वहाँ शुद्ध ज्ञान असंभव है। इसलिए ईश्वर नाम के साथ चित् शब्द की योजना हुई। गाँधी यहाँ चित् शब्द का तात्पर्य ज्ञान से लेते हैं। क्योंकि 'चित्' का अर्थ 'चेतना' से होता है और चेतना को ज्ञान का अधिष्ठान स्वीकार किया जाता है और जहाँ सच्चा ज्ञान है वहाँ आनंद ही आनंद होता है, शोक नहीं होता। इसी कारण ईश्वर को हम सच्चिदानंद नाम से भी पहचानते हैं।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सत् अर्थात् सत्य और अस्तित्ववान वस्तु ही सत्य हो सकती है। सत्य के बिना तो किसी भी नियम का शुद्ध रूप से पालन अशक्य है।

गाँधी स्वीकार करते हैं कि सत्य सिर्फ़ सच बोलने के अर्थ में नहीं होता अपितु विचार, वाणी और आचरण के स्तर पर भी सत्य होना आवश्यक है। इस सत्य को जो सम्पूर्णतया समझ लेता है, उसे कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता है।

पुनः इस सत्य को विस्तार देते हुए गाँधी कहते हैं कि इस कामधेनु रूप सत्य को कैसे प्राप्त किया जाए तो इसके लिए मार्ग है 'अभ्यास' तथा 'वैराग्य'[4]

इस प्रसंग में हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, रामचन्द्र, इमाम हसन, इमाम हुसैन, इसाई संतो आदि के उदाहरण विचारने योग्य हैं यदि हम सब बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष उठते-बैठते, खाते-पीते, खेलते और काम करते हुए प्रतिदिन सारे समय अपना संपूर्ण ध्यान सत्य की ही खोज में लगायें और जब तक शरीर के नाश के साथ हम सत्य के साथ तद्रूप न हो जायें तब तक ऐसा ही करते रहें तो कितना अच्छा हो। यह सत्यरूप परमेश्वर मेरे लिए रत्न-चिन्तामणि सिद्ध हुआ है, हम सबके लिए वह वैसा ही सिद्ध हो।[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी के धर्म तथा दर्शन में भक्ति तथा ज्ञान मार्ग का सुन्दर समन्वय हुआ है।

पुनः कर्म मार्ग या शरीर श्रम के महत्व को पर्याप्तरूप से गाँधी के चिंतन में प्रमुखता दी गयी है। गाँधी कहते हैं कि महान प्रकृति की इच्छा यही है कि हम अपनी रोटी पसीना बहा कर कमायें। अहिंसा यदि अपने पड़ोसी के हित का ख्याल रखना न हो, तब तो उसका कोई अर्थ ही न रहे। आलसी आदमी अहिंसा की इस प्रारंभिक कसौटी में ही खोटा सिद्ध होता है।[6]

गाँधी ने कहा कि रोटी के लिए हर एक मनुष्य को मजदूरी करनी चाहिए, शरीर को झुकाना चाहिए, यह ईश्वर का कानून है। यह मूल खोज टॉलस्टॉय की नहीं है, लेकिन उससे बहुत कम मशहूर रशियन लेखक टी0एम0 बोन्दरेव्ह की है। टॉलस्टॉय ने उसे रोशन किया और अपनाया। इसकी झाँकी मेरी आँखे भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में करती हैं। यज्ञ के बिना जो खाता है वह चोरी का अन्न खाता है, ऐसा कठिन शाप यज्ञ नहीं करने वाले को दिया गया है। यहाँ यज्ञ का अर्थ जात-मेहनत या रोटी-मजदूरी ही शोभता है और मेरी राय में यही मुमकिन है।[7]

गाँधी ने अहिंसा-पालन, सत्य-भक्ति, ब्रह्मचर्य को प्राकृतिक बनाने इत्यादि समस्त क्रियाकलापों हेतु परिश्रम रामबाण के समान मानना है। यह मेहनत यद्यपि कृषि में ही है किन्तु कृषि सब नहीं कर सकते इसलिए खेती के आदर्श को ध्यान में रखकर कृषि के एवज में आदमी भले दूसरी मज़दूरी करे जैसे-कटाई, बुनाई, बढ़ईगिरी, लुहारी, वगैरा-वगैरा।[8]

गाँधी के अनुसार अधिकारों की उत्पत्ति का सच्चा स्रोत कर्त्तव्यों का पालन है। यदि हम सब अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो अधिकारों को ज़्यादा ढूढ़ने की आवश्यकता नहीं रहेगी। बुद्धिपूर्वक किया हुआ श्रम समाज सेवा का सर्वोत्कृष्ट रूप है। यहाँ पर शरीर श्रम समाज सेवा के निश्चित उद्देश्य को लेकर चलती है और तभी इसे समाज सेवा का दरजा मिल सकता है। जो व्यक्ति सभी लोगों के सामान्य कल्याण के लिए परिश्रम करता है वह निश्चित रूप से समाज की ही सेवा करता है।[9]

शारीरिक श्रम के धर्म का पालन करने से समाज की रचना में एक शांत क्रांति हो जायेगी। मनुष्य की विजय इसमें होगी कि उसने जीवन संग्राम की बजाय परस्पर सेवा के संग्राम की स्थापना कर दी। पशु धर्म के स्थान पर मानव धर्म कायम हो जायेगा।

गाँधी ने शरीर श्रम को भी दो प्रकार से व्याख्यायित किया है।

(ग) स्वेच्छा से (गग) विवशता से

किसी मालिक की आज्ञा का पालन करना गुलामी की स्थिति है जबकि स्वेच्छा से अपने पिता की आज्ञा मानना पुत्रत्व का गौरव है। इस प्रकार शरीर श्रम के नियम का विवश हो कर पालन करने से दरिद्रता एवं असंतोष उत्पन्न होते हैं यह दासत्व की स्थिति है। जबकि शरीर श्रम के नियम का स्वेच्छापूर्वक पालन करने से संतोष एवं स्वास्थ्य प्राप्त होता है और स्वास्थ्य ही वास्तविक धन है न कि सोने-चाँदी के टुकड़े। वस्तुतः ग्रामोद्योग-संघ स्वेच्छापूर्वक शरीर-श्रम का ही एक प्रयोग है।[10]

नीति दर्शन में कर्म के संदर्भ में हमारे यहाँ जिस इच्छा स्वातंत्र्य की बात की जाती है उस संदर्भ में गाँधी कहते हैं चुँकि ईश्वर स्वयं कानून है इसलिए यह कल्पना नहीं की जा सकती कि वह कानून को तोड़ता होगा। इसलिए वह हमारे कार्यों का नियंत्रण नहीं करता और स्वयं हट नहीं जाता। जब हम कहते हैं कि वह हमारे कार्यों का नियन्त्रण करता है तब हम केवल मानव भाषा का व्यवहार करते हैं और उसे सीमित बनाते हैं अन्यया वह और उसका कानून हर जगह विद्यमान है और सबका शासन करते है। इसमें शक नहीं कि वह हमारे कार्य का नियंत्रण करता है और मैं अक्षरशः मानता हूँ कि घास की एक पत्ती भी उसकी मर्जी के बिना न तो उगती है और न हिलती है। हमें जो इच्छा-स्वातन्त्र्य प्राप्त है, वह खचाखच भरे जहाज के इच्छा स्वातन्त्र्य से भी कम है।[11]

गाँधी ने इसी संदर्भ में यह भी स्वीकार किया है कि उन्हें ईश्वर भक्ति के क्रम में परतंत्रता का अनुभव नहीं होता है जिस प्रकार यात्रियों से भरी नाव पर बैठे हुए यात्री को होती है। वे कहते हैं कि मुझे इस बात की अवगति है कि मेरी स्वतन्त्रता एक यात्री की स्वतन्त्रता से भी कम है तथापि मैं उसकी कद्र करता हूँ क्योंकि गीता का यह उपदेश मेरे रग-रग में समा गया है कि मनुष्य इस अर्थ में अपने भाग्य का विधाता स्वयं ही है कि उसे इस स्वतन्त्रता का अपनी इच्छानुसार उपयोग करने की स्वतन्त्रता है किन्तु मनुष्य

परिणामों का नियन्ता नहीं है। जहाँ उसने अपने आप को नियन्ता माना वहीं वह ठोकर खाता है।[12]

ईश्वर के असंख्य नामों में से एक नाम जिसे उन्होंने सर्वाधिक सार्थक माना है, वह है-दरिद्रनारायण जिसका अर्थ है गरीबों का यानि उनके हृदय में प्रकट होने वाला ईश्वर।[13]

गाँधी कहते हैं कि असहायों की सेवा करना ही धर्म है क्योंकि ईश्वर हमारे समक्ष दीनदुःखियों और असहायों के रूप में प्रकट होता है इसलिए ईश्वर की प्राप्ति तो ईश्वर की सृष्टि और उसके द्वारा रचित मानव की सेवा द्वारा ही संभव है।

गाँधी कहते हैं कि मेरा दावा है कि मैं अपने लाखों-करोड़ों देशवासियों को जानता हूँ। मैं दिन-रात उनके साथ रहता हूँ। मुझे एकमात्र उन्हीं की चिन्ता है क्योंकि मैं उस ईश्वर के सिवा जो लाखों मूक जनों के हृदय में निवास करता है और किसी ईश्वर को नहीं मानता। वे उसे नहीं पहचानते पर मैं पहचानता हूँ और मैं उस ईश्वर की जो सत्य है या उस सत्य की जो ईश्वर है, इन लाखों लोगों की सेवा के द्वारा ही पूजा करता हूँ।[14]

गाँधी ने धर्म को एक व्यक्तिगत संग्रह माना है, जिसे मनुष्य स्वयं ही रखता और खोता है। समुदाय में जिसकी रक्षा की जा सके वह वस्तुतः धर्म नहीं मत है। अतः गाँधी धर्म को अन्तर्मुख विकास का रूप मानते है। इसलिये धर्म को वे तर्क और बुद्धि का नहीं अपितु हृदय के अनुभव का विषय मानते हैं। मनुष्य के अंदर जो सत्य चिरकाल से छिपा है, उसे दिन-दिन प्रत्यक्ष और स्पष्ट करने वाली ज्योति को ही धर्म कहते हैं। धर्म वस्तुतः उस सेतु के समान है जो मनुष्य को ईश्वर दर्शन तक ले जाता है।

गाँधी ने इसी क्रम में ईश्वर की आवाज़ जिसे वे अन्तर्नाद कहते हैं का उल्लेख भी किया है। अन्तर्नाद से गाँधी का तात्पर्य उस ध्वनि से है मनुष्य की बुद्धि तथा हृदय से ऊपर किसी पारलौकिक तत्त्व की ओर संकेत करती है। गाँधी कहते हैं- मैं पिछले पचास वर्षों से अधिक समय से इस अत्यन्त कठोर स्वामी का दास रहा हूँ। उसकी आवाज ज्यों-ज्यों वर्ष बीते त्यों-त्यों मुझे अधिक सुनाई पड़ती रही है। उसने मुझे अधिक से अधिक अंधकारपूर्ण घड़ी में भी छोड़ा नहीं है। कई बार तो उसने मुझे खुद मेरे ही खिलाफ़ बचाया है और मुझे रञ्चमात्र भी स्वाधीनता नहीं दी है। उसके प्रति मेरा समर्पण जितना अधिक रहा है उतना ही मेरा आनन्द बढ़ा है।[15]

गाँधी के लिए ईश्वर,अन्तःकरण या सत्य की आवाज या जिसे वे अन्तर्नाद कहते है- सभी एक ही अर्थ के सूचक शब्द हैं। वे कहते हैं- मैंने ईश्वर की कोई आकृति नहीं देखी। उसकी मैंने कभी कोशिश भी नहीं की क्योंकि मैंने हमेशा ईश्वर को निराकार माना है। मैंने जो आवाज़ सुनी, वह दूर से आ रही मालूम होती थी, पर साथ ही बिल्कुल समीप भी जान पड़ती थी। वह आवाज ऐसी असंदिग्ध थी जैसे कोई मनुष्य प्रत्यक्षतः हमसे कुछ रहा हो।

जिस समय मैंने उसे सुना मैं कोई सपना नहीं देख रहा था। मैं बिल्कुल जाग्रत था। आवाज़ सुनने के पूर्व मेरे हृदय में भारी मंथन चल रहा था। एकाएक यह आवाज़ सुनने में आयी। मैंने उसे ध्यान से सुना। मुझे निश्चय हो गया कि वह अंतरात्मा की ही आवाज़ है और मेरा चित्त जो व्याकुल था शान्त हो गया। मैंने निश्चय कर लिया, अनशन का दिन और उसके आरम्भ का समय तय हो गया। मेरा हृदय उल्लास से भर गया।[16]

पुनः आज के युग में जब हरेक तथ्य को वैज्ञानिक आधार पर स्वीकार करने की परम्परा है किसी के मन में यह विचार आ सकता है कि कहीं यह 'अन्तर्नाद' किसी भ्रम की परिणति तो नहीं इस पर भी गाँधी के विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं जब वे कहते हैं, क्या मैं इस बात का कोई प्रमाण दे सकता हूँ कि यह अन्तरात्मा की ही आवाज़ थी मेरे उत्तप्त मस्तिष्क की कोई कल्पना तरंग नहीं थी? जो विश्वास नहीं करता ऐसे शंकाशील के लिए मेरे पास और कोई प्रमाण नहीं है। उसकी इच्छा हो तो वह कह सकता है कि यह सब भ्रम है और मैं आत्मप्रवञ्चना का शिकार हुआ हूँ। मैं उसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं दे सकता। लेकिन यह मैं अवश्य कह सकता हूँ कि मेरे खिलाफ सारी दुनिया एकमत से अभिप्राय दे तो भी मुझे इस विश्वास से नहीं हरा सकती कि मैंने जो आवाज़ सुनी वह ईश्वर की ही आवाज़ थी।[17]

पुनः उन्होंने इस अन्तर्नाद की सर्वेश्वरता को इस रूप में स्वीकार किया है जब वे कहते हैं कि ..... और इस आवाज को जो चाहे सुन सकता है। वह हरेक के अन्दर है। लेकिन दूसरी चीजों की तरह उसके लिए भी निश्चित पूर्व तैयारी की आवश्यकता है।[18]

गाँधी ने इसी संदर्भ में अपना और स्पष्टीकरण देते हुए बॉम्बे क्रॉनिकल में अपना वक्तव्य दिया है-यहाँ भ्रम का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। मैंने एक सीधी-सादी वैज्ञानिक बात कही है। जिनमें आवश्यक योग्यता प्राप्त करने का धैर्य और आकांक्षा हो वे सब इसकी जाँच कर सकते हैं। मैं तो इतना ही कहूँगा तुम्हें किसी दूसरे का नहीं केवल अपना ही विश्वास करना है। तुम इस अंतर की आवाज़ को सुनने की कोशिश करो। अन्तर की आवाज़ यह प्रयोग यदि तुम्हें ठीक नहीं मालूम हो तो तुम उसे 'बुद्धि का आदेश' कह सकते हो। तब तुम बुद्धि का आदेश जानने का प्रयत्न करो और उसका पालन करो। यदि तुम ईश्वर का नाम नहीं लेना चाहते हरे तो मत लो किसी दूसरी चीज़ का नाम लो। अन्त में तुम देखोगे कि नाम कुछ भी हो, यह चीज़ ईश्वर ही है। कारण, सद् भाग्य से इस विश्व में ईश्वर के सिवा और कुछ है ही नहीं।[19]

वस्तुतः गाँधी के अनुसार धर्म मात्र एक सैद्धान्तिक अवधारणा नहीं है जो हमारी बौद्धिक विपासा शांत करती है अपितु यह जीवन की एक अनिवार्य व्यावहारिकता है, जीने का सबल एवं आवश्यक ढंग है। गाँधी ने स्पष्ट रूप से यह स्वीकारा है कि यदि कोई धर्म जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं की उपेक्षा करता है तो वह वस्तुतः धर्म ही नहीं है। वास्तविक धर्म को तो अनिवार्यतः

व्यावहारिक होना ही चाहिए। इसी कारण गाँधी ने धर्म की जीवन के समस्त पक्षों में व्याप्त होने की अनुशंसा की है। उसे तो राजनैतिक जीवन में भी व्याप्त होना चाहिए। इसीलिए एकमत से यह बात स्वीकार की जाती है कि राजनीति जिसका अब तक के इतिहास में कूटनीति से तादात्म्य रहा था उसे धर्मनीति के रूप में नया आयाम देने का कार्य गाँधी ने ही किया था। वस्तुतः धर्म का आधार यह विश्वास ही होता है कि जगत् के संचालन में अराजकता नहीं बल्कि एक व्यवस्थित, संगठित नैतिक व्यवस्था है और इस विश्वास को जीवन के प्रत्येक पक्ष पर आच्छादित होना चाहिए तथा जीवन का हर व्यावहारिक पक्ष इससे नियंत्रित होना चाहिए।

गाँधी कहते हैं कि धर्म वस्तुतः सत्य के प्रति आग्रह या सत्याग्रह ही है। यदि कोई निष्ठापूर्वक सत्य एवं अहिंसा का मार्ग अपनाता है तो उसे धर्म के मार्ग पर अग्रसर हुआ व्यक्ति कहा जायेगा। यहाँ ध्यातव्य है कि सत्याग्रह के उपयुक्त अनुशीलन हेतु आत्मनियन्त्रण और आत्मशुद्धता अपरिहार्य है। इसी कारण धर्म के अंतर्गत प्रार्थना, ईश्वर के प्रति पूर्ण भक्ति एवं समर्पण, आत्म बलिदान की सहजता, प्रेम, सहिष्णुता आदि धार्मिक वृत्तियों के रूप में अनुशंसित है।

धर्म के इन्हीं विभिन्न संदर्भों में से सत्याग्रह की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि सत्याग्रह शब्द का उपयोग अक्सर बहुत शिथिलतापूर्वक किया जाता और छिपी हुई हिंसा का भी नाम इसे दे दिया जाता है लेकिन इस शब्द के रचयिता होने के नाते मुझे यह कहने की अनुमति मिलनी चाहिए कि उसमें छिपी हुई अथवा प्रकट सभी प्रकार की हिंसा का पूर्णरूपेण अभाव होता है फिर वह कर्म की हो या मन और वाणी की, पूरा बहिष्कार होता है। सत्याग्रह एक सौम्य वस्तु है, वह कभी हिंसा नही पहुँचाता है। उसके पीछे क्रोध या द्वेष नहीं होना चाहिए। उसमें शोरगुल, प्रदर्शन या उतावली नहीं होती। इसकी कल्पना हिंसा से उल्टी किन्तु हिंसा का स्थान पूरी तरह भर सकने वाली चीज़ के रूप में की गयी है।[20]

इसी क्रम में गाँधी ने सत्याग्रह में उपवास तत्त्व के महत्व को वर्णित किया है। उपवास सत्याग्रह के शस्त्रागार का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली अस्त्र है उसे हर कोई नहीं कर सकता। केवल शारीरिक योग्यता इसके लिए कोई योग्यता नहीं है। ईश्वर में जीती-जागती श्रद्धा न हो, तो दूसरी योग्यतायें निरुपयोगी हैं वह निरा यांत्रिक प्रयत्न या अनुकरण कभी नहीं होना चाहिए। उसकी प्रेरणा अपनी अन्तरात्मा की गहराई से आनी चाहिए। इसलिए वह बहुत विरल होता है।[21]

शुद्ध उपवास में स्वार्थ, क्रोध, अविश्वास और अधीरता के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। अपार धीरज, दृढ़ता, ध्येय में एकाग्र-निष्ठा और पूर्ण शान्ति तो उपवास करने वाले में होने ही चाहिए। ये सभी गुण किसी में एकाएक नहीं आ सकते। इसलिए जिसने यम-नियमादि का पालन करके अपना जीवन शुद्ध न कर लिया हो, उसे सत्याग्रह के हेतु से किया जाने वाला उपवास नहीं करना चाहिए।[22]

गाँधी ने मनुष्य का अंतिम लक्ष्य ईश्वर साक्षात्कार को माना है और स्पष्ट रूप से कहा कि उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक, ईश्वर दर्शन के अंतिम उद्देश्य से प्रेरित होनी चाहिए। समस्त मानव प्राणियों की तात्कालिक सेवा इस प्रयत्न का आवश्यक अंग बन जाती है। इसका हेतु यही है कि ईश्वर को पाने का एकमात्र उपाय यही है कि उसे उसकी सृष्टि में देख, उससे उसकी एकता का अनुभव किया जाये। यह सब कुछ यदि संभव है तो सिर्फ सेवा से। गाँधी पुनः कहते हैं- मेरे देशवासी मेरे निकटतम पड़ोसी हैं। वे इतने असहाय, इतने साधनहीन इतने जड़ हो गये हैं कि मुझे उनकी सेवा में अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए।[23]

धर्म के केन्द्रबिन्दु के रूप में जिस आध्यात्मिक सत्ता को ईश्वर के रूप में स्वीकार किया जाता है गाँधी का उस पर विश्वास, अटूट विश्वास था। जब वे कहते हैं-'मुझे आपके और मेरे इस कमरे में बैठे होने का जितना विश्वास है, उससे अधिक ईश्वर के अस्तित्व का विश्वास हैं और मैं यह भी कह सकता हूँ कि मैं हवा और पानी के बिना रह सकता हूँ, किन्तु ईश्वर के बिना नहीं रह सकता। आप मेरी आँखें निकाल लें, परन्तु मैं इससे नहीं मरूँगा। आप मेरी नाक काट डालें परन्तु इससे भी मैं नहीं मरूँगा। परन्तु आप मेरा ईश्वर पर विश्वास नष्ट कर दें तो मैं निष्प्राण हो जाऊँगा।[24]

गाँधी ने अपने ईश्वर का रूपांकन जिस तरह किया है वह एक साथ परम अनुशासित तथा करुणामय दोनों हैं वे कहते हैं कि पृथ्वीतल पर उन्होंने ईश्वर जैसा कठोर मालिक नहीं देखा। वह आपकी बार-बार परीक्षा लेता ही रहता है और जब आपको लगता है कि आपकी श्रद्धा या आपका शरीर आपका साथ नहीं दे रहा है और आपकी नैया डूब रही है तब वह आपकी मदद को किसी न किसी प्रकार अवश्य पहुँच जाता है और आपको विश्वास करा देता है कि आपको श्रद्धा नहीं छोड़नी चाहिए। वह आपका संकेत पाते ही आने को तैयार है परन्तु आपकी शर्त पर नहीं, अपनी ही शर्त पर। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं जब ऐन वक्त पर उसने मेरा साथ छोड़ दिया हो।[25]

ईश्वर का वर्णन करने के प्रसंग में ही बापू ने प्रार्थना के महत्त्व और मूल्य को उजागर किया है और वे प्रार्थना को आत्मा का परमात्मा के प्रति आह्वान बताते हैं। गाँधी प्रार्थना को धर्म का प्रण तथा मानव जीवन का सार कहते हैं। मानव जीवन के लिए यदि धर्म अनिवार्य है तो धर्म के लिए प्रार्थना। ईश्वर का वर्णन मनुष्य अपनी टूटी-फूटी भाषा में ही कर सकता है। जिस शक्ति को हम ईश्वर कहते हैं वह वर्णनातीत है और न उसे इस बात की कोई आवश्यकता ही है कि मनुष्य उसका वर्णन करने का प्रयत्न करे। मानव को ही उस साधना की आवश्यकता है जिसके द्वारा वह महासागर से भी विशाल इस शक्ति का वर्णन कर सके। अगर यह विधान स्वीकार कर लिया जाए तो यह पूछने की आवश्यकता नहीं

कि हम प्रार्थना क्यूँ करते हैं? मैडम ब्लाबात्स्की के शब्दों में, 'मनुष्य प्रार्थना करने में अपने ही विशालतर स्वरूप की पूजा करता है। वही सच्ची प्रार्थना कर सकता है, जिसे दृढ़ विश्वास हो कि ईश्वर उसके भीतर है। जिसे यह विश्वास नहीं है, उसे प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं है उससे ईश्वर तो नाराज़ नहीं होगा किन्तु मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि जो प्रार्थना नहीं करता है वह अवश्य घाटे में रहता है।[26]

ईश्वर की पूजा करना ईश्वर का गुणगान करना है। गाँधी यह स्वीकार करते हैं कि प्रार्थना वस्तुतः अपनी अयोग्यता या दुर्बलता को स्वीकार करना है जैसे सभी आहार सभी के लिए अनुकूल नहीं होते उसी प्रकार सब नाम सबको नहीं भाते ईश्वर अन्तर्यामी, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ होने के कारण हमारी आंतरिक भावनाओं को समझते हुए हमारी पात्रता के अनुसार उत्तर देता है। ..... पूजा या प्रार्थना वाणी से नहीं हृदय से करने की चीज़ है और यही कारण है कि उसे गूंगा और तुतलाने वाला, अज्ञानी और मूर्ख सब समान रूप से कर सकते हैं।[27]

गाँधी ने इसी क्रम में उपवास का उल्लेख किया है। सच्चा उपवास शरीर मन और आत्मा शुद्ध करता है। वह इन्द्रियों का दमन कर आत्मा को मुक्त करता है। गाँधी कहते हैं कि सच्चे हृदय से की गयी प्रार्थना चमत्कार कर सकती है। जब इस प्रकार प्राप्त की हुई शुद्धता का किसी उदात्त हेतु के लिए प्रयोग किया जाता है तो वही प्रार्थना बन जाती है।[28]

महात्मा ने ब्रह्मचर्य के पालन के लिए उपवास के महत्व को उजागर किया है। गाँधी इस तथ्य को हृदय से स्वीकार करते हैं। कि इन्द्रियाँ इतनी बलवान हैं कि उन्हें चारों ओर से ऊपर से, नीचे से या दसों दिशाओं से घेरा जाए तभी वे अंकुश में रहती हैं। आहार के बिना इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है। अतः स्वेच्छापूर्वक किए गए उपवास से इन्द्रिय-दमन में अत्यन्त सहायता मिलती है।

यद्यपि उपवास ब्रह्मचर्य पालन का निश्चित उपाय है किन्तु यह विफल तब होता है जब 'स्थूल उपवास' यह मान कर किया जाता है कि उपवास ही सब कुछ कर देगा और मन में विकार घूमते रहते हैं। गाँधी के शब्दों में 'उपवास की सच्ची उपयोगिता नहीं होती है जहाँ मन भी देह-दमन में साथ देता है। विषय की जड़ें मन में रहती हैं।' अर्थात् मन में विषय योग के प्रति विरक्ति अवश्य आनी चाहिए तभी उपवास की सार्थकता है क्योंकि उपवास करने पर भी मन विषयासक्त हो सकता है परन्तु बिना उपवास के विषयासक्ति को जड़ से मिटाना असम्भव है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य के पालन में उपवास अनिवार्य अंग है। आरोग्य और विषय-नियमन इन दो दृष्टियों से उपवास का महात्म्य महात्मा ने स्पष्ट किया है।

धर्म सम्बन्धी अपने विचारों को विस्तार देते हुए महात्मा ने उपवास के संदर्भ में भी अपने विचार प्रकट किए हैं। जिस आत्म और मन के शुद्धिकरण की बात वे करते हैं उसी क्रम में उन्होंने सत्य के शोधक के शांत रहने की महत्ता को भी उद्धृत किया है। गाँधी कहते हैं कि अनुभव ने मुझे सिखाया है कि सत्य के पुजारी के लिए मौन उसके आध्यात्मिक अनुशासन का एक अंग है। जाने-अनजाने बढ़ा-चढ़ाकर कहने की, सत्य को दबा देने की या कम ज़्यादा कर देने की वृत्ति मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है और मौन उस पर विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।[29]

गाँधी ने हिन्द स्वराज में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जितने मनुष्य हैं उतने ही धर्म और सभी धर्म ईश्वर तक पहुँचने के अलग-अलग मार्ग हैं। उन्होंने पुनः कहा कि मैं मानता हूँ कि कम या अधिक संसार के सभी धर्म सच्चे धर्म हैं।[30]

एक ईश्वर में विश्वास होना सभी धर्मों का मूल आधार है। परंतु मैं ऐसे किसी समय की कल्पना नहीं कर सकता जब पृथ्वी पर व्यवहार में एक ही धर्म होगा। सिद्धान्त रूप में चूँकि ईश्वर एक है इसलिए एक ही धर्म हो सकता है। परंतु व्यवहार में मैं ऐसे कोई दो आदमी नहीं जानता जिनकी ईश्वर-संबंधी कल्पना एक ही हो।[31]

गाँधी ने धार्मिक सहिष्णुता को अत्यधिक रूप से महत्वपूर्ण माना है जब वे कहते हैं कि तात्कालिक आवश्यकता यह नहीं कि धर्म एक हो बल्कि यह है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में परस्पर आदर और सहिष्णुता हो। हम निर्जीव समानता नहीं प्राप्त करना चाहते, परंतु, विविधता में एकता चाहते हैं। परम्पराओं, पैतृक संस्कारों, जलवायु और दूसरी परिस्थितियों को मिटाने का प्रयत्न किया जाएगा तो वह असफल ही नहीं होगा बल्कि अधर्म भी होगा। धर्मों की आत्मा एक है, परंतु वह अनेक रूपों में प्रकट हुई है। ये रूप अनन्त काल तक रहेंगे। ज्ञानी पुरुष इस बाहरी आवरण की परवाह न करके विभिन्न आवरणों के भीतर रहने वाली एक ही आत्मा के दर्शन करेंगे।[32]

महात्मा किसी भी धर्म की आलोचना करने की अपेक्षा उसके सार उसकी उन बातों को ले लेना श्रेयस्कर समझते हैं जो सम्पूर्ण मानवता के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके जब वे कहते हैं दूसरे धर्मों के शास्त्रों की आलोचना करना या उनका दोष बताना मेरा काम नहीं है। अलबत्ता, यह मेरा विशेष अधिकार है और होना चाहिए कि उनमें जो सच्चाइयाँ हों उनकी मैं घोषणा करूँ और उन पर अमल करूँ इसलिए मुझे जो कुरान की, या पैगम्बर के जीवन की, जो बातें समझ में न आयें उनकी आलोचना या निन्दा नहीं करनी चाहिए अपितु उनके जीवन के जिन पहलुओं के मैं समझ सका हूँ और मुझे अच्छे लगे हैं, उनकी प्रशंसा करने के हर मौके का मैं स्वागत करता हूँ। दूसरे धर्मों के प्रति पूज्य भाव रख कर ही मैं सब धर्मों की समानत के सिद्धान्त का पालन कर सकता हूँ किन्तु हिन्दू धर्म को शुद्ध करने और शुद्ध रखने के लिए उसके दोष बताना मेरा अधिकार भी है और कर्त्तव्य भी परन्तु जब अहिन्दू लोग हिन्दू धर्म की आलोचना करने लगते हैं और उसके दोष गिनाने लगते हैं, तब वे हिन्दू धर्म के बारे में अपने अज्ञान का ही ढिंढोरा पीटते हैं और उसे हिन्दू दृष्टि से देखने की अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। इससे

उनकी दृष्टि विकृत होती है और निर्णय दूषित बनता है। इस प्रकार हिन्दू धर्म के अहिन्दू आलोचकों का मेरा अपना अनुभव मुझे अपनी मर्यादाओं का ज्ञान कराता है और इस्लाम या ईसाई धर्म तथा उनके संस्थापकों की आलोचना करने के बारे में सावधानी रखना सिखाता है।

बापू धार्मिक सहिष्णुता के संदर्भ में भी अपने विचार प्रकट करते हैं जब वे कहते हैं कि 'सहिष्णुता' शब्द मुझे पसंद नहीं। यहाँ इस शब्द की नापसंदगी का हेतु वे इस रूप में व्याख्यायित करते हैं कि हमारे अंदर किसी धर्म विशेष के प्रति सहिष्णुता से यह तात्पर्य उजागर होता है कि हम किसी धर्म की हीनता के चलते उसे किसी प्रकार सहन कर पाने की क्षमता रखते हैं जबकि ऐसा भाव उचित नहीं। वे कहते हैं, सहिष्णुता में खामखां यह मान किया जाता है कि हमारे अपने धर्म से दूसरे धर्म घटिया हैं जबकि अहिंसा हमें यह सिखाती है कि हम दूसरों के धर्म का उतना ही आदर करें जितना अपने धर्म का करते हैं।[33]

पुनः हिन्दू धर्म में अपनी व्यापक आस्था के हेतु को बहुत ही स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किया है जब वे कहते हैं, 'चूँकि मैं पैतृक संस्कारों को मानता हूँ और एक हिन्दू परिवार में पैदा हुआ हूँ इसलिए मैं हिन्दू रहा हूँ। किन्तु मुझे मालूम हो जाए कि हिन्दू धर्म का मेरे नैतिक विचारों या आध्यात्मिक विकास के साथ मेल नहीं बैठता तो मैं उसे छोड़ दूँगा। मगर जाँच करके मैंने पाया है कि मैं जितने धर्मों को जानता हूँ, उन सबमें हिन्दू धर्म सबसे अधिक सहिष्णु है। इसमें जो कट्टरता का अभाव है इससे उसके अनुयायी को आत्माभिव्यक्ति के लिए अधिक से अधिक अवसर मिलता है। हिन्दू धर्म एकांगी धर्म न होने के कारण उसके अनुयायी न केवल अन्य सब धर्मों का आदर कर सकते हैं और उसे हज़म भी कर सकते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण गाँधी की धर्म संबंधी विचारों पर एक विहंगम दृष्टिपात करता है। अध्ययन के क्रम में यह स्पष्टतः समझने योग्य है कि धर्म के संदर्भ में जितनी मान्यतायें और संदर्भ हो सकते हैं उन सब पर महात्मा का चिंतन समझा जा सकता है। यह उन्हीं धर्म संबंधी गाँधी की मान्यताओं में से अधिकांशतः को समझने, प्रस्तुत करने का एक लघु प्रयास था।

संदर्भ

1. हिन्द स्वराज (1946) पृ0 36
2. यंग इण्डिया, 6-9, पृ0 28
3. आत्मकथा (अंग्रेजी) 1948, पृ0 36
4. असंशय महाबाहो मनेदुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते।। श्रीमद्भग्वद्गीता 35/6
5. मंगल-प्रभात, अध्याय 1
6. यंग इण्डिया, 11-4-1929
7. मेरे सपनों का भारत, पृ0 47
8. मेरे सपनों का भारत, पृ0 48
9. हरिजन,1-6-1935
10. हरिजन, 29-6-1935
11. हरिजन, 23-3-40
12. हरिजन, 23-3-40
13. यंग इण्डिया, 4-4-29
14. हरिजन, 11-3-39
15. हरिजन, 6-5-33
16. हरिजन, 8-7-33
17. हरिजन, 8-7-33
18. हरिजन, 8-7-33
19. बॉम्बे क्रॉनिकल, 19-11-33
20. हरिजन, 15-4-1933
21. हरिजन, सेवक, 18-3-1939
22. हरिजन, 13-10-1940
23. हरिजन, 29-8-1936
24. हरिजन, 14-5-1938
25. स्पीचेज एण्ड राइटिंगज़ ऑफ महात्मा गाँधी (1933), पृ0 1069
26. हरिजन, 18-8-1946
27. यंग इण्डिया, 24-9-1925
28. यंग इण्डिया, 24-3-1920
29. आत्मकथा (अंग्रेजी) 1948, पृ0 84
30. यंग इण्डिया, 12-9-1927
31. हरिजन, 2-2-1934
32. यंग इण्डिया, 25-9-1925
33. यंग इण्डिया (बुलेटिन), 2-10-1930

●

पारिस्थितिकी संकट, जीवन मूल्य और गाँधी चिंतन

*डॉ. धर्मजंग**

वर्तमान समय में हम आधुनिक विकासशील मानव समाज की तमाम नई उपलब्धियों को देख रहे हैं और उनके साथ जी रहे हैं। इन उपलब्धियों में बहुत सी मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं जिसने सम्पूर्ण मानव जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि की है, जैसे- आधुनिक चिकित्सा पद्धति, यातायात-संचार का विकास, ज्ञान के नए सहयोगी उपकरणों, यथा- कम्प्यूटर का विकास इत्यादि। पर कई सकारात्मक उपलब्धियों के साथ मानवजन्य कुछ नकारात्मक उपलब्धियाँ भी हमारे आधुनिक समाज में आयी, जिसमें सर्वप्रमुख और सर्वाधिक भयावह उपलब्धि है- पारिस्थितिकी संकट या पर्यावरण अवनयन का आरम्भ। क्योंकि जब एक बार यह स्वीकार कर लिया जाता है- कि मनुष्य किसी लोकोत्तर सत्ता का अंग नहीं, कि उसमें विवेक के स्थान पर आकांक्षाओं व वासनाओं की प्रबलता है, कि विज्ञान और प्रविधि प्रकृति पर मनुष्य की सत्ता व गरिमा की प्रतिष्ठ करते हैं, कि इन सबका उद्देश्य व्यक्ति के इहलौकिक सुख की वृद्धि करना है, तब व्यष्टि और समष्टि का सम्बन्ध, व्यष्टि की स्वतंत्रता का स्वरूप, उसके जीवन के आदर्श और अभिप्रेरणाएँ सभी कुछ इस धारणा से प्रभावित होती हैं। इसलिए आज के उपभोग प्रधान मनुष्य की यह नियति है कि समाज से उसका सम्बन्ध मात्र प्रायोजनमूलक हो गया है- इससे इतर कुछ भी नहीं। जबकि हम गम्भीरता से विचार करते हैं तो पाते हैं कि आदिमानव के काल में जब वह प्रकृति के साथ सामंजस्य और समरसता के साथ जीता था, तब ऐसे पर्यावरण संकटों का चिह्न हमें ऐतिहासिक रूप से प्राप्त नहीं होता है। परन्तु शनैःशनैः जब मनुष्य ने अपनी बौद्धिक क्षमता के बल पर प्रकृति को नियंत्रित करने का प्रयास आरम्भ किया तो साथ ही उसने प्रकृति को भी नष्ट करना आरम्भ कर दिया। जब मनुष्य सर्वप्रथम कृषि की ओर अग्रसर हुआ तो वह अपने वन्य जीवन की अपेक्षा अधिक उपार्जन करने में सक्षम हुआ। वह अन्न का उपार्जन और संचयन प्रारम्भ करता है, इस क्रम में प्रकृति में वह अपना आरम्भिक हस्तक्षेप करता है और शायद सर्वप्रथम अपने निजी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जंगल-जमीन के संतुलन को अपनी आवश्यकतानुसार बदलने का प्रयास आरम्भ करता है।

फिर नगरों को बसाने और अन्य क्रमिक विकास के क्रम में उसने प्रकृति को कुछ हानि तो पहुँचाया, परन्तु वह हानि इतनी बड़ी नहीं थी कि उससे प्रकृति को अपरिवर्तनीय क्षति पहुँचे। पर पिछले तीन सौ सालों में सम्पूर्ण विश्व में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप विकास की एक तीव्रगामी लहर ने परिवर्तन की गति इतनी तीव्र कर दी है कि प्रकृति का संतुलन अत्यन्त गंभीर रूप से विकृत हो गया है। और यह विकार इस रूप में विकसित हो गया है कि इससे सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों के जीवन के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। निश्चित रूप से मानव इन सभी प्राणियों में सम्मिलित है। स्वयं मानव के किए हुए कर्मों के कारण हम आज मानव समेत सभी चराचर जगत के लिए एक व्यापक आसन्न खतरे को परिलक्षित कर सकते हैं। इस संकट को हम विभिन्न रूपों में सम्पूर्ण विश्व में देखते आ रहे हैं और यह किसी भी मनुष्य के लिए अनजाना नहीं है।

पर्यावरण प्रदूषणजन्य पारिस्थितिकी संकट के संदर्भ में पिछली शताब्दी से ही गम्भीर रूप से विचार किया जाने लगा है और इसकी भयावहता को समझते हुए इसके समाधान के लिए भी विभिन्न देशों में विचारकों ने विचार और प्रयास आरम्भ कर दिए हैं। भारत में भी पारिस्थितिकी संकट को पारम्परिक ज्ञान और आधुनिक चिन्तन दोनों स्तरों पर समझने और विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन भारतीय समाज में यद्यपि पर्यावरण प्रदूषण या पारिस्थितिकी संकट की ऐसी भयावह समस्या नहीं थी, परन्तु तत्कालीन मनीषियों ने मानव की अपरिमित इच्छाओं के जानते-समझते हुए उसे प्रकृति के साथ सदैव सामंजस्य बनाकर जीने का संदेश दिया। यजुर्वेद के एक मंत्र का उल्लेख यहाँ समीचीन होगा-

दृते दृंह मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्या चक्षुषा समीक्षामहे॥[1]

उपर्युक्त मंत्र में न केवल मनुष्यों अपितु सम्पूर्ण प्राणिमात्र के मंगल की कामना की गई है।

यहाँ हम उन जीवन मूल्यों के महत्त्व को भी परिलक्षित कर सकते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध मानवीय अस्तित्व और इस धरा के पारिस्थितिकीय संतुलन से है। यदि हमारे जीवन में प्रेम, करुणा, मैत्री, सौहार्द, अहिंसा, संयम, सहयोग, न्याय इत्यादि जीवन मूल्यों का स्थान ना हो तो हम ना ही अपने जीवन को सुखकर बना सकते हैं और ना ही अपने सामाजिक वातावरण में सकारात्मक परिवर्तन के संवाहक बन सकते हैं। जीवन मूल्यों का स्थान हमारे जीवन में वही होना चाहिए जो स्थान जल और वायु का है। जैसे जल और वायु हमारे अस्तित्व के लिए आवश्यक है उसी प्रकार जीवन मूल्य भी हमारे जीवन के साथ-साथ पृथ्वी पर भी पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए नितांत आवश्यक है। हमारे जीवन के एक महत्वपूर्ण अंगरुपी जीवन मूल्यों की उपेक्षा हमें उस भयावह संकट की ओर धकेल रही

* शोध सहायक, मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

है जिसकी विकटता से हम सभी अपरिचित नहीं हैं। आसन्न खतरों को ध्यान में रखते हुए हमारा सचेत प्रयास उन सभी जीवन मूल्यों को सहेजने और पोषित करने वाला होना चाहिए जिसकी ओर हमारे प्राचीन ग्रंथों, आख्यानों और महापुरुषों के आदर्शों में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। इन आदर्श मूल्यों का अनुसरण हमें अपने जीवन के साथ-साथ इस धरा को भी सुंदर और रहने योग्य बनाये रखने में मददगार होगा। भारत की पारम्परिक दृष्टि और आधुनिक चिंतकों ने कई ऐसे आदर्श जीवन मूल्यों का उल्लेख अपने आचार, व्यवहार और उपदेशों के माध्यम से किया है जिनका आधुनिक संदर्भ में अत्यधिक महत्त्व और उपयोगिता है और जिनमें से कुछ का उल्लेख लेख में आगे द्रष्टव्य है।

भाररतीय पारम्परिक दृष्टि में मनुष्य को प्रकृति के एकमात्र उपभोगकर्ता या शोषक के रूप में न देखकर उसे प्रकृति के सहजीवी, सहयोगी इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। वह स्वयं को प्रकृति के एक अंग के रूप में अनुभूत करते हुए अपना विकास इस प्रकार करता है कि प्रकृति पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े। परन्तु आधुनिक विकास की अंधी दौड़ का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा और यहाँ पर भी पारिस्थितिकीय असंतुलन की समस्या का आरम्भ हो चुका है। आधुनिक भारतीय चिन्तकों ने भी इस समस्या की गम्भीरता को देखते हुए ऐसी जीवन दृष्टि के विकास की बात की, जिससे मनुष्य का जीवन प्रकृति के साथ अधिक समरसतापूर्ण हो सके। भारत में 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। एक अर्थ में वे सभी आधुनिक माने जाते हैं जिन्होंने अपनी बाह्य जीवन-शैली पश्चिमी प्रणाली के अनुकूल बनाई है। दूसरे वे हैं, जो जीवन के प्रति विवेकपूर्ण, वैज्ञानिक, लोकतांत्रिक एवं समतावादी दृष्टि रखते हैं। महात्मा गांधी उन दूसरी कोटि के आधुनिक भारतीय चिन्तकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चिन्तक हैं। उनके संदर्भ में आचार्य कृपलानी ने ठीक लिखा है-

'यदि सत्य और नैतिक विधि की सर्वोच्चता को मानना आधुनिक है, तो गांधी आधुनिक थे। यदि अपनी बात पर अमल करना और अपने कर्त्तव्य का पालन करना आधुनिकता का लक्षण है, तो गांधी आधुनिक थे। यदि वैयक्तिक तथा अपने आस-पास की स्वच्छता को बनाए रखना, आधुनिकता के चिह्न हैं, तो गांधी आधुनिक थे। यदि जिह्वा की वृद्धि नहीं बल्कि शरीर को दूसरों की भलाई के लिए दुरुस्त रखना आधुनिक है, तो गांधी आधुनिक थे। यदि सहिष्णुता और अच्छी समझदारी आधुनिक है, तो गांधी को निश्चय ही आधुनिक मानना होगा। यदि विरोधियों और मतवैभिन्य वाले लोगों के साथ सहज रहना आधुनिक है, तो गांधी आधुनिक थे। यदि सबके साथ सदव्यवहार बिना किसी पद या अधिकार या धन की परवाह किये-करना आधुनिक है, तो निश्चय ही गांधी आधुनिक थे। यदि निम्न एवं दलितों के साथ तादात्म्य स्थापित करना आधुनिक है, तो गांधी आधुनिक थे। यदि लोकतांत्रिक जीवन प्रणाली आधुनिक है, तो गांधी आधुनिक थे। यदि गरीबों, जरूरतमंदों, दलितों, अभागों और दरिद्रनारायण के लिए अथक परिश्रम करना आधुनिक है, तो गांधी आधुनिक थे। यदि मानवीय वासनाओं से अलग रहना आधुनिक है, तो गांधी आधुनिक थे। और सबसे बढ़कर यदि किसी सत्कार्य के लिए मरना आधुनिक है, तो गांधी आधुनिक थे।'[2]

गांधी ने ऐसे विचार सूत्रों का प्रतिपादन किया, जिनके अनुगमन मात्र से हम पारिस्थितिकीय संकट की समस्या का सफलतापूर्वक समाधान कर सकते हैं। उन्होंने आधुनिक समस्याओं का समाधान जिस बल के आधार पर करने का संदेश दिया था- वह था चरित्र बल। इसी संदर्भ में **'महात्मा गांधी के विचार'** पुस्तक की भूमिका में प्रसिद्ध विचारक यू0आर0 राव की टिप्पणी गांधी के संदर्भ में बहुत प्रासंगिक है कि-**'आज दुनिया निश्चित रूप से विनाश के कगार पर खड़ी है जिससे उसकी रक्षा करना कठिन दिखाई दे रहा है। इसके कारण हैं- सतत वैचारिक संघर्ष, विकट जातीय द्वेष जिनके परिणाम स्वरूप ऐसे युद्ध छिड़ सकते हैं जिनकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलेगी, और परमाणु अस्त्रों की संख्या में अंधाधुंध वृद्धि का बराबर बना हुआ खतरा जिससे अकल्पनीय विनाश की नौबत आ सकती है। ऐसी सूरत में, मानव जाति को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दो में से एक बल को चुनना है- नैतिक बल अथवा भौतिक बल। भौतिक बल मानव जाति को आत्मसंहार की ओर ले जा रहा है। गांधी जी हमें दूसरी दिशा में जाने का संकेत करते हैं क्योंकि वे नैतिक बल की प्रतिमूर्ति हैं। आप कह सकते हैं कि यह कोई नयी दिशा नहीं है। पर यह वह दिशा अवश्य है जिसे दुनिया या तो भूल गई है या जिस पर चलने का साहस नहीं कर पाती। लेकिन अब इस दिशा की उपेक्षा करने से उसका अपना अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।'**[3]

आधुनिक भारत के निर्माताओं में सर्वप्रमुख महात्मा गांधी ने भी अपने विचार और कर्म के धरातल पर इस समस्या का एक उत्कृष्ट समाधान प्रस्तुत किया था। यदि हम उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर, उसका अनुसरण करें तो हम आधुनिक जीवन की इस गंभीर समस्या का समाधान कर सकते हैं। इस संदर्भ में सर्वपल्ली राधाकृष्णन का कथन उल्लेखनीय है कि **''गांधीजी उन पैगम्बरों में से हैं जिनमें हृदय का शौर्य, आत्मा का शील और निर्भीक व्यक्ति की हंसी के दर्शन होते हैं। उनका जीवन और उनके उपदेश उन मूल्यों के साक्षी हैं जो राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय की सीमा से परे सार्वभौम हैं और जो युगों से इस देश की धरोहर रहे हैं- आत्मा में आस्था, उसके रहस्यों के प्रति आदर-भाव, पवित्रता में निहित सौन्दर्य, जीवन के कर्त्तव्यों का स्वीकार,**

चरित्र की प्रमाणिकता।''[4] गांधी यह मानते हैं कि आदर्श समाज की स्थापना आदर्श व्यक्ति से ही हो सकती है। जो व्यक्ति के लिए शुभ है वही समाज के लिए भी शुभ है। आदर्श समाज की स्थापना के लिए व्यक्ति को पहले आदर्श बनाने की आवश्यकता है। समाज में क्रांति एकहरी नहीं दोहरी प्रक्रिया से आती है। पहले व्यक्ति के मानस में परिवर्तन लाना पड़ता है। अन्त में समाज के बाह्य ढाँचे में परिवर्तन लाना पड़ता है। केवल समाज के बाह्य ढाँचे में परिवर्तन करने से कोई विशेष काम नहीं होता। आदर्श समाज की स्थापना करने के लिए व्यक्ति को निर्णय लेने में स्वावलम्बी होना चाहिए, उसे अपनी आत्मशक्ति को पहचानना चाहिए। इसके लिए गांधी ने मनुष्यों के लिए एकादश व्रतों के अनुपालन पर जोर दिया था। यद्यपि उन्होंने यह विचार सूत्र भारतीय लोगों के लिए विदेशी सत्ता से लड़ने के लिए एक उपकरण के रूप में दिया था परन्तु गहराई से विवेचित करने पर हम पायेंगे कि ये सम्पूर्ण मानवता के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। यह एकादश व्रत हैं- (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रह्मचर्य (5) अपरिग्रह (6) स्वदेशी (7) शारीरिक श्रम (8) सर्वधर्म समभाव (9) अभय (10) अस्वाद और (11) अस्पृश्यता निवारण।

अब यदि हम महात्मा गाँधी के प्रत्येक व्रत पर क्रमानुसार विचार करें तो हमें पारिस्थितिकीय संतुलन को स्थापित करने वाले इन सरल सूत्रों का स्पष्टीकरण हो जायेगा। महात्मा गांधी का सर्वाधिक जोर **'सत्य'** और **'अहिंसा'** के अनुपालन पर था। यंग इंडिया में वे लिखते हैं : **'मैं दिव्यद्रष्टा नहीं हूँ। मैं तो एक व्यावहारिक आदर्शवादी हूँ। अहिंसा का धर्म केवल ऋषियों और संतों के लिए नहीं है। यह साधारण लोगों के लिए भी है। अहिंसा मानवजाति का नियम है, वैसे ही जैसे कि हिंसा पशु का। पशु में आत्मा सुप्त रूप में निवास करती है, इसलिए वह केवल शारीरिक शक्ति के नियम को ही जानता है। मनुष्य की गरिमा एक उच्चतर नियम के पालन की अपेक्षा रखती है- वह नियम है आत्मा की शक्ति।'**[5] सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति का प्रत्येक कर्म स्वयं के साथ दूसरों के कष्ट को भी ध्यान में रखकर संचालित होता है। व्यक्ति जब अपनी पीड़ा, अपने कष्ट का विस्तार अपने परिवार, अपने समाज से आगे बढ़कर सम्पूर्ण प्रकृति के साथ अनुभूत करने लगता है तो उसका प्रत्येक कर्म अहिंसा और सत्य के आलोक में क्रियान्वित होता है। हरिजन में इस संदर्भ में गांधी जी लिखते हैं : **'हमें सत्य और अहिंसा को व्यक्तिगत आचरण की ही नहीं बल्कि समूहों, समुदायों और राष्ट्रों के आचरण की वस्तु बनाना होगा। कम से कम मेरा स्वप्न तो यही है। और मैं इसकी प्राप्ति का प्रयास करते हुए ही जाऊंगा और मरुंगा। मेरा विश्वास मुझे प्रतिदिन नये सत्यों की खोज करने में सहायक होता है। अहिंसा तो आत्मा का स्वभाव है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के सभी कार्यकलापों में इस पर आचरण करना चाहिए। यदि यह सर्वत्र प्रयोग में न लाई जा सके तो इसका कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं है।'**[6] ऐसा व्यक्ति न केवल कर्मणा अपितु मनसा, और वाचा भी अहिंसक वृत्ति का हो जाता है बल्कि उसका प्रत्येक कृत्य ऐसी अवस्था में पारिस्थितिकी का संपोषक होता है। अहिंसा की इसी अवधारणा का अत्यन्त सुन्दर रूपायन हमें महर्षि पतन्जलि कृत योगदर्शन में मिलता है जहाँ कहा गया है कि- **'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:'**[7] अर्थात् जब योगी का अहिंसाभाव पूर्णतया दृढ़ स्थिर हो जाता है तब उसके निकटवर्ती हिंसक जीव भी वैरभाव से रहित हो जाते हैं।

इसी प्रकार जब हम **'अस्तेय'** और **'अपरिग्रह'** पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि अपरिग्रही व्यक्ति का जीवन दर्शन अल्पभोग और अल्पसंग्रह पर आधारित होता है। वह उतना ही संग्रह करता है जितना कि उसकी तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए आवश्यक है। अधिक प्राप्ति और संग्रह की अनाकांक्षा उसे चोरी और अतिशय भोग एवं संग्रहण से बचाती है। वह प्रकृति पर अनावश्यक भार नही डालता है तथा प्रकृति की समस्त वस्तुओं का सम्यक उपभोग करता है। इसी भाव का उत्तम उदाहरण हमें ईशावास्योपनिषद में मिलता है, जहाँ कहा गया है-

ईशावास्य मिंद सर्वं, यतकिंच जगत्यांजगत् ।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृध कस्यस्विद धनम् ॥[8]

अर्थात् हम सभी को त्यागपूर्वक भोग का उपदेश हमें हमारे प्राचीन वैदिक-औपनिषदिक साहित्य में भी मिलता है, आवश्यकता मात्र उसके अनुशीलन की है। **'अस्तेय'** और **'अपरिग्रह'** के इस संदर्भ में गांधी के विचारर कुछ इस प्रकार हैं-

'स्वर्णिम नियम यह है कि.... जो चीज लाखों लोगों को उपलब्ध नहीं है, उसका भोग करने से हम दृढ़तापूर्वक इंकार कर दें। इंकार करने की यह क्षमता हमारे अंदर अचानक ही नहीं आ जाएगी। पहले तो इस मानसिक वृत्ति का विकास करना होगा कि जो वस्तु अथवा सुविधा लाखों लोगों को उपलब्ध नहीं है, उसका भोग हम नहीं करेंगे। इसके बाद अगला कदम होगा इस मनोवृत्ति के अनुरूप अपने जीवनक्रम में यथाशीघ्र परिवर्तन लाना।'[9] **तथा 'ईश्वर तात्कालिक आवश्यकता से अधिक मात्रा में कभी सृजन नहीं करता। इसलिए यदि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु का उपयोग करता है तो वह अपने पड़ोसी को दरिद्र बनाता है। विश्व के अनेक भागों में लोग इसी कारण भूखे हैं कि हममें से अनेक लोग अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक मात्रा पर कब्जा कर लेते हैं। हम प्रकृति की देनों को जिस तरह चाहें इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन प्रकृति के खाते में जमा और नामे हमेशा बराबर रहते हैं। किसी तरफ कोई बाकी नहीं होती।''**[10]

गाँधी की यह दृष्टि पारिस्थितिकीय संतुलन को संपोषित करने वाली दृष्टि है।

गाँधी के एक और व्रत **'ब्रह्मचर्य'** की अवधारणा सभी प्राचीन भारतीय दर्शनों में मिलती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध यहाँ केवल मनुष्य के यौनिक आचरण के संयम से नहीं है, वरन् ब्रह्मचारी व्यक्ति अपनी सभी एन्द्रिय ऐषणाओं पर नियंत्रण रखता है, उनका नियमन वह प्रकृति की ऋत् व्यवस्था के अनुसार करता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मचर्य नियम का पालन करने वाले व्यक्ति का जीवन नियम पालन न करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा प्रकृति के अधिक अनुकूल, पारिस्थितिकीय संतुलन को अधिक पोषित करने वाला होता है। पृथ्वी पर मनुष्य की बढ़ती संख्या और उसके उपयोग की गति, पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है। चूँकि आज के मानव ने काफी हद तक प्राकृतिक संकटों का सामना करना सीख लिया है। अतः मानव जनसंख्या पर प्रकृति का वैसा नियंत्रण अब नहीं है जैसा अन्य प्राणियों की संख्या पर रहता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त सम्पूर्ण रूप से अधिक पर्यावरण मित्र सिद्धान्त है।

उपर्युक्त पंच व्रतों का उल्लेख तो हमारे अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों में मिलता है और उनकी व्याख्या भी तदैव सिद्धान्त में व्यापक रूप से मिलती है। इन व्रतों के व्यापक विश्लेषण और अनुशीलन से हमें निश्चित रूप से पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखने में अपना महती योगदान दे सकते हैं। इन व्रतों में महात्मा गाँधी ने छः व्रत और संयुग्मित किए। निश्चित रूप से आधुनिक परिदृश्य में इन छः व्रतों की उपयोगिता भी उपर्युक्त पाँच से कम नहीं है। गाँधी का अत्यधिक बल **'स्वदेशी'** वस्तुओं के प्रयोग पर था।

गहराई से विचार करने पर हम सभी महसूस करते हैं कि हम जितना अधिक स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, उतना ही कम पर्यावरण को क्षति पहुँचाते हैं। जैसे यदि हम अमेरिका या यूरोप में उत्पादित वस्तुओं का अपने देश में अधिक प्रयोग करें तो सर्वप्रथम उन वस्तुओं के आयात में ही हम मालवाहक जहाज के ईंधन के रूप में पर्यावरण प्रदूषण का आरम्भ कर देते हैं। फिर उन वस्तुओं की बड़ी मात्रा में उत्पादन भी कहीं न कहीं पर्यावरण को क्षति पहुँचाता है। इसके अलावा स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग हमें अपने आस-पास के परिवेश से अधिक संवेदनशील रूप से सम्बद्ध करता है। हम अपने पर्यावरण के रक्षण के प्रति अधिक सजग होते हैं, जब हम देखते हैं कि इसी पर्यावरण से हमें हमारी जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्राप्त हो रही हैं। इस संदर्भ में गाँधी कहते हैं कि **'जब उत्पादन और उपभोग दोनों स्थानीकृत होते हैं तो उत्पादन में अंधाधुंध और किसी भी कीमत पर वृद्धि करने का लालच समाप्त हो जाता है। तब हमारे वर्तमान अर्थतंत्र की सभी अनंत कठिनाइयाँ और समस्याएँ समाप्त हो जाएंगी....तब मुट्ठी भर लोगों के पास वस्तुओं को बेशुमार संचय और शेष लोगों को उसके बावजूद वस्तुओं के अभाव की स्थिति पैदा नहीं होगी....।'**[11]

गाँधी ने आधुनिक मानव के जीवन में **'शारीरिक श्रम'** के महत्त्व को न केवल अपने संदेशों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया बल्कि अपने दैनिक जीवन के अभ्यास में शारीरिक श्रम को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उनका कहना था कि श्रम के मूल्य की दृष्टि से एक वकील और मोची दोनों का कार्य समानरूप से महत्त्वपूर्ण है। दोनों को अपने श्रम का उचित सम्मान और मूल्य मिलना चाहिए। जूते सिलने के कारण मात्र से ही मोची का कर्म कम महत्वपूर्ण नहीं हो जाता है, क्योंकि वह भी अपने शारीरिक श्रम के कारण समान रूप से सम्मान का पात्र है। हरिजन में इस संदर्भ में गांधीजी लिखते हैं, **'रोटी के लिए श्रम करने के नियम का पालन करने से समाज की संरचना में एक मौन क्रान्ति होगी। तब जीवन के लिए संघर्ष करने के स्थान पर परस्पर सेवा के लिए संघर्ष करने में मानव की विजय मानी जाएगी। और पशु के नियम के स्थान पर मानव के नियम की प्रतिष्ठा होगी।'**[12] निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर यह सत्य हम अनुभूत कर सकते हैं कि शारीरिक श्रम के अभाव का पहला प्रभाव मनुष्य पर यह पड़ता है कि वह आलस्य और प्रमाद का शिकार होता है। आलस्य और प्रमाद से ग्रस्त व्यक्ति अधिक शारीरिक सुखों के उपकरणों के संग्रहण की ओर अग्रसर होता है, तब उसका सम्पूर्ण प्रयास और कर्म उन वस्तुओं के उत्पादन का अभिप्रेरक बनता है जो पर्यावरण प्रदूषण का कारण है या फिर वह स्वयं प्रकृति विरोधी कार्यों में संलग्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक श्रम में संलग्न व्यक्ति स्वयं अपने और साथ ही अन्य के शारीरिक श्रम को यथोचित सम्मान देता है तथा किसी भी स्थिति में उन कार्यों को नहीं करता है जिससे शारीरिक श्रम का अनावश्यक अपव्यय हो, अब वह श्रम चाहे स्वयं का हो या फिर दूसरे का। यह स्थिति वस्तुओं के अत्यधिक उत्पादन और उनके अपव्यय को रोकती है। जैसे किसी कुएँ से जल निकाल कर स्नान करने वाला व्यक्ति जल का अपव्यय करने से बचता है। उसी प्रकार शारीरिक श्रम की प्रत्येक दशा में व्यक्ति का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से स्थापित होता है और वह प्रकृति और प्रकृतिजन्य संसाधनों के महत्त्व को समझाते हुए इसके अपव्यय और प्रदूषण से बचता है।

महात्मा गाँधी का एक अन्य व्रत **'सर्वधर्म समभाव'** यद्यपि मानव के आपसी व्यवहार और सामाजिक व्यवहार से सम्बद्ध है परन्तु सूक्ष्मतया यह पारिस्थितिकीय संतुलन का एक सहयोगी सिद्धान्त है। सर्वधर्म समभाव का सबसे बड़ा लाभ मनुष्य जाति का आपसी युद्ध, जो कि अधिकांशतः धर्म के नाम पर लड़ा जाता है, से विरत होना है। और हम सभी जानते हैं कि युद्ध का सर्वाधिक नकारात्मक प्रभाव पर्यावरण पर ही पड़ता है। इसका एक विनाशकारी उदाहरण हम द्वितीय विश्वयुद्ध में हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम के हमले के रूप में देख सकते हैं। इस

परमाणु बम विस्फोट ने दशकों तक के लिए जापान के इन दो क्षेत्रों और इनके पास के वातावरण को संदूषित कर दिया। इसके अतिरिक्त जब हम सर्वधर्म समभाव की अवधारणा को स्वीकार करते हैं तो साथ ही हम उस धर्म-संस्कृति में निहित पर्यावरण अनुकूल तत्त्वों और ज्ञान को भी स्वीकार करते हैं। यह ज्ञान समृद्धि जब हमारे दैनिक जीवन व्यवहार को पोषित करती है तो हमारा प्रत्येक कर्म पारिस्थितिकीय संतुलन को अनुकूल बनाने की ओर अग्रसर होता है। मनोवैज्ञानिक, सामाजिक दृष्टि से गांधी की यह अवधारणा आधुनिक मानव समाज को अधिक सामंजस्यपूर्ण ढंग से जीवन जीने को प्रेरित करती है।

आज के बदलते परिवेश में जब पृथ्वी के सम्पूर्ण मानव समाज में रहन-सहन की संस्कृति में तीव्रगामी बदलाव हो रहा है तो यह बदलाव हम सबकी खान-पान की संस्कृति में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। स्वाद के प्रति मनुष्य की बढ़ती लालसा जहाँ एक तरफ प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन को बढ़ावा दे रही है (जैसे- मछलियों का अत्यधिक शिकार), वहीं दूसरी तरफ उन खाद्य पदार्थों के प्रति भी मानवीय आकर्षण को बढ़ा रही है जिसका उत्पादन और उपयोग मानव स्वास्थ्य के लिए दूरगामी दृष्टि से खतरनाक है। ऐसी स्थिति में महात्मा गाँधी का **'अस्वाद'** का व्रत मनुष्य के स्वयं के आत्मनियमन का ऐसा व्रत है जो मनुष्य को स्वाद के लोभ से विरत करने में सहायक होता है। स्वादेन्द्रिय का निग्रह इस पृथ्वी के सबसे प्रभावशाली प्राणी का एक ऐसा गुण है जो उसके प्रत्येक कर्म के नियमन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और ऐसी स्थिति में मनुष्य का कर्म अधिक संतुलित एवं पर्यावरण अनुकूल होता है। वे कहते हैं कि **'जो आदमी सरलता के साथ अपनी वासनाओं पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता है, उसे अपनी रसेन्द्रिय को वश में करना चाहिए। मुझे मालूम है कि यह व्रत सबसे कठिन है- जब तक हम उद्दीपक, गरम और उत्तेजक मसालों से छुटकारा पाने के लिए कर्म नहीं करेंगे ....हम वासनाओं के अतिरेकी, अनावश्यक और उत्तेजक उद्दीपन को नियंत्रित नहीं कर पाएंगे....यदि हमने ऐसा न किया....तो हम ईश्वर द्वारा प्रदत्त इस शरीररूपी पवित्र थाती का दुरूपयोग करेंगे और पशुओं से भी बदतर जीवन जीते हुए खान, पान, मैथुन आदि उन्हीं वासनाओं में लिप्त रहे आएंगे जो समान रूप से मनुष्य और पशु, दोनों के लक्षण हैं।'**[13]

इसी प्रकार **'अभय'** और **'अस्पृश्यता निवारण'** की महात्मा गाँधी की अवधारणा यद्यपि भारत की तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक स्थिति से अधिक प्रेरित थी और हमें इसका सीधा-सरल सम्बन्ध पारिस्थितिकीय संतुलन से नहीं मिलता है। परन्तु गहन वैचारिक और दार्शनिक दृष्टि से विचारने से हम यह अनुभूत करते हैं कि यह भी पारिस्थितिकी मित्र सिद्धान्त है जो एक मानव के दूसरे मानव से व्यवहार से सम्बद्ध है। वर्तमान समाज में गाँधी को व्यापक रूप से शोषण का दर्शन हुआ। उनके अनुसार शोषण का अर्थ केवल किसी को अपने अधिकारों से वंचित करना ही नहीं वरन् चेतन रूप से उन प्रवृत्तियों और मापदण्डों की स्थापना करना है जिससे समाज में अहिंसा, व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा सुरक्षित हो तथा आपस में सभी के बीच प्रेम और सहयोग की भावना हो। इस अहिंसक समाज को उन्होंने सर्वोदय समाज की संज्ञा दी। कोई भी देश या समाज तभी सुखी और शान्तिपूर्ण जीवत व्यतीत कर सकता है जब उसकी प्रत्येक इकाई भयरहित, स्वस्थ वातावरण को अनुभूत करते हुए आत्मविश्वास के साथ जीवन जिए। अभय के बारे में उनका विचार था कि **'अभय आध्यात्मिक की पहली शर्त है। कायर तभी नैतिक नहीं हो सकता। जहाँ भय है, वहाँ धर्म नहीं हो सकता।'**[14] गाँधी की उपरोक्त दोनों अवधारणा मनुष्य को परस्पर विश्वास और सहजीविता के साथ जीवन जीने को प्रेरित करती है। ऐसे मनुष्य ही अपने सम्पूर्ण पर्यावरण को सुरक्षित और स्वस्थ रखने की ओर प्रयत्नशील हो सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से हम यह समझ सकते हैं कि महात्मा गाँधी की एकादश व्रत सम्बन्धी मूल अवधारणा भारतीय सांस्कृतिक विमर्श की दृष्टि से नवीन तो नहीं थी कि परन्तु उन्होंने उसे एक नवीन रूप में व्याख्यायित अवश्य किया, उसकी सार्वजनीन उपयोगिता और महत्त्व को उद्घाटित किया तथा उसे फिर से मानव समाज के प्रयोग के लिए प्रस्तुत किया। वस्तुतः गाँधी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कर्म पारिस्थितिकीय संकट का समाधान करने वाला था और स्वयं गाँधी को अपने इस व्यक्तित्व के निर्माण में भारतीय चिंतन परम्परा और संस्कृति से गहरी समझ और प्रेरणा मिली थी। मेरी समझ में हम सभी इन विचार बिन्दुओं के स्वस्थ प्रयोग और अनुशीलन से वर्तमान पारिस्थितिकी संकट का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. *यजुर्वेद* 36.18, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि समाज, नई दिल्ली-1998
2. कृपलानी, जे.बी., *गांधी हिज लाइफ एण्ड थॉट,* नई दिल्ली, 1971, पृ0 418
3. प्रभु, आर.के. तथा यू.आर. राव (सं.) *महात्मा गांधी के विचार*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1994, भूमिका
4. वही- प्राक्कथन में
5. *यंग इंडिया* : 11.8.1920, पृ0 3
6. *हरिजन,* 2.3.1940, पृ0 23
7. महर्षि पातन्जलि कृत *योगदर्शन,* साधनापाद-35, गीता प्रेस, गोरखपुर
8. *ईशावास्योपनिषद*-1
9. यंग इंडिया- 24.06.1926, पृ0 226
10. देसाई, वी.जे. (अनु0), *आश्रम आब्जर्वेशंस इन एक्शन,* जनजीवन पब्लिशिंग हाऊस अहमदाबाद, 1955, पृ0 62

11. *हरिजन* 2.11.1934, पृ0 302
12. *हरिजन* 29.06.1935, पृ0 125
13. *महात्मा गांधी के विचार,* पृ0 294
14. *यंग इंडिया* 13.10.1921, पृ0 323 एवं 2.4.1928, पृ0 308

●

''प्रज्ञा''
नियम एवं निर्देश

1. ''**प्रज्ञा**'', जहाँ तक संभव होगा, वर्ष में दो प्रकाशित होगी : प्रथम अंक सत्रारम्भ के अवसर पर और दूसरा अंक मालवीय जयंती के अवसर पर।

2. ''**प्रज्ञा**'' पत्रिका में प्रकाशनार्थ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शोध छात्रों एवं अध्यापकों के लेख/शोध प्रपत्र सम्पादक ''**प्रज्ञा**'' के कार्यालय में प्रथम अंक के लिए 30 नवम्बर तथा द्वितीय अंक के लिए 30 अप्रैल तक पहुँच जाने चाहिए। शोध छात्रों के लेख/शोध प्रपत्र अपने निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष से संस्तुत एवं अग्रसारित होने चाहिए।

3. ''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशित लेखों/शोध प्रपत्रों के लेखकों को ''**प्रज्ञा**'' की दो प्रतियाँ दी जायेगी : प्रथम लेखकीय प्रति और दूसरी प्रतिमुद्रण की 10 प्रतियों के बदले में।

4. सभी प्रकार का शुल्क, सम्पादक ''**प्रज्ञा**'' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, वाराणसी-221005 के नाम भेजें।

5. **शोध-प्रपत्र/लेख के पाण्डुलिपि निर्माण सम्बन्धी दिशा निर्देश :**

   (क) संगणक (कम्प्यूटर) पर टंकित शोध प्रपत्र/लेख की एक प्रति सी०डी० के साथ ''**प्रज्ञा**'' कार्यालय में जमा करना होगा।

   (ख) पाण्डुलिपि ए-4 आकार के बाण्ड पेपर पर डबल-स्पेस में टंकित होना चाहिए। लेख के चारों तरफ 2 से०मी० की हासिया छोड़ें।

   (ग) **हिन्दी एवं संस्कृत भाषा में टंकित लेखों के लिए दिशा निर्देश :**

   ए.पी.एस.-डी.वी.-प्रियंका रोमन फॉन्ट, शीर्षक– 17 प्वाइंट ब्लैक, लेखक का नाम – 13 प्वाइंट इटैलिक ब्लैक, टेक्स्ट– 13 प्वाइंट, फोलियो – 11 प्वाइंट और पाद टिप्पणी 9 प्वाइंट।

   (घ) **अंग्रेजी भाषा में टंकित लेखों/शोध प्रपत्रों के लिए दिशा निर्देश :**

   'टाइम्स न्यू रोमन' फॉन्ट, शीर्षक – 14 प्वाइंट आल कैप्स काला, लेखक का नाम – 11 प्वाइंट सभी कैप्स इटैलिक ब्लैक, टेक्स्ट – 11 प्वाइंट ऊपर नीचे की पाद टिप्पणी और फोलियो – 9 प्वाइंट।

   (ङ) **टंकित पृष्ठ संख्या : अधिकतम 10 पृष्ठ।**

6. **लेखक का घोषणा-पत्र :**

   ''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशनार्थ प्रेषित ''.....'' शीर्षक लेख/शोध प्रपत्र का लेखक मैं घोषणा करता हूँ कि—

   (अ) मैं लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है, और साथ ही अपने लेख/शोध प्रपत्र को ''**प्रज्ञा**'' जर्नल में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ।

   (ब) यह लेख/शोध प्रपत्र मूल रूप से या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छापने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है।

   (स) मैं ''**प्रज्ञा**'' जर्नल के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। ''**प्रज्ञा**'' में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापी राइट का अधिकार **सम्पादक** ''**प्रज्ञा**'' को देता हूँ।

   लेखक का नाम एवं हस्ताक्षर .....

   दिनांक एवं स्थान .....

   मोबाइल/टेलिफोन नं0 .....

●

गीतानुरागी महात्मा गांधी

*डॉ. पवनकुमार शास्त्री**

सदियों से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े हुए हमारे प्रिय देश भारतवर्ष को स्वाधीनता दिलाने में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। परम कुटिल ब्रिटिशर्स के छद्म राजनीतिक व कूटनीतिक चालों का प्रतीकार करना कोई हँसी खेल नहीं था। अंग्रेजों के विरुद्ध लगभग छः दशकों तक लम्बी लड़ाई लड़कर उन्हें परास्त करने वाले श्रीमान् मोहनदास करमचन्द गांधीको विश्वस्तर पर प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तथा उन्हें गत सदीका सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्वश्रेष्ठ राजनयिक घोषित किया गया। उस ब्रिटिश हुकूमत को; जिसमें सूरज कभी अस्त नहीं होता भूलुण्ठित करने वाले महात्मा गांधी के 'सत्य' और 'अहिंसा' को अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर एक अनुपम अस्त्र के रूप में देखा गया। देश की आर्थिक, सामाजिक और औद्योगिक प्रगति के सम्बन्ध में भी गांधीजीके दृष्टिकोण को सराहना मिली। गांधीजी की एक पुकार (आह्वान) पर पूरा भारतवर्ष उमड़ पड़ता था। उन्हें सर्वश्रेष्ठ कम्युनिकेटर कहा गया।

महात्मा गांधी पर 104 देशों में डाक टिकट जारी किये जा चुके हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था यू. एन. ओ. ने गांधीजी के जन्म दिवस 2 अक्टूबर को 'विश्व-अहिंसा दिवस' घोषित किया है। ऐसे महापुरुष को वैचारिक धरातल पर कहाँ से सम्बल और मार्गदर्शन प्राप्त होता था?और उन्हें अपनी लड़ाई जारी रखने हेतु संजीवनी कहाँ से प्राप्त होती थी? ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं; किन्तु इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं इन प्रश्नों के उत्तर जिनकी ओर हमें बापू ने अपने पत्रों तथा लेखों आदि के माध्यम से संकेत किया है। ये संकेत यह स्पष्ट घोषित करते हैं कि संकटकी घड़ियों में 'श्रीमद्भगवद्गीता' बराबर बापू की वैचारिक अवलम्ब बनी रही थी-

'हम गीता सरीखी पुस्तक का नित्य ध्यान धरते हैं, उसका भजन करते करते अपने मन में धर्म जिज्ञासा उत्पन्न करने की इच्छा करते हैं, सवाल पूछना सीखना चाहते हैं और जब जब मुसीबत में पड़ते हैं तब तब अपनी मुसीबत दूर करने के लिए गीता की शरण जाते हैं और उससे आश्वासन लेते हैं।...गीता हमारी सद्गुरुरूप है, मातारूप है और हमें विश्वास रखना चाहिये कि उसकी गोद में सिर रख कर हम सही सलामत पार हो जायेंगे।...हम गीता के द्वारा अपनी सारी धार्मिक गुत्थियाँ सुलझा लेंगे।...ऐसी एक भी धर्म की उलझन नहीं है जिसे गीता न सुलझा सकती हो।' (गीता बोध के प्रास्ताविक में गांधीजी के उद्गार गी.मा.पृ.10)

यह तो सर्वविदित है कि गांधीजीके समयमें ऐसे अनेक मनस्वी विद्वान्, चिन्तक एवं विचारक, संत, महात्मा तथा राजनेता थे जो देश को आजादी दिलाने हेतु प्राण-पण से संलग्न थे। इनमें से कई तो गांधीजी के निकट सम्पर्क में थे और गांधीजी उनसे प्रभावित भी थे किन्तु महात्मा गांधी ने अपने आत्मबल का आधार श्रीमद्भगवद्गीता को माना है। श्रीमद्भगवद्गीता हमारे देश का एक गौरवग्रन्थ है। इस विश्वस्तरीय ग्रन्थ को देशी-विदेशी अनेक विद्वानोंने पढ़ा है और इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए इस पर अनुवाद आदि नानाविध विमर्श प्रस्तुत किया है। महात्मा गांधी भी आजीवन श्रीमद्भगवद्गीता के अनुशीलन में लगे रहे थे। उनके अनुसार श्रीमद्भगवद्गीता में दिये गए उपदेश मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में उसका समुचित मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं। श्रीमद्भगवद्गीता को गांधीजी ने महाभारत का एक लघु भाग मानते हुए इसे गाया गया उपनिषद् माना तथा रामायण और महाभारत को काल-चक्रका बोधक ऐतिहासिक ग्रन्थ न मानते हुए उन्हें धर्मग्रन्थ कहा। गांधीजी के अनुसार यदि हम रामायणादि को ऐतिहासिक कहना ही चाहें तो ये आत्मा का इतिहास हैं और ये यह नहीं बताते कि हजारों वर्ष पहले क्या हुआ था! बल्कि ये एक तस्वीर हैं; जो यह बतलाते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के देह में क्या चल रहा है ?-

''गीता महाभारत का एक नन्हा-सा विभाग है। महाभारत ऐतिहासिक ग्रंथ माना जाता है, पर हमारे मत से महाभारत और रामायण ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं हैं, बल्कि धर्मग्रंथ हैं, या उसे ऐतिहासिक ही कहना चाहें तो वह आत्मा का इतिहास है और वह हजारों वर्ष पहले क्या हुआ, यह नहीं बताता, बल्कि प्रत्येक मनुष्य-देह में क्या जारी है, इसकी वह एक तस्वीर है। महाभारत और रामायण दोनों में देव और असुर के -राम और रावण के - बीच नित्य चलने वाली लड़ाई का वर्णन है। ऐसे वर्णन में गीता कृष्ण-अर्जुन के बीच का संवाद है। उस संवाद का वर्णन अंध धृतराष्ट्र से संजय करता है। गीता के मानी है गाई गई। इसमें 'उपनिषद्' अध्याहार है। अतः पूरा अर्थ हुआ गाया गया उपनिषद्। उपनिषद् अर्थात् ज्ञानबोध, यानी गीता का अर्थ हुआ श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया हुआ बोध। हमें यह समझ कर गीता पढ़नी चाहिये कि हमारी देह में अन्तर्यामी श्रीकृष्ण भगवान् आज विराजमान् हैं और जब जिज्ञासु अर्जुन रूप होकर धर्म-संकट में अन्तर्यामी भगवान् से पूछेगा, उसकी शरण लेगा तो

---

* लेखक वरिष्ठ साहित्यकार एवं साहित्य विद्या वारिधि हैं। अध्यक्ष-साहित्य संगीत परिषद्, काशी।

उस समय वह हमें शरण देने को तैयार मिलेंगे। हम ही सोये हैं, अन्तर्यामी तो सदा जाग्रत हैं। वह बैठा राह देखता है कि कब हममें जिज्ञासा उत्पन्न हो, पर हमें सवाल पूछना ही नहीं आता, सवाल पूछनेकी मन में भी नहीं उठती।'' (गीता बोध के प्रास्ताविक में महात्मा गांधी - गी. मा. पृ. 10)

श्रीमद्भगवद्गीता, उसकी विषय-वस्तु तथा उसके उद्गमके हेतु अर्जुनादि पात्रों के सम्बन्ध में महात्मा गांधीने लिखा है कि-

'सन् 1888-89 में जब गीता का प्रथम दर्शन हुआ तभी मुझे लगा कि यह ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं है, वरन् इसमें भौतिक युद्ध के वर्णन के बहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भीतर निरंतर होते रहनेवाले द्वंद्व-युद्धका ही वर्णन है। मानुषी योद्धाओंकी रचना हृदयगत युद्धको रोचक बनाने के लिए गढ़ी हुई कल्पना है। यह प्राथमिक स्फुरण धर्म का और गीता का विशेष विचार करने के बाद पक्की हो गई।' (गी. मा. पृ. 58)

'...गीता के कृष्ण मूर्त्तिमान् शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान हैं। परन्तु काल्पनिक हैं यहां कृष्ण नाम के अवतारी पुरुष का निषेध नहीं है। केवल सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं, सम्पूर्णावतार का आरोपण पीछे से हुआ है।...अवतार का तात्पर्य है शरीरधारी पुरुष विशेष। जीवमात्र ईश्वर के अवतार हैं, परंतु लौकिक भाषा में सबको हम अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धर्मवान् है, उसे भावी प्रजा अवतार रुप से पूजती है। ...

'आदम खुदा नहीं, लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं।' (गी. मा. पृ. 59)

बापू की माता 'गीता'-

गीता के प्रति बापू की अगाध श्रद्धा थी। वे श्रीमद्भगवद्गीता को '**गीता माता**' कहते थे।

उनका कहना था कि-

'गीता शास्त्रों का दोहन है। मैंने कहीं पढ़ा था कि सारे उपनिषदों का निचोड़ उसके 700 श्लोकों में आ जाता है। इसलिये मैंने निश्चय किया कि कुछ न हो सके तो गीता का ज्ञान प्राप्त कर लूं। आज गीता मेरे लिये केवल बाइबिल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिये वह माता हो गई है। मुझे जन्म देने वाली माता तो चली गई, पर संकट के समय गीता माता के पास जाना मैं सीख गया हूं। मैंने देखा कि जो कोई इस माता की शरण जाता है, उसे ज्ञानामृत से वह तृप्त करती है।... जो मनुष्य गीता का भक्त होता है, उसके लिये निराशा की कोई जगह नहीं है, वह हमेशा आनंद में रहता है। (गी. मा. पृ. 305)

महात्मा गांधी ने गीता को नित्य जाग्रत रहने वाली अमर माता कहा और बतलाया कि जिसप्रकार माता बिना मांगे दूध नहीं पिलाती उसी प्रकार गीता माता भी बिना मांगे कुछ नहीं देती।

यह किसी को गोद में लेने से पहले उसकी कठिन परीक्षा लेती है और पूर्ण भक्ति की अपेक्षा रखती है-

'गीता जीती जागती जीवन देने वाली अमर माता है। दूध पिलाकर पालने पोसने वाली माता एक दिन धोखा देकर चली जायगी। हम देखते हैं, असंख्य माताएं अपनी संतान को तूफान में से बचाने में असमर्थ रहती हैं, किन्तु गीता माता का आश्रय लेने वाला भयंकर तूफान में से उबर जाता है। वह नित्य जाग्रत है। कभी धोखा नहीं देती; किन्तु जैसे बिना मांगे मां दूध नहीं पिलाती वैसे ही गीता माता भी बिना मांगे कुछ नहीं देती। वह किसी को अपनी गोद में लेने से पहले उसकी कठिन परीक्षा लेती है ; पूर्ण भक्ति की अपेक्षा रखती है। शुष्क भक्ति से भी काम नहीं चलेगा। वह अनन्य भक्ति चाहती है। इसलिये जो लोग उसे सर्वार्पण करने को तैयार नहीं, उन्हें आश्रय देनावह बिल्कुल अस्वीकार कर देती है।' (गीता-पदार्थ-कोष में महात्मा गांधी - गी. मा. पृ. 202)

20वें वर्ष में बिलायत में हुआ गीता से परिचय

हिन्दू धर्म और संस्कृति से परिपूर्ण वातावरण में पले बढ़े गांधी जी को जीवनके आरम्भिक 20 वर्षों तक श्रीमद्भगवद्गीता एवं उसमें दिये गए उपदेशों के सम्बन्धमें कोई जानकारी नहीं थी। बिलायतमें प्रवासके समय दो थियोसाफिस्ट मित्रों की संगतिमें गांधी जीको गीता पढ़ने व समझने का अवसर मिला था। ये दोनों सहोदर भाई थे और अविवाहित थे। ये उन दिनों एडविन आरनॉल्ड कृत गीताका अंग्रेजी पद्यानुवाद पढ़ रहे थे। इन्होंने गांधीजी को अपने साथ संस्कृतमें गीता पढ़ने के लिये कहा तो गांधीजीको बड़ी लज्जा महसूस हुई। क्योंकि उन्होंने पहले कभी न संस्कृत में और न भाषा में गीता पढ़ी थी। तथापि गांधीजी ने उनके साथ गीता पढ़ी। इस क्रम में बापू को गीता के दूसरे अध्यायके निम्नलिखित अन्तिम दो श्लोकों ने बड़ा प्रभावित किया और उनके दिल पर गहरा असर डाला-

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

बापूने यह अनुभव किया कि श्रीमद्भगवद्गीता एक अमूल्य ग्रन्थ है। इसके बारे में और भी जानना चाहिये। फिर तो उन्होंने गीता का सविधि अध्ययन आरम्भ कर दिया। एक छोटा सा 'जिज्ञासु-मंडल' भी बनाया। श्लोकों को कण्ठस्थ करने तथा गहराई

के साथ उन श्लोकों के रहस्यों को समझने के प्रयास आरम्भ कर दिये। बापू अपने आश्रमवासियों तथा अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों को गीता पढ़ने, याद करने, उसे समझने तथा उसका अनुकरण करने की सलाह देते किन्तु संस्कृत भाषा में लिखी गई गीता सबको समझ में आती नहीं थी। अतः बापू ने गीता के सरलीकरण की बात सोची। श्रीमद्भगवद्गीता कैसे सुबोध बने और जनसाधारण उसे सरलतासे हृदयङ्गम कर सके; एतदर्थ बापू ने कठिन परिश्रम करके गीता के अभ्यास हेतु उसके निम्नलिखित पाँच प्रारूप प्रस्तुत किये :-

1-गीता का संक्षिप्तीकरण

श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन करते हुए बापू ने यह अनुभव किया था कि गीताके सम्पूर्ण 700 श्लोकों को पढ़ पाना तथा उनको समझ पाना जनसामान्यके लिये दुष्कर है इसलिये उन्होंने गीता के संक्षिप्तीकरण की बात सोची और यह निष्कर्ष निकाला कि यदि सम्पूर्ण गीता न भी पढ़ सकें तो केवल आरम्भिक तीन(द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ)अध्यायों को ही पढ़ डालें। गीताका सम्पूर्ण सार इन्हीं तीन अध्यायों में आ जाता है। आगे के अध्यायों में यही बातें अधिक विस्तार से और अनेक दृष्टियों से सिद्ध की गई हैं। (गी. मा. पृ.305)

2-'गीता प्रवेशिका' का प्रणयन-सन् 1932 ई. में यरवदा जेल में रहते समय बापूने अपने तृतीय पुत्र रामदासके गीताध्ययनमें सुगमता हेतु श्रीमद्भगवद्गीतासे भक्तिप्रधान 41श्लोकों को संगृहीत किया और उसे रामगीताका नाम दिया। वह संग्रह बाबा राघवदासने देखा और उसे बापूसे छपवाने की सम्मति मांगी। बापू ने आश्रम निवासी विनोबा, काका साहब और बालकृष्णसे परामर्श लेने की बात कही। तब उपयोगिता बढ़ाने की दृष्टिसे उस संग्रह में से तीन श्लोकों को निकालकर तथा उसमें चार नये श्लोकों को जोड़कर गीता-प्रवेशिका के नाम से उसे छपवाया गया।[1] गांधीजी इस संग्रह को प्रवेशिका के रूप में पढ़ने तथा इसे अच्छी तरह समझ कर सम्पूर्ण गीता का अभ्यास करने का आग्रह करते थे। उनके अनुसार ***'गीता अनुकरण के लिये है, उसके पारिभाषिक शब्द अच्छी तरह समझने के बाद और उसका मध्य बिन्दु 'अनासक्ति' हृदयगत होने के बाद गीता समझने में कम कठिनाई आती है।'*** (गी.मा. पृ. 187)

3-गीता-बोध- (समीक्षात्मक निबन्धों का प्रणयन)-जेलों में रहते समय भी बापू का गीता पाठ एवं उसमें कही गई बातों पर चिन्तन-मनन चलता रहता था। यरवदा जेल में सन् 1930से 1932 के बीच निरुद्ध रहते हुए बापूने 18 अध्यायों वाली गीताके प्रत्येक अध्याय पर सारांश रूपमे अपने विचार (संक्षिप्त समीक्षात्मक आलेखों के रूप में) लिखे। इसे उन्होंने अपने आश्रमवासियों के गीता अध्ययन में सहायतार्थ लिखा था। कालान्तर में ये आलेख **'गीता-बोध'** के नाम से प्रकाशित हुए।

4-अनासक्ति योग (अर्थात् गीता का सम्पूर्ण अनुवाद)-गांधीजी अपने भाषणों में गीता के श्लोकों को उद्धृत करते हुए अहिंसादि का प्रतिपादन करते थे। स्वामी 'आनन्द' ने असहयोग के जमाने में गांधीजी से कहा कि पहले आप सम्पूर्ण गीता का अनुवाद कर लें।

'स्वामी आनंद ने असहयोग के जमाने में मुझसे कहा था-''आप गीता का अर्थ करते हैं, वह अर्थ तभी समझ में आ सकता है जब आप एक बार समूची गीता का अनुवाद कर जाएँ और उसके ऊपर जो टीका करनी हो, वह करें और हम वह सम्पूर्ण पढ़ जाएं। फुटकर श्लोकों में से अहिंसादिका प्रतिपादन मुझे तो ठीक नहीं लगता है।' (अनासक्ति योग की प्रस्तावना में गी. मा. पृ.57)

इसप्रकार गांधीजी ने गीता का अनुवाद करना आरम्भ किया। इस अनुवाद का नाम आपने 'अनासक्ति योग' रखा। गांधीजी अनासक्ति को ही गीता का मध्य विन्दु मानते थे। अपने अनुवाद के सम्बन्ध में गांधीजी ने स्पष्ट किया है कि गीता को मैंने जैसा समझा है वैसा ही लिख रहा हूँ-

'गीता को मैंने जिस प्रकार समझा है उस प्रकार का आचरण करने का मेरा और मेरे साथ रहने वाले कई साथियोंका बराबर प्रयास रहा है। गीता हमारे लिए आध्यात्मिक ग्रंथ है। उसके अनुसार आचरण में निष्फलता रोज आती है, पर वह निष्फलता हमारा प्रयत्न रहते हुए है। इस निष्फलतामें सफलता की फूटती हुई किरणों की झलक दिखलाई देती है। यह नन्हा सा जन समुदाय जिस अर्थ को आचार में परिणत करने का प्रयत्न करता है वह इस अनुवाद में है।' (अनासक्ति योग की प्रस्तावना में गी. मा. पृ.57)

'गीता एक सूत्र ग्रंथ नहीं है। गीता एक महान् काव्य है। उसमें जितना गहरे उतरिये, उतने ही उसमें से नये और सुन्दर अर्थ लीजिये। गीता जन समाज के लिये है, उनमें एक ही बात को अनेक प्रकार से कहा है।...गीता में ज्ञान की महिमा सुरक्षित है, तथापि गीता बुद्धि गम्य नहीं है, वह हृदय गम्य है। अतः वह अश्रद्धालु के लिये नहीं है। (अनासक्ति योग की प्रस्तावना में गी. मा. पृ.63)

5-गीता-पदार्थ-कोश का निर्माण

संस्कृत भाषा में जब शब्दों में विभक्ति जुड़ जाती है तब उसे पद कहते हैं। जैसे राम एक शब्द है; इसमें प्रथमा विभक्ति एकवचन लगा देने से रामः जो रूप बना वह पद कहलाएगा। गीता के 700 श्लोकों में जो पद प्रयुक्त हुए हैं उनको उनके अर्थ और सन्दर्भ सहित वर्णानुक्रम से प्रस्तुत करने का गुरुतर कार्य महात्मा गांधी ने किया। सन् 1922-23 में यरवदा जेल में गांधीजी ने गीता के पदों की अक्षरानुक्रमणिका, उनका स्थल निर्देश और उनका अर्थकोश

तैयार किया। कालान्तर में जब गांधीजी ने अनासक्तियोग लिखा तो उसमें दिये हुए अर्थ भी इस कोश में जोड़ दिये। आर्डिनेन्स राज की धाँधली के दिनों में यह सम्बन्धित कोश खो गया जिसे बाद में पुनः परिश्रम करके जोड़ा गया और श्री दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर द्वारा लिखित 'दो शब्द' से मण्डित करके सन् 1936 में प्रकाशित किया गया। आरम्भ में **गीता-पदार्थ-कोश** का प्रणयन गांधीजी को रुचिकर नहीं लगा किन्तु कोश तैयार हो जाने पर उन्हें परम आनन्द की अनुभूति हुई।[2] (गीता-पदार्थ-कोष में महात्मा गांधी व कालेलकर के उद्‌गारों से- गी. मा. पृ. 201-205)

गांधीजी गीता को अनुकरणीय ग्रन्थ मानते थे और अनासक्ति को उसका मध्य विन्दु कहते थे। ***'गीता अनुकरण के लिये है, उसके पारिभाषिक शब्द अच्छी तरह समझने के बाद और उसका मध्य बिन्दु 'अनासक्ति' हृदयगत होने के बाद गीता समझने में कम कठिनाई आती है।'*** (गी. मा. पृ. 187)[3]

गांधीजी के समक्ष उपस्थित संकट की घड़ियों में 'श्रीमद्भगवद्गीता' बराबर उनका वैचारिक अवलम्ब बनी रही थी। उन्होंने लिखा है कि-

'तब मुझे प्रतीत हुआ कि भगवद्‌गीता तो अमूल्य ग्रंथ है। यह धारणा दिन-दिन अधिक दृढ़ होती गई और अब तो तत्त्व ज्ञान के लिए मैं उसे सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ। निराशा के समय इस ग्रंथ ने मेरी अमूल्य सहायता की है।' (आत्मकथा 9वाँ संस्करण पृ. 71), *(गी. मा. पृ.* 307)

अनुभूत प्रायोगिक दृष्टान्त शास्त्रीय उपबन्धों के प्रति आस्था को सुदृढ़ करते हैं। पुराणों में वर्णित नानाविध आख्यान शास्त्रीय विधानोंमें निष्ठा जगाने के लिए ही हैं। सर्वशक्तिमान् भगवान् का श्रीराम के रूप में अवतार लेकर नर-लीलाएँ करना भी शास्त्रीय मर्यादाओं में जनता के विश्वासको सुदृढ़ करना था। साहित्य की भाषा में इसे उपदेश की सुहृत्सम्मित शैली कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेशों में हमारी सहज आस्था है तथापि महात्मा गांधी के गीता से सम्बन्धित उद्गार हमें उन उपदेशों को सश्रद्धया हृदयङ्गम करने तथा उन्हें अपनाने की प्रेरणा देते हैं।

महात्मा गांधी के 150वीं जयन्ती वर्ष में उन्हें प्रणाम करने के उद्देश्य से विरचित यह वाङ्मयी आराधना कदापि सम्भव न हो पाती; यदि स्वयं गांधीजी एवं उनके साथियों ने गीता सम्बन्धी अपने विचारों को लिपिबद्ध न किया होता और विभिन्न प्रकाशकों ने उन्हें प्रकाशित न किया होता। इस सन्दर्भ में 'गीता माता' तथा उसके प्रकाशक 'सस्ता साहित्य मण्डल' का कोटिशः आभार। इति शम्।

पाद टिप्पणी

1. ***'गीता-प्रवेशिका में श्रीमद्भगवद्गीताके छठें अध्याय से 8 श्लोक, सातवें अध्याय से 2 श्लोक, आठवें अध्याय से 1 श्लोक, नवें अध्याय से 7 श्लोक, दसवें अध्याय से 4 श्लोक, ग्यारहवें अध्याय से 13 श्लोक, बारहवें अध्याय से 1 श्लोक, तेरहवें अध्याय से 1 श्लोक तथा अट्ठारहवें अध्याय से चुने गए कुल 5 श्लोक (कुल 42 श्लोक) हैं।***
2. **गीता-पदार्थ-कोश की एक संक्षिप्त झलक देखें-**
   काङ्क्षे- 1-32 (मैं) इच्छा करता हूं,चाहता हूं। ... कामकामाः- 9-21 कामी, फल की इच्छा करने वाले।
   कामकामी- 2-70 विषयेच्छ, कामवाला, फल चाहने वाला।....
   काम्- 6-37 कैसी, कौन सी
   कामः 2-62 ; 16-21.... कामना; 3-37; 7-11 काम .....
   कामात्- 2-62 कामना से। **(गी. मा. पृ.231)**
3. **गी.मा.= गीता माता।**

●

आज के संदर्भ में गांधी-चिंतन को समझना

*डॉ. सुनील कुमार मानस**

गांधी को इस दुनिया से बिदा हुए 71 वर्ष व्यतीत हो गये हैं। इन वर्षों में तमाम वाद-विवाद एवं संवाद के साथ उनको लेकर तमाम प्रतिपाद भी हुए हैं और लगातार हो रहे हैं। ऐसा नहीं है कि गांधी के समय में ऐसा हुआ ही नहीं। पर उसकी एक सीमा थी और गांधी के त्याग एवं निष्ठा के सामने ये प्रतिवाद हमेशा फीके पड़ जाते थे। त्याग के सामने दुनिया झुकती ही है। एक शायर का भी अभिमत है-

मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे।

कि दाना खाक में मिलकर गुल-ओ-गुल्जार होता है॥

गांधी ने अपनी हस्ती को खाक की तरह इस देश की मिट्टी में मिला दिया था। फिर इससे जो गुल-ओ-गुल्जार करने वाला वृक्ष तैयार हुआ, उसकी महत्ता एवं उपयोगिता से आज भी हम लोग अभिसिंचित होते रहते हैं।

हमारे सामने सबसे बड़ी परेशानी यह है कि आजादी के बाद गांधी को हमने अध्ययन-अध्यापन और चिंतन का विषय बनाया, तमाम संस्थान भी खोले, अध्ययन-केन्द्र भी न जाने कितने बनाये और बिगाड़े। पर गांधी की चिंतन दृष्टि एवं विचार को हम समझ नहीं पाये। मसलन तमाम तरह के पाठ्यक्रमों के आधार पर हम गांधी-चिंतन में स्नातक एवं परास्नातक से लेकर विद्या-वारिधि जैसे प्रमाण-पत्र भले ही हासिल कर रहे हों, पर स्थिति वैसी की वैसी ही है- ढ़ाक के तीन पात। **पहला** पात है- गांधी जैसा कोई चिंतक नहीं हुआ। वह बहुत महान थे। उनका कोई मुकाबला नहीं है। इस पात के अनुयायी गांधी-चिंतन में डूब गये हैं, उससे उबरकर उन्हें देखने, सुनने एवं समझने का वे नाम ही नहीं लेते हैं। यह वर्ग गांधीवादी कहलाता है और सिर्फ उनका गुण-गान करता रहता है। **दूसरा** पात वह है, जो गांधी को स्वार्थवादी, जड़ एवं अवसरवादी आदि कहकर उनकी घोर उपेक्षा करता है। उसका मानना है कि गांधी अगर न होते, तो देश की स्थिति इतनी न खराब होती। अर्थात् जो खराब हुआ, उसके लिए गांधी ही जिम्मेदार हैं। यह गांधी के विरोधियों का वर्ग है। **तीसरा** पात वह है जिसकी आँखें समरस हो गयी हैं। वे जो भी देखते हैं उसमें अच्छा और बुरा निकाल कर सम्यक व्याख्या करने में पीछे नहीं रहते और सामान्य धरातल में विवेचित एवं विश्लेषित भी करते रहते हैं। यह वर्ग पक्ष-विपक्ष के दल-दल से ऊपर उठा हुआ होता है। इन्हीं वर्गों के घेरों में अध्ययन-केन्द्र वाले प्राध्यापक एवं विद्यार्थी भी शामिल हैं। उनकी चिंतन दृष्टि इससे ऊपर नहीं उठ पाती। अमूमन इन्हीं तीन पात वाले वैचारिक वर्ग में ही सभी बँधे हुए हैं। शायद इससे बाहर जाना भी कठिन है, पर असंभव नहीं।

ऐसे में गांधी को कैसे समझा जा सकता है? अध्ययन से हम सिर्फ जानकारी हासिल करते हैं। चिंतन से सृजनात्मक कल्पना से जुड़कर नवीन विचारों की सृष्टि करते हैं, जैसा कि साहित्य के क्षेत्र में प्रायः हुआ करता है। तब यह समझना कैसे संभव होगा? पं0 विद्यानिवास मिश्र का 'गांधी का करुण रस' नामक एक ललित निबंध है, जिसके अंत में उन्होंने लिखा है- ''हिंदी में गिरिराज किशोर ने गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका में किए गए अभियान का लेखा-जोखा 'पहला गिरमिटिया' के रूप में प्रस्तुत किया। पर दक्षिण अफ्रीका तो गांधीजी की प्राथमिक शाला थी। उसके बाद उनके सारे प्रयोग भारत में हुए। उन्होंने कोयले को ही अपनी ऊर्जा के ताप से हीरा बनाया और उनका अपना हीरा कोयला बन गया। हमारे देश में या तो उन्हें महिमा के आलोक में छिपा रखा है या फिर उनको प्रतिगामी, सर्वहारा का शत्रु, पूँजीवाद का हथियार आदि एक-से-एक लफ्फाजी भरे विश्लेषणों से घेर रखा है। गांधीजी दोनों नहीं थे, वे नर के भीतर नारायण के बेसँभाल व्यथा थे।''[1] आगे उन्होंने लेख का अंत करते हुए भविष्यगामी स्वप्न देखा है- ''मन में इतना विश्वास है कि एक-न-एक दिन गांधी की वह विराट व्यथा उसी तरह हमारे हृदय में करुणा की रसधार बनेगी, जिस तरह 'महाभारत' में युधिष्ठिर का विषाद बना, श्रीकृष्ण का अकेलापन बना, राजाराम की सीता के बिना जीवन की व्यर्थता का दुःख बना। तभी देश का चित्त परखा जायगा और शुद्ध चित्त से देश के विकास की चिंता होगी।''[2] इस तरह पंडित विद्यानिवास मिश्र ने जो अपने इस स्वप्न संकल्पित विचारों की अभिलाषा व्यक्त की, मेरी भी अभिलाषा है कि यह सच हो। पर प्रश्न है यह कैसे संभव होगा? इस विषय को लेकर भी भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतन में कार्य हो रहे हैं, बहुत से निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं, उपाय सुझाए जा रहे हैं, लेकिन इस बाजारवादी एवं पूँजीवादी दौड़ में सब-के-सब विफल हो रहे हैं। मुख्य समस्या है मर्म को न समझ पाने की। उसके बोध को न आत्मसात कर पाने की। लखनऊ के शायर हकीम नासिर साहब ने लिखा है- ''दर्द को दिल में जगह दे नासिर/इल्म से शायरी नहीं आती।''

बात और विचार को केवल जान लेना ही आवश्यक नहीं बल्कि उसे बोध के स्तर पर समझने की भी जरूरत है, आत्मसात भी करने की जरूरत है। इसीलिए बड़ा से बड़ा बन जाने वाला चिंतक, विचारक भी बोध के स्तर पर छोटी सी बात को नहीं समझ

* सहायक प्राध्यापक, बहाउद्दीन आर्ट्स कॉलेज, जूनागढ़ (गुजरात)

पाता और जिसे अनपढ़ा, जाहिल, गँवार कहा जाता है, वह सिर्फ उसके इशारों को देखकर ही समझ लेता है। यही अंतर है- 'होने' और 'बनने' में। प्रायः आज लोग पढ़ा-लिखा, होशियार, विद्वान 'बनने' लगे हैं। उन्हें इसके तमाम प्रमाण-पत्र भी प्रदान किये जा रहे हैं। ऐसे में अगर यह 'बनने' वाला व्यक्ति शिक्षा और समाज के क्षेत्र में शीर्षस्थ पदों में आसीन हो जाये तो, उस क्षेत्र में एक बड़ी गिरावट आयेगी। आज हर जगह ऐसा ही हो रहा है। एक शायर का कथन है- ''बर्बाद गुलिस्तां करने को इक शाख का उल्लू काफी था। / जहाँ हर शाख में उल्लू बैठा है अंजाम गुलिस्तां क्या होगा।''

हम इस भारत रूपी गुलिस्तां की दास्तां इन 'बनने' वाले लोगों के शीर्षस्थ पदों में सवार होने पर देख ही रहे हैं। समस्याओं के समाधान निकालते-निकालते इतनी समस्याएँ आती चली जा रही हैं कि उसको ढ़ोना, निर्वहन करना और जानना लगातार कठिन होता जा रहा है। मूल की ओर बढ़ने के बजाय हम 'रूढ़' में ही फँसे रह जा रहे हैं। ऐसा रूढ़ जो सिर्फ उलसाने और विशेष रूप से फँसाने का पर्याय बन गया है। हमारी सारी कोशिश भी यही है कि यदि महत्त्वपूर्ण बनना है तो लोगों को फँसाओ और उलझाओ। उन्हें स्वतंत्र एवं स्वाधीन चिंतन की ओर उन्मुख ही न होने दो।

आज हर क्षेत्र में ऐसा ही हो रहा है। हमारे धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक संगठन भी इसी को अपना पवित्र ध्येय समझने लगे हैं। यानी जो मार्गदर्शन की भूमिका निभाकर रक्षक का कार्य करता था, वही अब भक्षक का कार्य करने लगा है, जबकि हमारे मनीषी भक्षक से भी रक्षक का कार्य करवा लेने में अपनी सिद्धि समझते थे। ऐसे मनीषी अब रहे भी कम और जो हैं, उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है, उन्हें किसी जगह पर स्थिर नहीं होने दिया जा रहा है।

गांधी जी ऐसे ही मनीषी थे। हम उन्हें समझने के लिए तमाम उपक्रम तो रच रहे हैं, लेकिन समझ नहीं पा रहे। मुझे एक प्रसंग याद आ रहा है। एक बार एक व्याख्यान में एक जिज्ञासु ने मुझसे जिज्ञासा प्रकट की कि गांधी के समय में और आज के समय में, गांधी को समझने में क्या अंतर है? मैंने जवाब दिया था- भाई उस समय गांधी जी की 'समझ' हमारी समझ थी। आज हमारी समझ 'गांधी' हैं। यानी हम जो थोड़ा-बहुत, उल्टा-सीधा गांधी को लेकर पढ़ते-सुनते हैं, उसी के आधार पर उनकी एक धारणा (राय) बना लेते हैं और उसी के आधार पर जिन्दगी भर यही ढ़ोलक पीटते हैं- कि गांधी ऐसे ही थे। उसके आगे-पीछे जाने और समझने का न तो हम अवकाश निकालते हैं और न ही इसके लिए कोई प्रयास करते हैं। गांधी के समय में गांधी जी को लोग देखते थे, सुनते थे, गुनते थे, जो जिज्ञासा होती, उन्हीं से ही पूँछ लेते और जान भी लेते थे। उनकी दैनिक जीवन-चर्या भी बहुत सी जिज्ञासाओं का समाधान स्वयं ही कर देती थी।

आज जब गांधी नहीं हैं, तब गांधी को पूर्णतः जानना एक 'रिक्तता' पैदा करता है। उन्हें याद किया जाता है, अपनाया नहीं। पहले लोग उन्हें अपनाते ज्यादा थे। अपनाने में 'याद' स्थायी हो जाती है। सिर्फ याद में 'याद' भी भूल जाती है। किन्तु गांधी की अब बहुत याद आती है। पर क्या कर सकते हैं? निराला की रचना 'कुकुरमुत्ता' बार-बार स्मृति में छाने लगती है, पर 'अब कुकुरमुत्ता उगाये नहीं उगता।' हमने अपनी मातृभूमि को अंग्रेजी पराधीनता से भले ही मुक्ति दिला दी हो लेकिन अंग्रेजियत की पराधीनता से हम आज भी मुक्त नहीं हुए और जब तक हम इससे मुक्त नहीं होंगे, तब तक हम भारत-भूमि की इस स्वर्णिम मिट्टी को जानना-समझना तो दूर, उसको देख भी नहीं पायेंगे। ऐसे में कुकुरमुत्ता का उगना तो संभव ही नहीं, उसके उगने की आशा भी हममें न रहेगी।

आज भारत का जिसे हम इतिहास कहते हैं, जो हमारे ग्रन्थों (वेद, उपनिषद्, आरण्यक- ग्रन्थ, ब्राह्मण-ग्रन्थ, पुराण, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, कुमारसंभव, रघुवंशम् आदि) में मिलता है। उसमें भारत की स्वर्णिम परम्परा की अद्भुत झांकी के दर्शन भी होते हैं। उन्हें पढ़कर हमारे मन में गौरव, गर्व एवं उत्साह की भाव-धारा हिलोरे लेने लगती हैं, इस मिट्टी के कण-कण से अगाध स्नेह के मेघ घुमड़ने लगते हैं। पर हमने समझना तो दूर पाश्चात्य की दृष्टि के आधार पर उसे बिसूरना भी शुरू कर दिया है। उसका 'अपनापन' पूरा-का-पूरा 'परायापन' में बदला जा रहा है। गांधी ने इसको समझा था, जाना था, उसे अपनाया था, उन्हें इसकी गौरवमयी परम्परा और मर्यादा का बोध था, जबकि लगभग उसी दौर के मनीषी डॉ0 अम्बेडकर को इसके प्रति कोई समझ न थी। वह पाश्चात्य के चश्मे से ही भारत को देखते रहे। पाश्चात्य की दृष्टि के आधार पर डॉ0 अम्बेडकर ने 'भारत की जाति-परम्परा' पर अपनी थीसिस लिखी, जिसका भारत के विभाजन में अंग्रेजों ने भरपूर इस्तेमाल किया और विभाजन का फायदा उठाया। गांधी इस बात को समझ रहे थे। पर करते तो क्या करते? उन्होंने तो भारतीयता के सम्पूर्ण रंगों को अपने में आत्मसात करने की कोशिश की थी, जिसमें वे काफी सफल भी हुए, चाहे वह समाज का क्षेत्र हो, राजनीति का क्षेत्र हो, संस्कृति का क्षेत्र हो, शिक्षा का क्षेत्र हो, धर्म का क्षेत्र हो, भाषा का क्षेत्र हो, चिकित्सा का क्षेत्र हो या फिर खान-पान का ही क्षेत्र क्यों न हो। सभी में वह विविध प्रयोग करते रहे हैं। इन सबके प्रति उनके अपने निजी विचार एवं अनुभव रहे हैं। कुल मिलाकर गांधी भारतीय भाव-बोध से ओत-प्रोत थे। उन्हें समझना, भारत को समझना हो गया था।

संकुचित विचार की जड़ता में बँधे लोग गांधी को समझना तो दूर उनका विरोध/प्रतिरोध भी करने लगे थे। पर भारतीय जनता का उनके प्रति अगाध विश्वास था। वह गांधी में भारत का भविष्य तलाश कर रही थी। कितना दुःखद है कि सत्ता के लोभ में गांधी से कुछ विशिष्ट लोग जुड़े क्योंकि गांधी से जुड़ना, भारतीय जनता से जुड़ना था और सत्ता हासिल होने पर गांधी तितर-बितर हो गये या कर दिए गये। किन्तु जब भी भारतीय जनता को कोई मार्मिक चोट लगती है तो वह यह कहने में पीछे नहीं रहती कि जब भारत के

लोगों ने गांधी को नहीं समझा, तो हमको क्या समझेंगे। यह बात गांधी की सशक्त 'पहचान' की द्योतक है। मन कह ही उठता है-

जमीं वालों ने जब तेरी कद्र कम कर दी मेरे बापू।
जमीं से ले गये तुझको उठा के आसमां वाले॥

अब प्रश्न उठता है कि गांधी में ऐसा क्या था, जो आकर्षित करता है। जितना भारतीयों को, उससे कहीं अधिक पाश्चात्य के लोगों को भी, वे प्रिय लगने लगे हैं। थोड़ी परेशानी वाली बात है कि जब पाश्चात्य के लोग गांधी के आधार पर भारत को समझने की कोशिश करते हैं, तब हम भी उसी तर्ज में उन्हें जानने, खासतौर से 'तलाश' करने की कोशिश में लग गये हैं। गांधी अध्ययन और शान्ति केन्द्र के बहुत से पीठ बन गये हैं। इस दौड़-भाग के समय जब लोगों के पास समय नहीं है तो शान्ति की 'तलाश' शुरू की है। भारत में पहले कभी इसकी सीखाने एवं समझाने या 'तलाश' करने की कोई आवश्यकता न थी। हर व्यक्ति शान्ति और संतोष की वृत्ति को स्वभावतः अपने में धारण कर लेता था। प्रकृति के रंग में रंग जाने के बाद उसका सम्पूर्ण विकास प्रकृति के ढंग में विस्तार पाता था। अब हमारा स्वभाव पाश्चात्य की 'लोभ' और 'व्यापार' की नीति में रमा है, तब इसका अवकाश कहाँ? फिर शान्ति की तलाश एक मानसिक और क्षणिक आवश्यकता के रूप में हमसे जुड़ गयी है। जहाँ शान्ति नहीं वहाँ आनंद कहाँ? जब आनंद नहीं तो उत्सव-धर्मिता के समस्त स्वरूप मात्र दिखावे हैं, छलावें हैं।

मानविकी के विषयों की ओर ध्यान दिया जाय तो प्रायः हम पाते हैं कि कोई ऐसा विषय नहीं शेष रहा, जिसमें गांधी को लेकर चिंतन न हुआ हो, चाहे वह साहित्य का हो, समाज का हो, राजनीति का हो, नीतिशास्त्र का हो, संस्कृति का हो, संस्कृत का हो, अर्थशास्त्र का हो, धर्म का हो, दर्शन का हो, शिक्षा का हो, अथव प्रबंधन जैसे विषयों का ही क्यों न हो। सभी क्षेत्रों में गांधी की दृष्टि एवं चिंतन पर विचार-विमर्श लगातार हो रहे हैं, और उनकी दृष्टि और चिंतन को सराहा भी जा रहा है, पर अमल वह भी नहीं कर रहे, जो उसके संवाहक बने हुए हैं। तब आम जनता से क्या उम्मीदें की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त उनको लेकर जनता में कुछ ऐसा प्रचार-प्रसार किया गया, जिससे एक 'हसोड़ी' छवि उनकी विकसित हुई। जनता के मन में आज वह छवि उनकी नहीं रही जो 1915 से लेकर 1950 तक के समय या उस पीढ़ी के लोगों में थी। प्रायः हमारे बुजुर्ग लोग यह बताते थे कि जब गांधी की हत्या की गयी, तब गाँव-गाँव, घर-घर तक में उदासी छा गयी थी। लगभग सभी गाँवों में लोगों ने खाना नहीं खाया था। बड़ों से लेकर बच्चों तक का बिलखना और रोना कई दिनों तक चलता रहा था। प्रतिदिन शोक सभाएं छोटे या बड़े स्तर पर लगातार होती रही थी। सभी जगहों में उनकी 'शवयात्रा' निकाली गयी थी एवं तेरहवीं भी कराई गयी थी। उनकी शवयात्रा का जुलूस लगभग सभी बड़े शहरों में बहुत बड़ी भीड़ के साथ निकला था। जहाँ तक नजर जाती, केवल सिर ही सिर दिखते थे। उस पीढ़ी में गांधी के प्रति जो भाव था, वह उनकी अश्रुपूरित आँखों में स्वयमेव दिख जाता है। उनसे गांधी को लेकर कोई बात करो, तो उनका मन आज भी सिसक उठता है। उसी गांधी के प्रति आज जब लोग सतही 'चुटकी' लेते हैं तो मन दुःखी हो जाता है। क्या कहें उनको, और क्या कहें इनके कर्णधारों को? ये लोग तो गांधी की बात का ध्यान ही नहीं दे सके कि- ''मानवता के लिए प्राणोत्सर्ग करने की आकांक्षा पालने से पहले भारत को जीना सीखना होगा।''[3] यह जीना कठिन संघर्षों एवं चुनौतियों के बीच सत्य की रक्षा करने से जुड़ा था।

गांधी ने अपने कर्मगत जीवन में न कभी अवकाश लिया और न किसी (जो उनसे जुड़ा था) को लेने दिया। एक बार उन्होंने कहा था- ''मेरी आँखें मूँद जाने और इस काया के भस्मीभूत हो जाने के बाद भी मेरे काम पर निर्णय देने के लिए काफी समय शेष रह जायेगा।'' शायद यह वही समय है, जब हम तमाम तरह के निर्णय गांधी को याद करते हुए लेते हैं, पर उनके काम को अपने में उतारने की जहमत नहीं उठाते। उन्हें इस बात की जानकारी ही नहीं कि- ''आग लगाने वालों को कहाँ खबर है / रूख हवाओं ने बदला तो खाक वो भी होंगे।''

गांधी जी के तीन प्रमुख अस्त्र थे, जिसमें वे लगातार प्रयोग भी करते रहे हैं। उनके नाम हैं- सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य। सत्य और अहिंसा को लेकर तो लगभग एक जैसी समझ लोगों के अन्दर मिल जाती है, लेकिन ब्रह्मचर्य की धारणा में वैचारिक मतभेद दिखाई देते हैं। कुछ का मानना है- जो विवाह कर लेता है, वह ब्रह्मचारी कहाँ रहा? और जब वह ब्रह्मचारी नहीं रहा तो वह कैसे ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है? हाल ही में मैंने एक संत के मुखार-बिंदु से सुना है कि वैवाहिक जीवन के साथ भी ब्रह्मचर्य रहा जा सकता है, अपनी पत्नी के अतिरिक्त प्रत्येक महिला को उम्र के आधार पर माँ या बहन मानकर। यही भारतीय चिंतन-धारा की 'ब्रह्मचर्य- जीवन' व्यतीत करने की मूल अवधारणा है, जिसे अपनाकर सदाचारी बना जा सकता है। सत्य के विषय में उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण बात कही थी कि- पहले मैं ईश्वर को सत्य मानता था पर अब सत्य को ही ईश्वर मानता हूँ। इसी तरह अहिंसा के संदर्भ में भी उन्होंने कहा था कि- अहिंसा मानो पूर्ण निर्दोषता है। पूर्ण अहिंसा का अर्थ है, प्राणीमात्र के प्रति दुर्भावना का अभाव।'' उस प्राणि-जगत में मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु सभी समाहित हो जाते हैं। इन सभी के साथ मनुष्यत्त्व का व्यवहार ही अहिंसा का मूलाधार है। इसी को लेकर गांधी चले थे। आवश्यकता के अनुरूप ही वस्तुओं का उपयोग उनकी दृष्टि में उचित था, उससे अधिक का गलत।

गांधी की मूल विशेषता थी कि वे 'साध्य' को उचित 'साधन' से ही प्राप्त करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि यदि हमारे साधन गलत या अहिंसक होंगे तो हमारा 'साध्य' भी पवित्र न रह पायेगा। इसीलिए वे भारत की स्वाधीनता को लेकर सत्याग्रह, सद्भाव, उपवास एवं असहयोग आदि उपक्रमों के विविध प्रयोग करते रहे हैं।

इसी कारण भगत सिंह एवं सुभाष बाबू की विचारधारा से वे असहमत रहते थे क्योंकि गांधी की चिंता स्वाधीनता के साथ स्वाधीनता-प्राप्ति के साधनों के प्रति भी अहिंसक रहना थी, जबकि ये क्रान्तिकारी 'साध्य' को ही अधिक श्रेयस्कर समझते थे, साधन चाहे कैसे ही क्यों न अपनाने पड़े? गांधी की सोच इस बात पर अधिक जोर देती थी कि- ''सत्य की बलि देकर आजादी हासिल करने से बेहतर मैं यह समझूंगा कि भारत मिट जाय।''[5]

गांधी की 'रामराज्य की परिकल्पना' भी इन्हीं सत्यनिष्ठ साधनों से निर्मित होने वाली रही है, जो तुलसी के रामराज्य के निकट ठहरती है, जिसके विषय में तुलसी बाबा ने लिखा भी है-

सब नर करहि परस्पर प्रीती। चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीती।

नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

फूलहि फलहि सदा तरु कानन। रहहि एक सँग गज पंचानन॥

ऐसे गांधी के पास हिंसा का अवकाश ही वहाँ ठहर सकता था? 'सादा जीवन उच्च विचार' की धारणा से जिसने अहिंसक भोजन को ही अपना ध्येय एवं जीवन-वृत्ति का आधार बना लिया हो, उसकी हिंसा और प्रतिस्पर्धा में अनुरक्ति असंभव हो जाती है। कहते भी हैं, 'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।' केवल इतना ही नहीं, भोजन भी आप किस सोच के साथ करते हैं, उसका भी चित्त में पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है। अब इसे वैज्ञानिक भी सत्य मानने लगे हैं।

गांधी स्वराज को लेकर बेहद चिंतित रहने वाले महापुरुष थे। उन्होंने इसकी प्रतिष्ठा के 'हिन्द स्वराज' जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिका निकाली थी। जिसमें शिक्षा से लेकर विविध समसामयिक मुद्दों एवं विषयों पर लगातार उनके विचारों की श्रृंखला मिलती है, जो आत्मोत्थान से लेकर समाजोत्थान तक के विविध परिदृश्यों की झांकी प्रस्तुत करती हैं। उनका मानना है कि- ''स्वराज एक पवित्र शब्द है। यह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ है, स्वशासन तथा आत्मनिग्रह; इसका अर्थ सब प्रकार के संयमों से मुक्ति नहीं है, जैसा कि प्रायः स्वाधीनता का अर्थ लगाया जाता है।''[6] उनकी दृढ़ धारणा थी कि ''सच्चा लोकतंत्र अथवा स्वराज झूठे, हिंसक साधनों का आश्रय लेकर कभी स्थापित नहीं किया जा सकता क्योंकि इसके प्रयोग का स्वाभाविक उपपरिणाम यह होगा कि आपको अपने हर प्रकार के विरोध को समाप्त करने के लिए दमन-चक्र चलाना होगा या विरोधियों को देश-निकाला दे देना होगा। हम इसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं कह सकते। व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल विशुद्ध अहिंसा के वातावरण में ही पल्लवित हो सकती है।''[7] इस तरह गांधी की दृष्टि भारतीय चिंतन-धारा की दृष्टि की संवाहक बनकर समग्र भारतीय चिंतन की भावधारा को नयी ऊर्जा एवं शक्ति के साथ अभिसिंचित भी करती है।

एक बात और उद्धृत करने की जरूरत है, वह है- भारत की शिक्षा-व्यवस्था का सर्वेक्षण करने के लिए 1787 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री **एडम** को भारत भेजा। सर्वेक्षण के बाद उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा- ''भारतीय शिक्षा व्यवस्था 'एक गोल्डेन ट्री' है, जब तक उसे काटा नहीं जायेगा, तब तक ब्रिटिश साम्राज्य असंभव है।'' इसी आधार पर अंग्रेजों ने ऐसी अपनी शिक्षानीति भारत में विस्तारित की कि जिसकी लपटों में हम आज भी जल रहे हैं। गांधी ने लिखा भी है- ''इस सभ्यता की चपेट में आये हुए लोग खुद की जलाई हुई आग में जल मरेंगे।'' हमें इस बात की ओर ध्यान देना होगा कि पहले इस पश्चिम की संस्कृति की आग से बचें और अपनी शिक्षा के उस 'स्वर्ण-वृक्ष' की तलाश करें, जिसकी छाँव में बैठकर शान्ति की प्रेरणा पाते थे और सत्, चित् एवं आनंद की ओर बढ़ते थे।

आज गांधी को याद करते हुए उनके निर्देशित मार्गों को अपने प्रयोगों एवं अनुभव के आधार पर परखना होगा और उसमें चलना होगा। उनके विचारों को आत्मसात करते हुए दृढ़ता से उनका पालन करना होगा और आने वाली पीढ़ी को उससे भली-भाँति अवगत कराना भी हमारा अभिलक्ष्य होना चाहिए। नहीं तो, महान वैज्ञानिक **आइन्सटीन** की बात- आने वाली पीढ़ियाँ यह विश्वास कठिनाई से करेंगी कि कोई ऐसा रक्त-मांस का व्यक्ति धरती पर विचरता था- सत्य हो जायेगी। आनेवाली पीढ़ी या तो उन्हें अजूबा की तरह देखेंगी या फिर उनको झूठी कल्पना का एक अंग मानकर, छोड़ देगी।

संदर्भ-सूची

1. गांधी का करुण रस- पं0 विद्यानिवास मिश्र, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ0 161।
2. वही।
3. यंग इण्डिया, 13-10-1931, पृ0 320।
4. वही, 04-04-1929, पृ0 107।
5. वही, 01-10-1931, पृ0 281।
6. वही, 19-03-1931, पृ0 38।
7. हरिजन, 27-05-1939, पृ0 14।

●

महात्मा गांधी के स्वतंत्रता आन्दोलन एवं राष्ट्रीयता की भावना का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्रतिफलन

*डॉ. ऋतम्भरा तिवारी**

महात्मा गांधी का भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में अविस्मरणीय योगदान है। वे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख राजनैतिक एवं आध्यात्मिक नेता थे। उनका सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने भारतीय समाज को एकजुट कर उन्हें उनके अधिकारों के लिये जागरूक किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अहिंसक आन्दोलन करने को प्रेरित किया। वे सत्याग्रह के माध्यम से अत्याचार के प्रतिकार के अग्रणी नेता थे। उनकी इस अवधारण की नींव सम्पूर्ण अहिंसा के सिद्धान्त पर रखी गयी थी। गांधी जी ने सभी परिस्थितियों में अहिंसा और सत्य का पालन किया और सभी को इनका पालन करने के लिये प्रोत्साहित भी किया।

महात्मा गांधी का राष्ट्रीय और राजनीतिक दर्शन स्वदेश प्रेम पर आधारित था। उनका स्वदेश प्रेम मानव कल्याण और विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत था। उन्हें इस बात की अत्यन्त पीड़ा थी की भारत माता दासता की शृंखला में जकड़ी हुई सिसक रही हैं। गांधी जी के इस राष्ट्रीय दर्शन का प्रभाव स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता पर भी पड़ा। मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, गोपाल शरण सिंह, श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात, ठाकुर गोपालशरण सिंह, गोपाल सिंह नेपाली आदि की कविताओं पर गांधी दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

गांधी जी के नेतृत्व में यूं तो कई छोटे-छोटे आंदोलन हुए, लेकिन कुछ ऐसे भी आंदोलन थे जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन और भारतीय समाज की दिशा बदलने का महत्वपूर्ण कार्य किया। असहयोग आंदोलन गांधी जी के नेतृत्व में चलाया जाने वाला ऐसा ही प्रथम जन आंदोलन था। सितम्बर, 1920 से फरवरी, 1920 के बीच महात्मा गांधी तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन चलाया गया, जिसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक नई जागृति प्रदान की। इसका संचालन स्वराज की माँग को लेकर किया गया था। इसका उद्देश्य सरकार के साथ सहयोग न करके सरकारी कार्यवाहियों में बाधा उत्पन्न करना था। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन शुरू करने के पीछे सबसे प्रमुख कारण था- अंग्रेजी सरकार की दमनकारी एवं कपटपूर्ण नीतियाँ। सरकार के सुधारों से जनता असंतुष्ट थी, सर्वत्र आर्थिक संकट छाया हुआ था तथा महामारी और अकाल फैला हुआ था।

जलियांवाला बाग नर संहार सहित अनेक घटनाओं के बाद गांधी जी ने अनुभव किया कि ब्रिटिश हाथों में उचित न्याय मिलने की कोई संभावना नहीं है। गांधी जी ने अंग्रेजी शासन के अत्याचारों के विरुद्ध अहिंसा को एक शस्त्र के रूप में प्रयोग किया। उन्होंने जनता को शिक्षा दी कि जब सरकार अनीति, अत्याचार और शोषण का मार्ग अपनाती है तो उसका साथ नहीं देना ही श्रेयस्कर है। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार से सहयोग को वापस लेने की योजना बनाई और उनकी इस योजना ने देश की प्रशासनिक व्यवस्था को गहरे रूप में प्रभावित किया।

महात्मा गांधी ने जनता से आग्रह किया वे स्कूलों, कॉलेजों और न्यायालयों में न जाएँ तथा कर न चुकाएँ। उन्होंने सभी को अहिंसक असहयोग का पालन करते हुए अंग्रेजी सरकार के साथ सभी संबंधों का ऐच्छिक परित्याग करने को कहा। इस प्रकार उन्होंने जनता को अहिंसक असहकारिता का मंत्र देते हुए स्वराज प्राप्ति के लिये आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की। इसकी सफल अभिव्यक्ति माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी इन काव्य पंक्तियों में की है-

''बाकी एक उपाय बचा था,

जिसकी की गांधी ने याद।

शीघ्र अहिंसक असहयोग से

मातृभूमि होवे आजाद।''[1]

गांधी जी के आह्वान पर इस आन्दोलन में किसान, मजदूर, दस्तकार, व्यापारी, व्यवसायी, कर्मचारी, पुरुष, महिलाएं, बच्चे, बूढ़े आदि सभी प्रकार के लोगों ने भाग लिया, जिससे वास्तव में यह एक जनान्दोलन में परिवर्तित हो गया। जनता ने सरकार की नीति के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। छात्रों, दुकानदारों, मजदूरों और गृहणियों ने सड़कों और गलियों में शान्तिपूर्ण सभाएं की और जुलूस निकाला। माखनलाल चतुर्वेदी लिखते हैं-

''जिससे विश्व पलट सकता है।

क्रान्ति-युक्ति जानी हमने।

आज अहिंसक असहकारिता।

करने को ठानी हमने।''[2]

---

* पूर्व सीनियर रिसर्च फेलो, कला संकाय, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस को गैर कानूनी संगठन घोषित किया गया। अपने प्रिय नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार सुनकर जनता अधीर हो उठी। राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी से तथा सरकार की दमन नीति ने जनता में विद्रोह की भावना पैदा हुयी। गांधी जी की जय, गांधी को छोड़ दो और अंग्रेजों भारत छोड़ो के नारों से आकाश गूँज उठा। सरकार ने जनता पर लाठी चार्ज किया। एक लाख से अधिक आन्दोलनकारी जेल में बंद कर दिये गये। पुरुषों को बड़ी बेरहमी से मारा गया और औरतों की इज्जत लूटी गई। लोगों की सम्पत्ति नष्ट हो गई। पन्त जी के शब्दों में-

''असहयोग आन्दोलन में अब आया वह अनिवार्य महत क्षण।
फैले गाँवों में भू-ज्वाला, धधक उठे खलिहान, खेत, वन॥''[3]

असहयोग आन्दोलन ने देश की जनता को आधुनिक राजनीति से परिचय कराया और उसमें आजादी की इच्छा जगायी। इसने यह दिखाया कि भारत की दीन-हीन जनता भी आधुनिक राष्ट्रवादी राजनीति की वाहक हो सकती है। यह पहला अवसर था जब राष्ट्रीयता ने गांवों, कस्बों, स्कूलों आदि अपने प्रभाव में ले लिया। हालाँकि इसकी उपलब्धियाँ कम थीं, लेकिन जो कुछ हासिल हुआ, वह आगामी संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायक सिद्ध हुआ। असहयोग आन्दोलन का एक प्रमुख परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता के मन में शासक से भय की भावना समाप्त हो गयी।

असहयोग आन्दोलन ने पहली बार देश की जनता को राजनीतिक मंच पर एकत्रित किया। आन्दोलन ने देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक जनता को कांग्रेस के झंडे के नीचे संगठित किया। भारतवासियों में देश प्रेम, राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हुई। इस आन्दोलन ने लोगों में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम तथा स्वाभिमान की भावना का संचार किया। लोग स्वदेशी वस्तुओं को धारण करने लगे तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने लगे। इस आन्दोलन द्वारा जनता में आत्मविश्वास, शक्ति एवं स्फूर्ति का प्रादुर्भाव हुआ।

6 अप्रैल, 1930 में गांधी जी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शुरुआत की गयी, जिसका प्रारंभ गांधी जी के प्रसिद्ध दांडी मार्च से हुआ। गांधी जी और आश्रम के 78 अन्य सदस्यों ने साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) से 384 किमी. दूर स्थित भारत के पश्चिमी तट पर स्थित एक गाँव से दांडी यात्रा आरम्भ की। उस समय किसी के द्वारा नमक बनाना गैर कानूनी था क्योंकि इस पर सरकार का एकाधिकार था। गांधी जी ने समुद्री जल के वाष्पीकरण से बने नमक को मुट्ठी में उठाकर सरकार की अवज्ञा के साथ यह प्रतिज्ञा की कि भारत देश स्वतंत्र होगा या फिर मैं इसी समुद्र के जल में अपने प्राण त्याग दूँगा। उनकी इस प्रतिज्ञा और नमक कानून की अवज्ञा के साथ ही पूरे देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रसार हो गया। नमक बनाने की घटनाएँ पूरे देश में घटित हुई और नमक बनाना लोगों द्वारा सरकारी अवज्ञा का प्रतीक बन गया। सोहनलाल द्विवेदी ने इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की है-

''या तो होगा भारत स्वतंत्र
कुछ दिवस रात के प्रहरों पर
या, शव बन कहरेगा शरीर
मेरा समुद्र की लहरों पर।''[4]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाये गए जन आन्दोलन में से एक था। इसका उद्देश्य कुछ विशिष्ट प्रकार के गैर-कानूनी कार्य सामूहिक रूप से करके ब्रिटिश सरकार को झुका देना था। ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए सख्त कदम उठाये और गांधी जी सहित अनेक कांग्रेसी नेताओं व उनके समर्थकों को जेल में डाल दिया। सरकार द्वारा जनता पर बर्बरतापूर्वक लाठी चार्ज किए गए। आन्दोलनकारियों और सरकारी सिपाहियों के बीच जगह-जगह जबर्दस्त संघर्ष हुए। इस आन्दोलन द्वारा ब्रिटिश सरकार को यह दिखा दिया गया कि भारत की जनता अब उसकी सत्ता को ठुकराने और उसकी अवज्ञा के लिए कमर कस चुकी है और उस पर काबू पाना अब मुश्किल है। कविवर गोपाल शरण सिंह लिखते हैं-

''अनुचित कानूनों की सविनय, होने लगी अवज्ञा नित्य।
सत्याग्रही मनुज होते थे, बन्दी हो होकर कृत कृत्य॥
गांधी की पवित्र पदरज से, तीर्थ बन गया कारावास।''[5]

महात्मा गांधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन की प्रेरणा अमेरिकी विचारक हेनरी डेविड थोरो से प्राप्त हुई थी। थोरो का मानना था कि संसार में स्वविवेक से बड़ा कोई कानून नहीं है। ईश्वर ने मनुष्य को ये शक्ति दी है कि वो अपने विवेक का इस्तेमाल कर सकता है। हेनरी थोरो ने कहा था- लोकतंत्र पर मेरी आस्था है, पर वोटों से चुने गये व्यक्ति स्वेच्छाचार करें मैं यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। राजसंचालन उन व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिए जिनमें मनुष्य मात्र के कल्याण की भावना और कर्तव्य-परायणता विद्यमान हो और जो उसकी पूर्ति के लिए त्याग भी कर सकते हों। हम ऐसी राज्य सत्ता के साथ कभी सहयोग नहीं करेंगे चाहे उसमे हमें कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े। थोरो का यही सिद्धांत गांधी जी के लिए सत्याग्रह का विज्ञान बना। गांधी जी ने समझ लिया कि किसी कानून की अवज्ञा नैतिक आधार पर की जा सकती है। अन्याय चाहे अपने घर में होता हो या बाहर, उसका विरोध करने से नहीं डरना चाहिए और कुछ न कर सको तो भी बुराई के साथ सहयोग तो करना ही नहीं चाहिए। बुराइयाँ चाहे राजनैतिक हों या सामाजिक, नैतिक हों या धार्मिक, जिस देश के नागरिक उनके विरुद्ध खड़े हो जाते हैं, सविनय असहयोग से उसकी शक्ति कमजोर कर देतें हैं। कमलेश''। सक्सेना ने अपनी

कविता 'आजादी कैसे मिली' में नमक सत्याग्रह का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। बापू के इस सत्याग्रह ने जन-जन के हृदय में शूरता की वह अग्नि प्रज्वलित कर दी जिसने ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ा दी। उनके शब्दों में-

''नमक बनाया बापू ने

सत्ता के प्राण लगे गलने

हृदय हृदय में लगे

शूरता के फिर अंगार जलने।''[6]

'सत्याग्रह' का मूल अर्थ है सत्य के प्रति आग्रह है। अन्याय का सर्वथा विरोध करते हुए अन्यायी के प्रति वैरभाव न रखना, सत्याग्रह का मूल लक्षण है। सत्य का पालन करते हुए निर्भयतापूर्वक मृत्य का वरण करना और जिसके विरुद्ध सत्याग्रह कर रहे हैं, उसके प्रति बैरभाव या क्रोध नहीं करना। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह में 'प्रेम' और 'अहिंसा' की महत्ता को स्वीकार करते हुए उन्हें सत्याग्रह का अनिवार्य तत्व बताया। उनका मानना था कि प्रेम द्वारा ही सत्य का आग्रह संभव है और सत्य तक पहुँचने तथा उस पर टिके रहने के लिये अहिंसा ही एकमात्र उपाय है। उनकी धारणा थी कि अहिंसा किसी को चोट न पहुँचाने की नकारात्मक वृत्तिमात्र नहीं है, बल्कि वह सक्रिय प्रेम की विधायक वृत्ति है।

सत्याग्रही केवल सत्य का ही आश्रय लेकर अपने मार्ग में अग्रसर होता है और अन्त में वह विजयी होता है। कितनी भी जटिल परिस्थितियाँ क्यों न हो वह अपने सत्य पथ पर अडिग बना रहता है। सत्याग्रही के इसी आत्मविश्वास को उद्घाटित करते हुए रघुवीर शरण मित्र लिखते हैं-

''सत्याग्रह की परिभाषा यह-सच्चे पथ पर खड़े रहो तुम

भालों की नाकों के आगे-महावज्र से अड़े रहो तुम

टूटेंगे भालो ढालो से, सत्याग्रह पूजा जायेगा,

विश्व शान्ति करी ज्योति यही है, सूरज कभी न बुझ पायेगा।''[7]

जिस प्रकार बिना पतवार के नाव आगे सही दिशा में नहीं बढ़ सकती और ना ही अपने गन्तव्य तक पहुँच सकती है उसी प्रकार से सत्याग्रह भी प्रेम, अहिंसा, न्याय और तर्क जो सत्य के मूलाधार हैं, के आग्रह के बिना सफल नहीं हो सकती। इस पर प्रकाश डालते हुए कवि ठाकुर गोपाल शरण सिंह लिखते हैं-

''प्रेम अहिंसा न्याय तर्क ही सत्य के आधार।

उसका सत्य प्रधान अंग है जैसे नौका का पतवार।''[8]

अंग्रेजों ने जिस पाशविकता से भारतीयों के स्वत्व का हनन कर उसे गुलामी की बेड़ियों में बन्दि बनाया है, उससे भारतीय जनमानस की आत्मा आहत है। महात्मा गांधी ने साम्राज्यवादियों के कैद से आजादी दिलाने के लिये भारतीय जनमानस को सत्याग्रह की ज्योति प्रदान की। अंग्रेजों ने भारतीयों, को आपस में बाँटने के लिये, उनमें आपस में विद्वेष और घृणा का जहर भरा तथा 'फूट डालो और राज करो' की कूटनीति अपनाई है। गांधी जी ने उनके इस दुर्जेय एवं विभाजनकारी नीति पर विजय प्राप्ति के लिये उन्हें प्रेम, अहिंसा, भाईचारे और सौहाद्र की युक्ति प्रदान की। कवि पन्त जी के शब्दों में-

''पशुबल की कारा से जग को

दिखलाई आत्मा की विमुक्ति

विद्वेष घृणा को लड़ने को

सिखलाई दुर्जेय प्रेम युक्ति।''[9]

गांधी जी का सन्देश है कि विनयशील और निर्भीक साधक ही सत्याग्रह के पथ पर आगे बढ़ सकता है तथा दुःख, अन्याय और अविद्या पर विजय प्राप्त कर सकता है। नरेन्द्र शर्मा की पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

''जहाँ दुःख अन्याय अविद्या, गए वहाँ करुणाकर।

विनयशील निर्भीक साधना सत्याग्रह के पथ पर।।''[10]

सरकार की दमन नीतियों का डटकर मुकाबला करने वाले सम्याग्रही समर के वह निर्भय निःशस्त्र सिपाही हैं जिन्हें ना तो किसी हथियार का भय है और ना ही गोली बारूद और तोप का। सुभद्राकुमारी चौहान, सत्याग्रहियों के मनोबल की प्रशंसा इन शब्दों में करती है-

''हमें भय नहीं संगीनों का चमक रही जो उसके हाथ।

जरा नहीं डर उन तोपों का, गरज रही जो बल के साथ।।''[11]

ऐसे ही कविवर गोपाल सिंह 'नेपाली' ने भी 'सत्याग्रह' कविता में सत्याग्रहियों के सात्विक उत्सर्ग के महत्व को व्यक्त किया है-

''है अपूर्व यह युद्ध हमारा हिंसा की न लड़ाई है,

नंगी छाती के तोपों के ऊपर विकट चढ़ाई है,

ऐसी वैसी यह न लड़ाई, महासागर मरदानों का,

जिसमें अन्त नहीं आहुति का प्राणों के बलिदानों का।''[12]

इस प्रकार 'सत्याग्रह' केवल एक प्रतिकारपद्धति ही नहीं है अपितु एक विशिष्ट जीवनपद्धति भी है, जिसके मूल में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय, निर्भयता, ब्राह्मचर्य, सर्वधर्म समभाव आदि एकादश व्रत हैं। जिसका व्यक्तिगत जीवन इन व्रतों के कारण शुद्ध नहीं है, वह सच्चा सत्याग्रही नहीं हो सकता।

सत्याग्रह में स्वयं कष्ट उठाने की बात है। सत्य का पालन करते हुए मृत्यु के वरण की बात है। सत्य और अहिंसा के पुजारी के शस्त्रागार में 'उपवास' सबसे शक्तिशाली शस्त्र है। मृत्यु पर्यन्त कष्ट सहन और इसलिए मृत्यु पर्यन्त उपवास भी, सत्याग्रही का अंतिम अस्त्र है। उपवास में आत्म मंथन, आत्म शुद्धि और नैतिक आध्यात्मिक प्रयोजन होता है। अनशन जनता को अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये तैयार करने के उद्देश्य से किया जाता है। अनशन कुछ समय के लिये भी हो सकता है और आमरण भी हो सकता है।

सत्य और अहिंसा के पुजारी गांधी जी अनशन को सारे उपाय विफल हो जाने के बाद ही अंतिम अस्त्र के रूप में उपयोग करने की बात कहते हैं। उनके अनुसार अनशन का लक्ष्य एकदम स्पष्ट और सुनिश्चित होना चाहिए। अमूर्त, दुर्बोध या एक साथ अनेक बातों को लेकर अनशन नहीं होना चाहिए। अनशन कभी भी अपने हित को पूरा करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। गांधीजी अनशन को शरीर की गतिविधियों पर मन के नियंत्रण के महत्वपूर्ण उपाय के तौर पर लेते थे। उनका कहना था कि अनशन शरीर को कठिनाइयों से गुजारते हुए हमारी भावनाओं, विचारों को शुद्ध करता है तथा सभी प्रकार के आवेगों, धक्कों तथा पीड़ाओं के सामने डटकर खड़ा होने का साहस पैदा करता है।

गांधीजी ने अनशन की शरुआत दक्षिण अफ्रीका में ही कर दी थी। भारत आने के बाद उनका पहला अनशन अहमदाबाद में कपड़ा मिल मजदूरों को संघर्ष के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से था। इसका असर हुआ और मिल प्रबंधन के खिलाफ संघर्ष आरंम्भ हुआ। इस प्रकार गांधी जी का पहला अनशन विरोधी को दबाव में लाने के लिए नहीं, लोगों को अन्याय और बेईमानी के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार करने के लक्ष्य से किया गया था। 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स के मुम्बई यात्रा का विरोध सामूहिक हिंसा में परिणत हो गया था। तब गांधीजी ने हिंसा खत्म कर शांति स्थापना के लिए तीन दिनों का अनशन किया और वह सफल रहा। उसके पश्चात 8 फरवरी 1922 को आंदोलनकारियों ने देवरिया जिले के चौरीचौरा थाने में 23 पुलिस वालों को जिंदा जला दिया। गांधी ने तत्काल आंदोलन वापसी की घोषणा की एवं पांच दिनों का अनशन किया। गांधी जी का अंतिम अनशन उनकी हत्या से 17 दिनों पूर्व 13 जनवरी 1948 को हुआ था। भारत विभाजन के समय भड़के हुए दंगों को शान्त करने के लिये उन्होंने आमरण अनशन किया और वह सफल रहा। पन्त जी के शब्दों में गांधी जी के अनशन का महत्व द्रष्टव्य है-

''आत्मशुद्धि हित अनशन व्रत में बापू जी की आस्था थी अविचल।
तृप्त स्वर्ण से निखर अग्नि में, वे भू जीवन का हरते मल॥''[13]

इस प्रकार गांधीजी का अनशन अपने देशवासियों को अंग्रेजों के जुल्म और अत्याचार के खिलाफ संघर्ष के लिये प्रेरित करने के उद्देश्य से था। यह अंग्रेजों के अत्याचार या गलत कार्यो के विरोधस्वरूप था। उनका मानना था कि अनशन के द्वारा ही उनके अंदर की हिंसा, घृणा, अपराध और पाप भावना को शान्त किया जा सकता है।

सत्याग्रह का एक क्रियात्मक रूप धरना भी है। मद्यनिषेध, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, सरकारी संस्थाओं के विरोध आदि के सन्दर्भ में गांधी जी ने धरना-प्रयोग करने की बात कही है। उनके इस उद्बोधन ने भारतवासियों को अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आवाज बुलंद कर अहिंसक विद्रोह करने को प्रेरित किया। अंग्रेजों के विरुद्ध सत्याग्रह के इस संघर्ष में स्त्री पुरुष सभी ने भाग लिया। पन्त जी लिखते हैं-

''धरना दे नारियाँ, करें सब मदिरा अस्पृश्यता निवारण।
त्याग विदेशी वस्त्र, कातबुन, हों सम्पन्न दरिद्र नारायण॥''[14]

अंग्रेजों की गुलामी से भारत को आजाद कराने के लिए 1906 में महात्मा गांधी ने स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत की। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य ब्रिटेन में बने माल का बहिष्कार करना तथा भारत में बने माल का अधिकाधिक प्रयोग करके ब्रिटेन को आर्थिक हानि पहुँचाना व भारत के लोगों के लिये रोजगार सृजन करना था। इसके तहत बापू ने देश की जनता से ब्रिटेन में बने सामान, कपड़े और मसालों का बहिष्कार करने का आह्वान किया। यह महात्मा गांधी का सबसे सफल आंदोलन था। स्वदेशी आंदोलन आजादी तक चला और इसे काफी बल मिला। इसमें गांधी जी को अरविन्द घोष, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, वीर सावरकर, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय आदि स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का पूरा सहयोग मिला। स्वदेशी आन्दोलन, महात्मा गांधी के स्वतंत्रता आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु था। उन्होंने इसे स्वराज की आत्मा भी कहा था। रघुवीर शरण मित्र गांधी जी की इस अवधारण से प्रभावित हो लिखते हैं-

''ये विलायती वस्त्र तुम्हारा, खून विलायत ले जाते हैं।
ये विलायती अन्न तुम्हारा माँस तुम्हारा घर लाते हैं।
ये विदेश के व्यापारीगण – हीरे मोती ले जाते हैं
ये विलायती चमकीले ठग, टुकड़े खा धक्के देते हैं।''[15]

गांधी जी के देशवव्यापी स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव के कारण भारतवर्ष के कोने-कोने में आश्रम खुले। लघु और कुटीर उद्योग को बढ़ावा मिला और लोगों ने श्रम के महत्व को जाना। खद्दर देश में बिकने लगा और भारत के घर-घर में विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। रघुवीर शरण मित्र लिखते हैं-

''गांधी आश्रम खुले खिला श्रम, बिकने लगा देश में खद्दर।

फँकने लगे विदेशी कपड़े, जली देश में होली घर-घर॥''[16]

महात्मा गांधी ने लघु एवं कुटीर उद्योगों को भारी उद्योगों से अधिक महत्व दिया। खादी को गांधी जी ने अपना मुख्य कार्यक्रम बनाया। लघु और कुटीर उद्योग को महत्व देने का आशय यह नहीं था कि गांधी जी औद्योगीकरण ओर यंत्रीकरण के विरोधी थे। उनका विरोध अतियंत्रीकरण से था, जो मनुष्य को अकर्मण्य और बेरोजगार बनाते हैं तथा जिन पर भारी विदेशी मुद्रा खर्च होती है। इसी कारण वे लघु एवं कुटीर उद्योग तथा श्रम की प्रतिष्ठा करते हैं और रचनात्मक कार्यो को खूब महत्व प्रदान करते हैं। यह न केवल करोड़ों लोगों को रोजगार उपलब्ध कर उनका भरण पोषण करती है अपितु तन-मन को भी स्वस्थ बनाती है। अतः गांधी जी के इस कार्यक्रम के परिणाम स्वरूप खादी, चरखे, तकली, करघे आदि का खूब प्रचलन हुआ। सुमित्रानन्दन पन्त ने इस भाव की अभिव्यक्ति अपनी इन काव्य पक्तियों में इस प्रकार की है-

''हरि ने तकली, चरखे, करघे,

जुटा, सिरी कर से संचालित,

खेला गृह उद्योग शिविर था।

स्त्री जन के जीवन विकास हित।''[7]

इस प्रकार हम देखते है कि महात्मा गांधी केवल राजनीतिक स्वतंत्रता ही नहीं चाहते थे, अपितु जनता की आर्थिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति भी चाहते थे। राष्ट्र के प्रति उनकी इस भावना को स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से सफल अभिवियक्ति दी है। देश की स्वतंत्रता के लिये भारतीय जनमानस में जागरुकता के लिये उन्होंने जिस सत्य और अहिंसा को आधार बनाकर जनान्दोलन किया उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में दिखाई देती है। मैथिली शरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, गोपाल शरण सिंह, श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, गोपाल सिंह नेपाली आदि अनेक कवियों ने गांधी जी के आदर्शो एवं उनके सिद्धान्तों को भलिप्रकार से अंगीकार करते हुए अपनी लेखनी से उनका प्रभावशाली चित्रण किया है। इन कवियों की रचनाएं आज भी हमें शक्ति एवं प्रेरणा प्रदान करती हैं। वर्तमान परिदृश्य में इन कवियों की कविताओं का और अधिक महत्व बढ़ गया है। आज देश की विषम परिस्थितियों में राष्ट्रीयता की क्रमशः क्षीण होती भावनाओं को पुष्ट करने एवं सबलता प्रदान करने की दृष्टि से उपर्युक्त कवियों की रचनाएँ अत्यन्त सार्थक एवं उपयोगी हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामधारी सिंह 'दिनकर', मन्मथनाथ गुप्त 'आज का लोकप्रिय हिन्दी कवि', राजकमल एण्ड सन्स, दिल्ली, चतुर्थ सं0, 1969, पृ0 सं0 87
2. वही
3. सुमित्रानन्दन पन्त, ग्रन्थावली-पाँच, 'लोकायतन (युग-भू)', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 43
4. सोहनलाल द्विवेदी, गांध्यायन, 'दाण्डी यात्रा', साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद, प्रथम सं0, 1970, पृ0 सं0 49
5. गोपाल शरण सिंह, 'जगदालोक', द्वितीय सर्ग, इंडियन प्रेस लि0, प्रयाग, प्रथम सं0, 1952, पृ0 सं0 44
6. कमलेश सक्सेना, 'राष्ट्र की पुकार', आजादी कैसे मिली, पृ0 सं0 4
7. रघुवीर शरण मित्र, 'जननायक', त्रयोदश सर्ग, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, चतुर्थ सं0, 1964, पृ0 सं0 330
8. ठाकुर गोपालशरण सिंह, 'जगदालोक', पंचम सर्ग, इंडियन प्रेस लि0, प्रयाग, प्रथम सं0, 1952, पृ0 सं0 87
9. सुमित्रानन्दन पन्त, 'युगपथ', भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम सं0, पृ0 सं0 56
10. नरेन्द्र शर्मा, 'रक्त चन्दन', भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम सं0, 1948, पृ0 सं0 29
11. सं0 प्रेमनारायण टण्डन, 'सरस्वती पत्रिका', अक्टूबर 1969, पृ0 सं0 29
12. गोपाल सिंह नेपाली, 'उमंग', सत्याग्रह, 1933, पृ0 सं0 203
13. सुमित्रानन्दन पन्त, 'ग्रन्थावली-लोकायतन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 109
14. सुमित्रानन्दन पन्त, ग्रन्थावली-पाँच, 'लोकायतन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 60
15. रघुवीर शरण मित्र, 'जननायक' – 12 वाँ सर्ग, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, चतुर्थ सं0, 1964, पृ0 सं0 217
16. वह, पृ0 सं0 173
17. सुमित्रानन्दन पन्त, 'लोकायतन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 70

●

राष्ट्रोत्थान : महात्मा गाँधी की पत्रकारिता

डॉ0 अभिषेक उपाध्याय एवम् प्रो. वशिष्ठ अनूप***

पत्रकारिता अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। पत्रकारिता ऐसा दर्पण है जो सच पर आधारित होता है तथा इस सच को इतिहास के अमिट पन्नों पर अंकित करते हुए भविष्य की ओर इंगित करता है।

पत्रकारिता के माध्यम से समाज में घटित घटनाओं का आदान-प्रदान प्राचीन काल से चला आ रहा है तथा भविष्य में भी चलता रहेगा। पत्रकारिता केवल सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं करती बल्कि यह परम्परा, संस्कृति, वेशभूषा, आचार-विचार बोलचाल आदि के सम्प्रेषण का भी सशक्त माध्यम है। विश्व की समस्त सूचनाओं एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान करने में पत्रकारिता की विशेष भूमिका रही है। हमारी सभ्यता और संस्कृति की प्रगति भी पत्रकारिता की उपज है।

पत्रकारिता का मूल उद्देश्य है जनहित समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, कुरीतियों, गरीबी, निरक्षरता आदि प्रवृत्तियों से पत्रकारिताा हमेशा से संघर्ष करती रही है। अपनी पत्रकारिता के माध्यम से ही, राजाराममोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महात्मा गाँधी जैसे विद्वानों एवं समाज सुधारकों ने समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को दूर किया। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में पत्रकारिता का एक अमूल्य योगदान रहा है। राष्ट्रीय एवं मानवीय मूल्यों की रक्षा देश प्रेम की भावना, स्वाधीनता संग्राम एवं मानव कल्याण में पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

महात्मा गाँधी की नजर में पत्रकारिता वैचारिक क्रान्ति का एक सशक्त माध्यम है। गाँधी स्वयं एक निपुण पत्रकार थे। महात्मा गाँधी ने अपनी पत्रकारिता की शुरूआत एक संवाददाता के रूप में की। इन्होंने राजनेता के साथ-साथ एक समर्थ संपादक के रूप में अपनी पहचान बनाई। गांधी ने पत्रकारिता के जो प्रतिमान स्थापित किए, वे आज भी पत्रकारों के लिए अनुकरणीय है।

हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में 1920 से 1947 के सम्पूर्ण काल को गाँधीयुग के नाम से जाना जाता है। इस युग की पत्रकारिता पर महात्मा गाँधी के आदर्श एवं सिद्धांतों की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, उनके विचारों से प्रभावित होकर पत्रकारों की एक नई पीढ़ी तैयार हुई। डॉ0 कमल किशोर गोयनका ने अपनी पुस्तक- 'गाँधी पत्रकारिता के प्रतिमान' में लिखते हैं- उन्होंने पत्रकारिता को व्यापार बनाना अस्वीकार किया और जनता को स्वामित्व सौंपा। इसी कारण गाँधी ने 'इण्डियन ओपिनियन' को ट्रस्ट को सौंप दिया गाँधी के इस प्रतिमान से कुछ अन्य प्रतिमान भी सामने आए जैसे व्यापारिक विज्ञापनों का बहिष्कार, कर्मचारियों को निम्नतम वेतन और ग्राहकों की संख्या घटने पर समाचार पत्र का आकार प्रकार घटना, संपादक-प्रबंधक को सेंसरशिप में कठोरतम दंड के लिए सहर्ष तैयार होना और माफी माँग कर समाचार न निकालना, स्वयं आचार संहिता बनाना और पालन करना और सर्वोपरि रूप में देश भिमान और राष्ट्रप्रेम को प्रेरणा एवं कर्म शक्ति मानकर चलाना। गाँधी की पत्रकारिता का ऐसा मॉडल था जिस पर वे स्वयं चले और भारत आकर 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', 'हरिजन' आदि ने इन्हीं प्रतिमानों एवं सिद्धांतों का प्रयोग किया और तीन दशकों तक सफल पत्रकारिता की।'[1] गाँधी जी सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले निर्भीक जननायक थे। स्वतन्त्रता आन्दोलन का यह सम्पूर्ण समय गाँधी जी के प्रभाव से सराबोर रहा। सभी क्रान्तिकारी एवं क्रान्तिकारी दल गाँधी जी के प्रति आदर भाव रखते थे।

गाँधी जी सन् 1888 ई0 में इंग्लैण्ड गये जहाँ लंदन की 'वेजीटेरियन सोसायटी' के वेजीटेरियन पत्र हेतु अनेक महत्वपूर्ण लेख लिखे जो भारत से संदर्भित थे। प्रारंभ में टेलीग्राफ, डेलीन्यूज में भारत के बारे में तथा टाइम्स ऑफ इण्डिया; 'हिन्दू' स्टेट्समैन में भारतीयों के साथ विदेशियों के व्यवहार के सम्बन्ध में गाँधी जी ने स्वतन्त्र लेखन किया।

सन् 1893 ई0 में गाँधी दक्षिण अफ्रीका पहुँचे। वहाँ भारतीयों की अपमानजनक स्थिति, रंगभेद की दुर्नीति से उनको संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने टाइम्स ऑफ इण्डिया में लिखा- ''अखबारों द्वारा प्रचार शायद हमारी हालत सुधारने का सबसे अच्छा उपाय है।''

गाँधी जी ने एक ग्रीन पैम्फलेट प्रकाशित किया जिसके द्वारा दक्षिण अफ्रीका में रहने वालों दुर्दशा की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित किया।

दक्षिण अफ्रीका गाँधी की प्रारंभिक कर्मभूमि थी। यहीं से उनकी राजनीति और पत्रकारिता दोनों पल्लवित और पुष्पित हुई। उस दौरान मद्रास स्टैण्डर्ड, हिन्दू और अमृतबाजार पत्रिका में गाँधीजी के लेख प्रकाशित होते थे।[2]

सन् 1920 के बाद भारतीय राजनीति में परिवर्तन दिखाई देने लगा। राजनीति की बागडोर अब अहिंसा के पुजारी गाँधी के

* पूर्व शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हाथों में आ गई। अहिंसा के बल पर देश की स्वाधीनता का अनोखा स्वप्न उन्होंने देखा था। पत्रकारिता गाँधी के रग-रग में समाई हुई थी। सत्य एवं न्याय की प्रतिष्ठा में अखबारों की महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य भूमिका को लक्ष्य करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था- मेरा ख्याल है कि ऐसी कोई भी लड़ाई जिसका आधार आत्मबल हो, अखबार की सहायता के बिना नहीं चलाई जा सकती। अगर मैंने अखबार निकालकर दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए भारतीय समाज को उसकी स्थिति ना समझाई होती और सारी दुनिया में फैले हुए भारतीयों को, दक्षिण अफ्रीका में क्या कुछ हो रहा है, इसे इण्डियन ओपिनियन के सहारे अवगत न कराया होताा तो मैं अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता था। इस तरह मुझे भरोसा हो गया है कि अहिंसक उपायों से सत्य की विजय के लिए अखबार एक बहुत ही महत्वपूर्ण और अनिवार्य साधन है।[3]

महात्मा गाँधी समाचार पत्र को शक्ति मानते थे। वे कहा करते थे कि, ''समाचार पत्र एक जबरदस्त शक्ति है, किन्तु जिस प्रकार निरंकुश पानी का प्रवाह गाँव के गाँव डुबो देता है और फसल को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार कलम का निरकुंश प्रवाह भी विनाश की सृष्टि करता है।

यदि ऐसा अंकुश बाहर से आता है, तो वह निरंकुशता से भी अधिक विषैला सिद्ध होता है। अंकुशा तो अन्दर का ही लाभदायक हो सकता है।

महात्मा गाँधी की पत्रकारिता अभिव्यक्ति का एक महान दर्शन है। वे घटना के सत्य की रक्षा करते साथ ही उसके दार्शनिक पहलू को भी उजागर करते थे। इसीलिए सभी क्रान्तिकारी सभी अहिंसावादी, सभी स्वदेश भक्त उनसे प्रभावित थे। समाचार पत्र समय का सजग प्रहरी राष्ट्र का संरक्षक, लोकजीवन का नियामक तथा मान्यताओं का श्रेष्ठ दर्शन गांधी की पत्रकारिता में देखने को मिलता है।

गाँधी का व्यक्तित्व विश्व मानव का व्यक्तित्व था। उन्होंने अपने कार्यों और लेखनी से समग्र मानव जाति को प्रभावित किया। अपनी पत्रकारिता में उन्होंने धर्म, विश्व प्रेम, राष्ट्र प्रेम, दर्शन समाज, शिक्षा, राष्ट्रभाषा, प्राकृतिक चिकित्सा, उद्योग आहार, अर्थ नारी समस्या, वर्गवाद, छुआछूत शासन प्रणाली हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई विश्व की एकता युद्ध शान्ति आदि सभी विषयों को गाँधी ने अभिव्यक्ति प्रदान की।

महात्मा गाँधी की प्रेरणा से देश की स्वतंत्रता के महत्व को जन-जन तक पहुँचाने के लिए अनेक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों का प्रकाशन हिन्दी में हुआ गाँधी जी ने यंग इंडिया, नवजीवन तथा हरिजन इन तीन पत्रों का संपादन करते रहे।

पत्र, लेखन चर्चा संवाद, मत, निश्चय, मत प्रकाशन और मतानुकूल वर्तनी आदि क्षेत्रों में गाँधी जी से महान संपादक इस देश में पैदा नहीं हुआ। वे किसी समस्या को सुलझा देने के लिए नहीं पकड़ते थे। समस्याएँ ढूँढना और सुलझाना, व्यावहारिक सतह पर सुलझाना उनकी जनसेवा की परम्परा का एक महान अंग बन गया था। इसलिए उनके 'यंग इंडिया', 'हरिजन' तथा 'हरिजन सेवक' में प्रकाशित होने वाले लेखों को लोग प्रकाशित होने से पहले अपने पत्रों में छाप दिया करते थे।

गांधी की नजर में समस्या अथवा घटना चाहे उड़ीसा की हो दिल्ली, बंगाल, उत्तर प्रदेश, तमिल, तेलुगु, चाहे मध्यप्रदेश की; गाँधीजी उन समस्याओं अथवा घटनाओं का अपने छोटे से साप्ताहिक में केवल उल्लेख मात्र ही नहीं करते थे, किन्तु उन पर अपना मत भी दिया करते। कई बार उनका मत परम्परागत मत से मेल नहीं खाता था किन्तु वे उस मत का खतरा उठाया करते थे।

अपनी पत्रकारिता के माध्यम से, जहाँ वे एक ओर वाइसराय को चुनौती का पत्र लिखते थे, तो दूसरी ओर लोक-जीवन के साथ विवाह, धर्म, अधर्म, हिंसा-अहिंसा, हरिजनोद्धार, खादी ग्रामोद्योग, भाषा और गौ-रक्षा आदि प्रसंगों की चर्चा करते हैं। पश्चिमी राष्ट्र और हममें से कुछ लोग इस बात पर विश्वास करते हैं कि जन जीवन के सामने जीवन की गुत्थियों को पूर्ण रूप से प्रकट नहीं किया जा सकता किन्तु गाँधी जी इसके विपरीत यह धारणा रखते थे कि जीवन की गुत्थियों को जन-जीवन से छुपाकर रखना व्यक्ति के लिए, समाज के लिए और समस्त विश्व के लिए भी एक भयंकर जोखिम आमंत्रित करता है। गाँधीजी की पत्रकारिता लोकजीवन के रंग में घुल जाती है। यदि गाँधी दर्शन की दृष्टि से देखे तो भगवान बुद्ध तथा संसार के समस्त धर्म प्रचारक अपने जमाने के महान नायक के साथ-साथ महान पत्रकार भी थे। कवियों में टिप्पणी करने वाले फक्कड़ लोगों को देखे तो कबीर और तुलसी अपने युग के महान पत्रकार थे। पत्रकार वह है जो समय के प्रवाह में अपने पैरों को डाकलर अपनी पीढ़ी की थाह ले-लेकर बताता है कि चले आओ, इस धारा के पार जाया जा सकता है और तुम्हें जाना होगा।'' गाँधी जी का प्रत्येक क्षण जीवन की समस्याओं को सुलझाने में लगा रहता था। गाँधी अपने विरोधी को पूर्ण अवसर देते थे। उस समय गाँधी का सेवक होना प्रशंसा की बात थी ही, उनका विरोधी होना भी गौरव की बात थी। जिस तरह वृक्ष अपने जीवन का रस कीचड़ में से खींचता है, उसी प्रकार गाँधी जी का पत्रकार जनजीवन की समस्याओं में से प्रार्थना तथा चिंतन में से रस ग्रहण करता था और घटनाओं को विश्वास बनाकर जनजीवन की समस्याओं में से प्रार्थना तथा चिंतन में से रस ग्रहण करता था और घटनाओं को विश्वास बनाकर जनजीवन के पास लौटते समय उन्हें हर्ष होता था।[5]

गाँधी जी सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले निर्भीक जननायक थे। स्वतन्त्रता आन्दोलन का यह महत्वपूर्ण समय गाँधी जी के प्रभाव से सराबोर रहा। विभिन्न क्रान्तिकारी दल एवं प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भी गाँधीजी के प्रति सच्चे मन से आदर भाव रखते थे। विभिन्न आन्दोलन का सटीक मार्गदर्शन एवं नेतृत्व गाँधीजी को

मिलता रहा था। अनशन, भूख हड़ताल सत्याग्रह, असहयोग जैसे अहिंसक हथियार के साथ गाँधी जी स्वतंत्रता के समय में अपराजेय योद्धा की भाँति उभरे।

गाँधी जी साध्य के प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता पर ज्यादा जोर देते थे। सत्य एवं अहिंसा कोई नई दार्शनिक या व्यावहारिक अवधारणा नहीं थी, बल्कि, बुद्ध, महावीर, नानक का ही यह मार्ग था। जिससे भारतीय जनमानस पूर्व से ही परिचित था। गांधी जी स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ-साथ ही अन्य रचनात्मक कार्यों में भी अपना योगदान दे रहे थे। इस संदर्भ में अछूतोद्धार, स्वदेशी, ग्राम्य एवं कुटीर उद्योग, हरिजन कल्याण, ग्राम सफाई जैसे कई कार्य उनके जीवन का हिस्सा था। कहते है कि गाँधीजी ने चरखा एवं सूत को घर-घर तक पहुँचाया, ग्रामीण उद्योग को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने महिलाओं से पापड़ तक बनवाये। गाँधीजी अपने विचारों को प्रकट करने के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं को माध्यम बनाते थे। गांधी जी का मानना था कि अखबार तोप एवं तलवार से ज्यादा महत्वपूर्ण हथियार है।

गाँधी जी ने 4 जून सन् 1903 में चार भाषाओं में 'इण्डियन ओपिनियन' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया जिसके एक ही अंक में हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती और तमिल भाषा में छह कालम प्रकाशित होते थे। इस पत्र का प्रकाशन डर्बन से होता था।

अफ्रीका में बसे प्रवासी भारतीयों को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने तथा उनमें सामाजिक, राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने की दृष्टि से 'इण्डियन ओपिनियन' का प्रकाशन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

भारत की सांस्कृतिक चेतना तथा परम्परा को गाँधी जी ने इस पत्र के माध्यम से उद्घाटित किया।[6]

इस पत्र के प्रथम अंक के माध्यम से गाँधी जी ने तीन उद्देश्यों को स्पष्ट किया-

(1) पत्रकारिता का पहला काम जनभावनाओं को समझना और उन्हें अभिव्यक्ति देना है।

(2) पत्रकारिता का दूसरा उद्देश्य लोगों में जरूरी भावनाओं को जागृत करना है।

(3) पत्रकारिता का तीसरा उद्देश्य निर्भीक तरीके से गड़बड़ियों को उजागर करना है।

'इण्डियन ओपनियन' गाँधी जी के लिए संयम की तालीम सिद्ध हुआ जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा कि- एक भी शब्द बिन विचारे, बिना तौले लिखा हो या किसी को केवल खुश करने के लिए लिखा हो अथवा जान-बूझकर अतिशयोक्ति की हो; ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। मेरे लिए यह अखबार संयम की तालीम सिद्ध हुआ था। मित्रों के लिए वह मेरे विचारों को जानने का माध्यम बन गया था। लेखकों को उसमें से आलोचना के लिए बहुत कम सामग्री मिल पाती थी। मैं जानता हूँ कि उसके लेख आलोचकों को अपनी कलम पर अंकुश रखने के लिए बाध्य करते थे। इस अखबार के बिना सत्याग्रह की लड़ाई चल नहीं सकती थी।

पाठक समाज इस अखबार को अपना समझकर इससे लड़ाई और दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की दशा का सही हाल जानना था। इस अखबार के द्वारा मुझे मनुष्य के रंग-बिरंगे स्वभाव का बहुत ज्ञान मिला संपादक और ग्राहक के बीच निकट का और स्वच्छ सम्बन्ध स्थापित करने की ही धारणा होने से मेरे पास हृदय खोलकर रख देने वाले पत्रों का ढेर लग जाता था। उसमें तीखे, कड़वे, मीठे, यों भाँति-भाँति के पत्र मेरे नाम आते थे। उन्हें पढ़ना उन पर विचार करना उनमें से विचारों का सार लेकर उत्तर देना- यह सब मेरे लिए शिक्षा का उत्तम साधन बन गया था। मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो इसके द्वारा मैं समाज में चल रही चर्चाओं और विचारों को सुन रहा हूँ। मैं संपादक के दायित्व को भलीभाँति समझने लगा और मुझे समाज के लोगों पर जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ; उसके कारण भविष्य में होने वाली लड़ाई संभव हो सकी; वह सुशोभित हुई और उसे शक्ति प्राप्त हुई।''[7]

गाँधी जी ने 'इंडियन ओपीनियन' में लिखा है- ''जब तक वह मेरे अधीन था उसमें लिए गए परिवर्तन मेरे जीवन में हुए परिवर्तनों का द्योतक थे। जिस तरह आज 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' मेरे जीवन के कुछ अंशों के निचोड़ है उसी तरह 'इण्डियन ओपनीयिन' था। उसमें मैं प्रति सप्ताह अपनी आत्मा उडेलता था और जिसे मैं सत्याग्रह के रूप में पहचानता था, उसे समझाने का प्रयत्न करता था। जेल के समयों को छोड़कर दस वर्षों के अर्थात् सन् 1914 तक के 'इण्डियन ओपिनियन' के शायद ही कोई अंक ऐसा होंगे जिसमें मैंने कुछ न लिखा हों।''

एक सच्चे संपादक के नाते, गाँधी जी अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करते थे; उन्होंने 'इण्डियन ओपीनियन' के विषय में लिखा है- ''इसमें मैंने एक भी शब्द बिना विचारे; बिना तौले लिखा हो, केवल किसी को खुश करने के लिए लिखा हो अथवा जान-बूझकर अतिशयोक्ति की हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता।''

गाँधी जी ने तो यहाँ तक कहा है कि मेरे लिए यह अखबार, संयम और तालीम सिद्ध हुआ था, मित्रों के लिए यह मेरे विचारों को जानने का माध्यम बन गया था। देश के कोने-कोने में घूमकर संवाददाता एक-दो खबरें ही लाता है किन्तु महात्मा गाँधी समस्त राष्ट्र का बल अपनी मुट्ठी में ले आए थे। सच्चे पत्रकार के नाते, वह लिखते थे, जिसकी जन-जीवन को आवश्यकता होती थी, वह बोलते थे जिसे बोलते समय जन-जीवन, कांपता था, वहां भुजा उठाते थे जहाँ मुकुटों और सिंहासनों के द्वारा गरीबों को भुजा उठाने से मना किया जाता था।[8]

नवजीवन का प्रकाशन जुलाई 1919 में प्रारम्भ हुआ। उस दौरान ब्रिटिश सरकार प्रेस को नियन्त्रित करने के सभी हथकण्डे अपना रही थी। ऐसे समय में गाँधी जी ने यंग इण्डिया, नवजीवन और हिन्दी नवजीवन पत्रों के नाम हरिजन रख दिया। गाँधी जी ने प्रेस को लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ होना स्वीकार किया है 'हरिजन' 27 अप्रैल 1947 में उन्होंने लिखा है कि प्रेस को लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ कहा जा सकता है। उसके शक्तिशाली होने में कोई संदेह नहीं हैं, लेकिन उस शक्ति का दुरूपयोग करना एक अपराध है। मैं स्वयं एक पत्रकार हूँ और अपने साथी पत्रकारों से अपील करता हूँ कि वे अपने उत्तरदायित्व को समझे और अपना काम करते समय केवल इस विचार को प्रश्रय दे कि सच्चाई को सामने लाना है, और उसी का पक्ष लेना है।

'हरिजन' का अंग्रेजी संस्करण हिन्दी संस्करण की अपेक्षा काफी पहले ही प्रकाशित होना शुरू हो गया। अंग्रेजी में हरिजन का प्रकाशन 11 फरवरी 1933 को घनश्याम दास विड़ला के सहयोग से हुआ। 8 मई सन् 1933 तक गाँधी जी इन पत्रों का मार्ग निर्देशन यरवदा जेल से करते रहे।

गाँधी जी ने अछूतोद्धार तथा अस्पृश्यता का विरोध इन पत्रों के माध्यम से किया। वर्धा में हरिजन के तीनों संस्करण प्रकाशित होते थे। गाँधी जी ने इन साप्ताहिकों के संदर्भ में लिखा था- ये समाचार पत्र नहीं है; विचार पत्र है; और इसमें विचार एक ही व्यक्ति के जाहिर किये जाते हैं इसलिए जब तक मैं जिन्दा हूँ, महादेव या प्यारेलाल इनमें अपनी मन की बात नहीं लिखेंगे।

इस प्रकार गाँधी के कथन से यह स्पष्ट होता है कि 'हरिजन' के तीनों संस्करण में प्रकाशित सामग्री गाँधी के विचारों का ही प्रतिनिधित्व करती थी। गाँधीजी ने 'हरिजन' के माध्यम से हरिजनोद्धार तथा ग्रामीण जन के उत्थान के लिए विशेष प्रयास किए। 24 सितम्बर 1938 के एक अंक में उन्होंने लिखा 'हरिजन' समाचार पत्र नहीं अपितु यह आम जनता का विचार-पत्र है। इसका उद्देश्य आम जनता की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करना तथा सामाजिक क्रान्ति की दिशा में चेतना उत्पन्न करना है।[9]

व्यावसायिक पत्रकारिता से दूर रहते हुए गाँधी जी ने सदा जनहित तथा मिशनरी भावना से कार्य किया। अपने पत्रों में विज्ञापन देने की प्रवृत्ति को उन्होंने कभी प्रोत्साहित नहीं किया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, शिवप्रसाद गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि अनेक ऐसे व्यक्तित्व हैं जो गाँधी जी की प्रेरणा से ही हिन्दी पत्रकारिता जगत में सम्मानित हुए है।

श्री चेलापति राव के शब्दों में- ''गाँधीजी शायद सबसे महान पत्रकार हुए है और उन्होंने जिन साप्ताहिकों को चलाया और सम्पादित किया वे सम्भवतः संसार के सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक हैं।''[10]

गाँधी जी अपने पत्रों के माध्यम से एक सजग पत्रकार के रूप में भारतीय जनमानस पर छा गए। इन पत्रों के द्वारा उन्होंने अपने विचारों को जन-समाज तक पहुँचाने का भरसक प्रयास किया। सामाजिक कुरीतियों और दूषित परम्पराओं के खिलाफ, जहाँ गाँधी जी ने पत्रकारिता के माध्यम से आवाज उठाई, वहीं भारत माता की परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए, देश में चल रहे आन्दोलनों को नेतृत्व दिया तथा सत्याग्रह, असहयोग और भारत छोड़ो आन्दोलन को सक्रियता भी प्रदान की।

गाँधीजी की पत्रकारिता पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 मनोहर प्रभाकर ने लिखा है कि 'गाँधीजी ने जितने भी पत्र संपादित किये, उनकी एक विलक्षणता यह थी कि उनकी भाषा बहुत सरल होती थी। उनका मार्ग सत्यान्वेषण का कंटकाकीर्ण पथ था। उन्होंने बड़े से बड़े संकट को मोल लेकर भी सत्य का उद्घाटन किया। किन्तु इसके साथ ही वे दूसरों के विचारों के प्रति भी बहुत सहिष्णु थे। यह उल्लेखनीय है कि गाँधी जी ने जननायक होने के नाते एक सम्पादक के रूप में बड़े संयम और उत्तरदायित्व के साथ काम किया।'[11]

भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार को गाँधी जी राष्ट्र सेवा का एक अंग मानते थे। अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को उन्होंने दुःखद माना। हिन्दी को वे राष्ट्र की वाणी मानते थे। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार हेतु उन्होंने मद्रास में 'दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना की। स्थान-स्थान पर प्रचार-सभा की स्थापना द्वारा गाँधी ने स्वाधीनता आंदोलन को गति दी। हिन्दी भाषा की वकालत करते हुए गाँधी जी ने 21 जुलाई 1927 को हिन्दी नवजीवन में लिखते हैं- भारत की तमाम भाषाओं के लिए एक लिपि का होना फायदेमंद है और वह लिपि देवनागरी हो सकती है हमें एक ऐसे भाषा या फिर सर्वमान्य लिपि की जरूरत है जो जल्दी से सीखी जा सके, और देवनगारी के समान सरल जल्दी सीखने योग्य तैयार लिपि कोई और दूसरी है ही नहीं।

महात्मा गांधी राष्ट्रभाषा हिन्दी का महत्व बड़ी शिद्दत से तथा अन्य लोगों की तुलना से बहुत पहले ही समझ लिया था यही कारण है कि उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा को लेकर लम्बे पत्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखे थे। 9 अगस्त 1942 के हरिजन सेवक में उनकी पंक्तियों से मालूम पड़ता है कि वे हिन्दुस्तानी भाषा किसे मानते थे। ''हिन्दुस्तानी वह भाषा है, जिसे हिन्दुस्तानी के शहरों एवं गाँवों के हिन्दू, मुसलमान, आदि सब बोलते हैं, और अपने कारोबार में बोलते है तथा जिसे नगरी व फारसी दोनों लिखावटों में पढ़ा लिखा जा सकता है। जिसके साहित्यिक रूप की आज हिन्दी और उर्दू के नाम से पहचाना जाता है। मुझे इसमें संदेह नहीं कि हिन्दुस्तानी अर्थात् उर्दू-हिन्दी का सही मेल-मिलाप राष्ट्रभाषा है।

महात्मा गाँधी की समस्त पत्रकारिता में, उनकी समस्त अभिव्यक्ति में एक महान दर्शन है। वे घटना के सत्य की जितनी रक्षा करते थे उतना ही उसके दार्शनिक पहलू को भी सँभाला करते थे। इसीलिए क्रांतिवादी एवं राष्ट्रवादी सभी महात्मा गाँधी के पास आकर प्राण पाते थे। गाँधीजी के विचारों का प्रभाव उस समय के सभी समाचारपत्र पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गाँधीजी स्वयं

कई पत्रों का संपादन कार्य करते रहे और उन पत्रों में गांधी जी के विचार एवं लेख नियमित रूप से प्रकाशित होते थे। इस युग की पत्रकारिता न सिर्फ राजनीतिक स्तर पर मुखर हो रही थी बल्कि भाषिक स्तर पर भी समृद्ध हो रही थी। स्थानीय मुहावरे और शब्द हिन्दी थे शामिल हो रहे थे। अनेक छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता फलित हो रही थी।

महात्मा गांधी ने जिस सत्य और अहिंसा का प्रयोग अपने राजनीतिक जीवन में किया वह पत्रकारिता में भी दृष्टिगोचर हो रहा था। दासता से मुक्ति और स्वराज की स्थापना की गूँज उस दौर के सभी समाचार पत्रों में सुनाई पड़ता है। गाँधी जी अपने युग के ऐसे नेता थे जिनका देश की समग्र चेतना पर प्रभाव था। राजनीति के साथ ही शिक्षा और साहित्य पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय संस्थाओं के संस्थापना और संगठन की ओर गांधी जी की विशेष रूचि थी। उनकी प्रेरणा और सक्रिय रूचि से अनेक राष्ट्रीय विद्या केन्द्रों की स्थापना हुई जिनमें प्रमुख है नेशनल कॉलेज कलकत्ता, पटना नेशनल कॉलेज, बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल नेशनल युनिर्विसटी, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, नेशनल मुस्लिम यूनिवर्सिटी और गुजरात विद्यापीठ। गांधी जी की पत्रकारिता, देश सेवा और जनसेवा की भावना से ओतप्रोत थी। देश में राष्ट्रीय एकता एवं स्वतंत्रता के लिए वे राष्ट्र की जनता का सामाजिक, शैक्षिणक तथा सांस्कृतिक उत्थान को आवश्यक मानते थे। शुद्ध सेवा की भावना से समाचार पत्रों का चलन गाँधी जी का उद्देश्य था।

गाँधी जी ने अपनी पत्रकारिता के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रोत्थान एवं स्वाधीनता आन्दोलन में महत्वपूर्ण कार्य किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्य अमृत पत्रिका, अगस्त 2016, पृ0 7
2. डॉ0 अर्जुन तिवारी, इतिहास निर्माता पत्रकार, पृ0 43
3. शिवकुमार गोयल : पत्रकारिता के आदर्श गाँधी जी (हिन्दी पत्रकारिता पुस्तक), पृ0 139
4. डॉ0 अर्जुन तिवारी, इतिहास निर्माता पत्रकार, पृ0 45
5. डॉ0 विनादे गोदरे, हिन्दी पत्रकारिता स्वरूप एवं संदर्भ, पृ0 53
6. गाँधी साहित्य भाग-6, पृ0 83-84
7. डॉ0 अर्जुन तिवारी, इतिहास निर्माता पत्रकार, पृ0 45
8. डॉ0 संजीव भानावत- पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम, पृ0 91, 92
9. चेलापति राव, समाचार पत्र, पृ0 177
10. डॉ0 अरविन्द जोशी, गाँधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृ0 462
11. डॉ0 अर्जुन तिवारी, इतिहास निर्माता पत्रकार, पृ0 48

●

सिन्धी कवि किशिनचन्द बेवस के काव्य पर गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव

डॉली मेघनानी एवम् प्रो. सदानन्द शाही***

किशिनचन्द बेवस सिन्ध के महान कवियों में से एक थे। इनका जन्म सिन्ध के लाड़काणा नगर में सन् 1885 ई0 में हुआ था। प्रारम्भ में ये प्राथमिक विद्यालय में अध्यापक थे, बाद में मुख्य अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। इन्होंने 16 वर्ष की आयु से ही कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं-'शेर बेवस', 'शीरीं शेर', 'मौजी गीत' और 'गुरु नानक जीवन कविता'। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं पर सूफीवादी दर्शन का प्रभाव दिखाई पड़ता है, परन्तु बाद की इनकी रचनाएँ राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत दिखाई पड़ती हैं। बेवस जी महात्मा गाँधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर दोनों से अत्यन्त प्रभावित थे। 1919 ई0 के बाद बेवस जी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी के द्वारा चलाये गये आन्दोलनों से और गाँधी जी के विचारों से अत्यन्त प्रभावित हुए जिसका प्रमाण उनकी कविताएँ हैं। 'इनकी कविता की मुख्य विशेषता है-युग-चेतना की पुकार।'[1] इन्होंने अपनी कविताओं में तत्कालीन युग की समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है।

बेवस राष्ट्रवादी कवि थे। वे पहले कवि थे जिन्होंने ऐसे राष्ट्रीय गीत तैयार किये जो स्वातंत्र्य-आंदोलन के दिनों में हर एक की जुबान पर थे।[2] सन् 1916 ई0 में गाँधी जी के विचारों से प्रभावित होकर सिंध के अनेक युवक-युवतियाँ अपनी शिक्षा छोड़कर स्वतन्त्रता-आन्दोलन में शामिल हो गये। सम्पूर्ण भारत में सिंधी ही एक ऐसी जाति है जिसने भारत की आजादी के लिए अपनी मातृभूमि का परित्याग कर दिया। वे अपने पूर्वजों की जायदाद और सम्पत्ति सब कुछ छोड़कर भारत में आकर बस गये। भारत में रहकर सिन्धी रचनाकारों ने निरन्तर अपनी लेखनी के माध्यम से देश-प्रेम की भावना और राष्ट्रीय चेतना का प्रचार-प्रसार किया।

बेवस जी के काव्य पर गाँधी जी की प्रत्येक विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। जैसे-'साबरमतीअ जो सन्तु' (साबरमती का सन्त), 'वदी दिलि' (विशाल हृदय), 'पोढ़यतु' (श्रमिक), 'हाइ हारी!' (हाय किसान), 'किथे इतिहादु' (एकता कहाँ?), 'स्त्री' (स्त्री), 'शाहूकारू' (धनवान), 'आज़ादिगी' (स्वतन्त्रता), 'ग़रीबनि जी झूपिड़ी' (गरीबों की झोपड़ी), 'नवाई' (नवीनता), 'गोठनि जो सुधारो' (ग्राम-सुधार), 'देसी हुनर' (स्वदेशी हुनर) आदि कविताओं पर हम गाँधी जी के विचारों का प्रभाव देख सकते हैं।

बेवस जी 'साबरमतीअ जो सन्तु' कविता में गाँधी जी के मुख के तेज का, उनकी सादगी का और उनके विनम्र स्वभाव का वर्णन करते हैं और यह विश्वास प्रकट करते हैं कि देश को यदि कोई आजाद करवा सकता है तो वह हैं महात्मा गाँधी। वे कविता में लिखते हैं-

जंहिंजे रूहानी रहति में आहि 'बेवसि' सादिगी,

जंहिंजे चहिरे जे चमक मां आहि ताबां ताज़िगी,

जंहिंजे ख़लिक़त में न कंहिं लइ नफ़िरती नाराज़िगी,

आहि तंहिं साबरमतीअ जे सन्त जी आज़ादिगी,

ताजु आज़ादी घुरे भारतु ढकणु तुंहिंजे हथां,

आहि हिन्दुस्तान खे अजु लादु लांगोटिये मथां।[3]

अर्थात् तुम्हारी रहन-सहन में सादगी समाई हुई है। तुम्हारे चेहरे पर ताज़गी की चमक रोशन है जिसमें मानव-जाति के लिए न घृणा है, न रोष है। उस साबरमती के सन्त की ही यह स्वतन्त्रता है। भारत आज तुम्हारे ही हाथों स्वतन्त्रता का मुकुट पहनना चाहता है। आज भारत को लँगोटी वाले पर बड़ा गर्व है।

गाँधी जी अहिंसा के पुजारी थे। वे हिंसा के बल पर स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने आम जनता के हृदय में आत्म-शक्ति को जागृत किया। समाज में लोगों के बीच एकता भाव स्थापित करने का प्रयास किया। अन्त में गाँधी जी अहिंसा का सहारा लेकर साधारण जनता के सहयोग से भारत देश को आज़ाद कराते हैं। बेवस जी 'साबरमतीअ जो सन्तु' कविता में लिखते हैं-

जोरू जिस्मानी छद, तो राज़ु रूहानी सल्यो,

ऐं अहिंसा जो नओं हथियारू हैरानी सल्यो।[4]

अर्थात् शारीरिक शक्ति का त्याग कर तुमने (गाँधी जी) आत्मिक-शक्ति का मार्ग प्रदर्शित किया और अहिंसा का आश्चर्यजनक नया अस्त्र बतलाया।

शोषण मुक्त समाज की परिकल्पना में गाँधी-दर्शन वर्गों के सहअस्तित्व पर बल देता है जिसका उद्देश्य जनहित है। बेवस जी इसी सहअस्तित्व के दर्शन से वर्ग-संघर्ष की भावना को नियंत्रित करते हैं।[5] गाँधी जी स्वयं केवल धोती धारण करते थे ताकि गरीब जनता को भी पहनने के लिए वस्त्र मिल सकें। उन्होंने दूसरों को भी

* शोध छात्रा, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

यही सन्देश दिया कि जितनी तुम्हारी जरूरत है, उतनी ही वस्तुएँ तुम अपने पास रखो, बाकी जरूरतमन्द लोगों के लिए छोड़ दो। गाँधी जी की इसी विचारधारा को हम बेवस जी के 'वदी दिलि' (विशाल हृदय) कविता में देख सकते हैं। वे लिखते हैं-

पंहिंजे शाही महिल मां, घटि जे कंदे हिक कोठिड़ी,

बे अझे मूं जहिड़े लइ, पवंदी ठही सौ झूपिड़ी,

करि तमन्ना घटि तिखेरी, तूं बि रहु मां भी रहां।[6]

अर्थात् यदि अपने विशाल प्रासाद में एक कोठरी भी खाली कर दोगे, तो वह मेरे जैसे निराश्रित के लिए एक झोपड़ी बन जाएगी। अतः अपनी तीव्र तृष्णा को जरा सीमित करो। 'तुम' भी रहो 'मैं' भी रहूँ।

गाँधी जी किसानों और श्रमिकों के प्रति गहरी सहानुभूति रखते थे। वे जीवन-पर्यन्त किसान-मजदूरों का उद्धार करते रहें। जब गाँधी जी ने भारत की परिस्थितियों का गहन अध्ययन किया तब वे किसानों और श्रमिकों की दयनीय स्थिति को देखकर अत्यन्त द्रवित हुए। उन्होंने भारतीय किसानों और मजदूरों को अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष किया। उन्होंने सबसे पहले बिहार के चम्पारण जिले में नील की खेती करने वाले किसानों पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष किया। इसके लिए गाँधी जी ने 'सत्याग्रह' का सहारा लिया और अंग्रेजों को विवश किया कि वह नील की खेती करने वाले किसानों को सुविधाएँ प्रदान करें। बेवस जी भी अपनी कविता 'हाइ हारी!' (हाय किसान) में किसानों के प्रति प्रेम व सहानुभूति का चित्रण करते हैं। वे किसानों की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए किसानों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करते हैं। वे लिखते हैं-

पंहिंजी ताकत जो जरो माणु न हारी तोखे,

फ़र्जु पालीं थो, हकनि जाण न हारी तोखे।[7]

अर्थात् हे किसान! तुम्हें अपनी शक्ति का किंचित भी बोध नहीं है। तुम अपने कर्तव्य का पालन तो करते हो लेकिन तुम्हें अपने अधिकारों का भान तक नहीं है।

गाँधी जी के अनुसार गाँव हिन्दुस्तान की शक्ति का केन्द्र है। वे भारत को गाँवों का देश मानते थे। उनके अनुसार किसी भी राष्ट्र के विकास में गाँव महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, क्योंकि राष्ट्र का विकास एक गाँव से ही शुरू होता है। इसलिए गाँधी जी गाँवों का स्वावलम्बी विकास चाहते थे। गाँवों के विकास के लिए उन्होंने गाँव की एकता और सहयोग को आवश्यक माना। गाँधी जी का मूल उद्देश्य गाँवों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को मजबूत करना एवं उन्हें शिक्षित करना था। इसी प्रकार के विचार हम बेवस जी की 'गोठनि जो सुधारो' (ग्राम-सुधार) कविता में देख सकते हैं। इस कविता में वे कहते हैं कि गाँवों की दशा सुधरने से भारत एक नये ढाँचे में ढल जायेगा, गाँवों की दशा सुधरेगी तो देश की अस्सी प्रतिशत जनता की स्थिति में सुधार होगा, क्योंकि अधिकांश जनता गाँवों में निवास करती है। गाँवों की दशा सुधरने से किसानों की दशा भी सुधरेगी। ग्राम-सुधार के माध्यम से गाँवों के लोगों की मनोवृत्ति में बदलाव कर उन्हें आज़ाद विचारों की शिक्षा दी जायेगी। वे लिखते हैं-

मन-वृत्ती ग़ुलामीअ जी हटाईंदो विद्या सां, स्वराज्य सिख्या सां,

आज़ादु ख़ियालीअ जो वजाईंदो नग़ारो-गोठनि जो सुधारो।[8]

अर्थात् ग्राम-सुधार विद्या द्वारा गुलामी की मनोवृत्ति दूर करेगा और स्वराज्य की शिक्षा द्वारा आज़ाद विचारों का नगाड़ा बजाएगा।

गाँधी जी ने चरखे के माध्यम से भारत को आर्थिक दृष्टि से मजबूत करने का प्रयास किया। उन्होंने जनता को अपने देश में ही बनायी हुई चीजों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने के लिए कहा। गाँधी के अनुसार, ''स्वराज तो अपने मन का राज है। उसकी कुँजी सत्याग्रह, आत्मबल अथवा दयाबल है। उस बल को आजमाने के लिए सब ओर से स्वदेशी को पकड़ने की जरूरत है।''[9] बेवस भी अपनी कविता 'देसी हुनर' (स्वदेशी हुनर) में इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं। वे इस कविता में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल देते हैं और भारतीयों के हुनर को प्रोत्साहित करने की बात करते हैं तथा साथ ही वे विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की भी बात करते हैं। वे लिखते हैं-

हिन्दुवास्युनि जे हुनिर खे हरि तरहि हिमिथाइबो,

पंहिंजे मुल्की माल खे ई मुल्क में वरिताइबो।[10]

अर्थात् भारतीयों की कला को हर तरफ से उत्साहित किया जायेगा। अपने देश की वस्तुओं का ही देश में प्रयोग किया जायेगा।

गाँधी जी के विचारों से प्रभावित होकर बेवस जी ने देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण कविताओं की रचना की। इस सन्दर्भ में बेवस जी की प्रथम कविता 'देश-प्रेम' को देखा जा सकता है जिसमें माताएँ अपने बालक को लोरी सुनाते हुए कहती हैं कि अपने देश की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहो क्योंकि देश की सेवा से बढ़कर और कुछ नहीं है। वे लिखते हैं-

उहे माइरू भली मुरिकनि, जे बारोतनि में लोली दियनि

त सदिके देश तां तन-मन करण जहिड़ी न बी खिज़मत

जिगिर पंहिंजा कढी दींद्यूं, मिठो ओलादु मोखींदियूं

इहाई बास बासींद्यूं त रहिजे मुल्क जी अज़मत।।[11]

अर्थात् वे माताएँ अवश्य मुस्कुराएँ जो अपने बच्चों को लोरी में यह सुनाती हैं कि देश-हित के लिए अपने तन-मन को न्यौछावर करने से बढ़कर और कोई सेवा नहीं है। वे माताएँ देश की रक्षा के

लिए अपने पुत्रों को सौंप देती हैं और यही प्रार्थना करती हैं कि हमारे देश की महानता बनी रहे अर्थात् हमारा देश सुरक्षित रहे।

जिस प्रकार से गाँधी जी ने गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी जनता को आशा की किरण दिखाई, उसी प्रकार बेवस जी ने भी अपनी राष्ट्रीय कविताओं के माध्यम से निराश जनता के हृदय में आशा का संचार किया। बेवस जी के सम्बन्ध में प्रो0 एल0एच0 अजवाणी लिखते हैं-''जब शम्मा और परवाना, गुल और बुलबुल, हुस्न यूसिफ़ और चश्म आहो, आब और ताब, नाज़ और नियाज़, बहार और शराब आदि के थोथे अलंकारों ने और बैतबाज़ी, अनुप्रासों तथा बेमानी रदीफों ने मन को दुःखी कर दिया था, तब लाड़काणा निवासी एक निर्धन अध्यापक श्री किशिनचन्द तीर्थदास खत्री ने बेवस उपनाम से, मधुर गीतों, सुन्दर भजनों द्वारा उस दूषित वायुमण्डल को शुद्ध किया और निराशा के वातावरण में आशा की झलक दिखाई।''[12]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि किशिनचन्द बेवस गाँधी जी के विचारों से अत्यन्त प्रभावित थे। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से जहाँ एक ओर गाँधी जी के स्वदेशी आन्दोलन को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर 'साबरमतीअ जो संतु' कविता में अहिंसा के महत्त्व को भी बताया। वे 'ग्राम-सुधार' कविता के माध्यम से देश के विकास हेतु गाँवों की दयनीय दशा को सुधारने की बात करते हैं। बेवस ने अपने काव्य में गाँधी जी को सन्त की उपाधि दी। एक ऐसे सन्त जिनके कार्य ईश्वरीय शक्ति से अनुप्राणित हैं। अतः बेवस जी की कविताओं से स्पष्ट है कि उन पर गाँधी जी के विचारों और आदर्शों का गहरा प्रभाव था।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1- सिंधी साहित्य जो इतिहासु : डॉ0 मुरलीधर कृष्णचन्द्र जैतली, सिन्ध वेलफेयर सोसायटी, इण्डिया, 2013, पृ0 133

2- सिन्धी साहित्य का इतिहास : लालसिंह हजारीसिंह अजवाणी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1978, पृ0 192

3- कवि-श्री माला : सम्पादक देवदत्त कुन्दाराम शर्मा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, प्रथम संस्करण 1962, पृ0 60-61

4- वही, पृ0 60-61

5- भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास : सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989, पृ0 498

6- कवि-श्री माला : सम्पादक देवदत्त कुन्दाराम शर्मा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, प्रथम संस्करण 1962, पृ0 66-67

7- वही, पृ0 74-75

8- वही, पृ0 106-107

9- हिन्द स्वराज-मोहनदास करमचन्द गाँधी, पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 2014, पृ0 108-109

10- कवि-श्री माला : सम्पादक देवदत्त कुन्दाराम शर्मा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, प्रथम संस्करण 1962, पृ0 108-109

11- वही, पृ0 28-29

12- भारतीय भाषाओ के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : सम्पादक गोपाल शर्मा, तारा विक्कू, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1974, पृ0 341

●

महात्मा गांधी एवं भारतीय संस्कृति

ज्योति सिंह एवम् डॉ. विनय कुमार***

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम, समृद्ध एवं बहुआयामी संस्कृति है जिसमें यहाँ के महान इतिहास, भूगोल, परम्परायें, प्रथायें, भाषायें, रीति, रीवाज, अध्यात्म एवं नैतिकता इत्यादि का विलक्षण चिंतनशील विरासतों का समावेश है। यह जीवन की विधि है, जो भौतिक एवं अभौतिक रूप से हमारे अन्तः स्थल में अभिव्यक्त है। संस्कृति वह सूक्ष्म संस्कार है, जिनकें माध्यम से लोग परस्पर सम्प्रेषण, चिंतन-मनन और जीवन-दर्शन के विषय में अपनी अभिवृत्तियों एवं ज्ञान को दिशा प्रदान करते हैं। यह मानव जनित मानसिक पर्यावरण से संबंध रखती है जहाँ सभी अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं। किसी भी राष्ट्र की धरोहर उसकी संस्कृति होती है जो उसकी उन्नति, प्रगति एवं गरिमा की द्योतक होती है। हमारी संस्कृति ही हमारी पहचान है। प्राचीनता, निरन्तरता, लचीलापन एवं सहिष्णुता, ग्रहणशीलता, आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय तथा अनेकता में एकता आदि भारतीय संस्कृति की अक्षुण्य एवं अमूल्य विशेषताएँ हैं जो इसे सदैव श्रेष्ठ एवं महान बनाती हैं। ऐसी महान संस्कृति को बनाए रखने में हमारे ऋषि-मुनियों तथा महात्माओं एवं विचारकों ने अपना अमूल्य योगदान समय-समय पर दिया है।

प्राचीन भारतीय चिंतको एवं मुनियों ने देश में सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक आदि क्षेत्रों में एक ऐसी परम्परा की नीव रखी जो, पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होकर अक्षुण्यता को प्राप्त कर जीवंत रही। इन्हीं चिंतकों में से थे हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी। जिन्होंने अपनी आध्यात्मिकता के गहन चिंतन एवं प्रयोग द्वारा भारतीय संस्कृति पर एक अमिट छाप छोड़ा जो कि, उनके सम्पूर्ण अवदान का सम्यक् मूल्य निर्धारित करता है। गांधी जी जैसा महापुरूष, भारत वर्ष जैसी प्राचीन सांस्कृतिक सम्पदा की पृष्ठभूमि वाले देश में ही उत्पन्न हो सकता है और अपना सर्वस्य दाव पर लगा कर अपने प्राचीनतम संस्कृति की अस्मिता की रक्षा भी कर सकता है। उनके दृढ़ निश्चय वाले नेतृत्व ने निष्प्राण हो रहे भारतीय समाज में नई शक्ति, स्फूर्ति एवं क्रांति का संचार किया। वे केवल युग पुरूष ही नहीं अपितु एक नवयुग के प्रत्यक्ष द्रष्टा भी थे।

गांधी जी ने कहा था कि हमें अपनी संस्कृति की सभी बातों का मूल्यांकन करके केवल उन्हीं बातों को ग्रहण करना चाहिए जो हमारे लिए अनुकूल और हितकर हों। गुजरात विद्यापीठ में उन्होंने कहा था कि इस विद्यापीठ का उद्देश्य प्राचीन संस्कृति को दोहराना या उसी पर आश्रित रहना नहीं है, बल्कि हमें ऐसी नई संस्कृति का निर्माण करना है जो भूत की परम्पराओं पर तो आधृत हो लेकिन बाद के समय के अनुभवों से समृद्ध हो। जो संस्कृति बाहर से भारत में आयी तथा जिन्होंने भारतीय जीवन-विधा को प्रभावित किया वे उन सबके समन्वय पर जोर देते थे। ऐसी संस्कृतियाँ जो स्वयं भारत की संस्कृति से भी प्रभावित हुयी हैं।[1]

'यंग इण्डिया' में इन्हीं बातों को बताते हुए लिखा है कि- ''मैं नही चाहता कि मेरा घर चारों ओर से दीवारों एवं खिड़कियों से घिरा रहे और मेरा दम घुटता रहे, अपितु मैं तो चाहता हूँ कि सभी देशों की संस्कृतियों की हवाएँ जितनी स्वतंत्रता से हो सकें वे बहती हुई मेरे घर में आएँ। लेकिन मैं यह कदापि नहीं चाहता कि वे मुझे बहा ले जाएँ''।[2]

गांधी जी ने एक अभिनव सांस्कृतिक क्रांति को प्रतिस्थापित किया। उनका कहना था कि जीवन-दर्शन को किसी एक श्रेणी, या वर्ग में नहीं बांधा जा सकता क्योंकि यह सम्पूर्ण मानवता के हित के लिए हैं। हमारी संस्कृति समस्त मानवता और नवयुग की चेतना शक्ति की स्वर लहर है। वे अपने जीवन की शैली से, कार्य से, पुरूषार्थ से मानव जाति को स्वयं पर विश्वास करने का एवं अडिग रहने का संदेश दिया। उनका सम्पूर्ण जीवन पराश्रित भावना तथा अस्पृश्यता, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा इत्यादि के विरूद्ध था। वे सकल समाज को एक ही मंत्र देना चाहते थे- 'अपना दीपक स्वयं बनों'। उनके कार्य का मूलाधार सत्य, अहिंसा, शांति एवं प्रेम है। उनका यह तत्वज्ञान भारतीय सांस्कृतिक चिंतन धारा की प्राचीनतम् निधि है। गांधी जी सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए अपनी संस्कृति की अखण्डता को बनाए रखने के लिए सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक आदि को सर्वोपरि बतलाया है। ये सभी तत्व उनके जीवन का गुढ़तम सार तथा प्रयोग रहे हैं जो समस्त मानव हितार्थ के लिए था। वे हैं-

सत्य एवं अहिंसा

सत्य शाश्वत एवं सार्वभौमिक मूल्य है। सत्य का आचरण करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। सत्य=सत् अर्थात् होना या अस्तित्व रखना। यह एकमात्र वास्तविकता है, जिसका अस्तित्व है। अन्तर्रात्मा के अनुसार, जो उचित हो उसे मनसा, वाचा, कर्मणानुसार आचरण ही सत्य आचरण है। सत्य मुख्यतः सभी

* शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पारस्परिक, नैतिक, धार्मिक, चिंतन का मूल रहा है परन्तु गांधी के चिंतन में 'सत्य' जीवन व्यवहार और विचार तीनों का सार्वभौम सिद्धांत रहा है। यह वह मूल्य है जो पुरूषार्थ के चारों तत्वों धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को एक अर्थ प्रदान करता है और इन्हें इन्द्रियातीत करने में सहायक होता है। यही धर्म एवं नैतिकता का मूल अधार है।[3] सत्य को सर्वोच्च मानते हुए गांधी ने 'ईश्वर को सत्य' और 'सत्य को ईश्वर' माना। वे सत्य की पूजा करते हैं, उसी को ईश्वर मानते हैं और कहते हैं कि मेरे पास सिवा सत्य के कोई दूसरा ईश्वर पूजा के योग्य नहीं है।[4] यहाँ पर ईश्वर और सत्य दोनों पर्यायवाची हैं। जो सत्य है वही ईश्वर है और जिसमें सत्य का अंश नहीं वो असत्य है। चूंकि गांधी जी पूर्णतः आध्यात्मिक व्यक्ति थे और उनके सम्पूर्ण जीवन का एकमात्र उद्देश्य आध्यात्मिक (ईश्वर) की प्राप्ति था। वे मनुष्य जीवन को निरूद्देश्य नहीं मानते थे। उनका कहना था कि वह केवल भौतिक तत्वों का संग्रह नहीं है। उसके शरीर में आत्मा का निवास है और मनुष्य का उद्देश्य उसी आत्मतत्व का साक्षात्कार करना है। आत्मसाक्षात्कार ही मोक्ष है तथा इस मोक्ष को जीवन में कर्मों के द्वारा, राष्ट्र की सेवा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अतः जीवन का उद्देश्य यदि सत्य का आत्मसाक्षात्कार है तो उसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन अहिंसा है। अहिंसा का दूसरा नाम प्रेम है और प्रेम से ही इस ईश्वर की प्राप्ति संभव है।

गांधी ने सत्य को साध्य तथा अहिंसा को साधन कहा है क्योंकि अहिंसारूपी साधन से ही सत्य रूपी लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। सत्य के पेड़ को मात्र अहिंसा के जल से ही सींचा जा सकता है तभी उसमें फल-फूल लगेगें। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।[5] अहिंसा मनसा, वाचा, कर्मणा तथा हिंसा का त्याग है। वे कहते हैं- ''अहिंसा हमारी जाति का नियम है, जैसा कि हिंसा पशुओं का नियम''। यह सत्य का प्राण है। ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह सभी अहिंसा के साधक हैं। गांधी ने स्वीकार किया कि शास्त्रों ने हमें दो बहुमूल्य वचन दिये हैं- (ग) 'अहिंसा परमो धर्मः' (ग्ग) 'सत्यानास्ति परोधर्मः'। सत्य के समान कोई धर्म नहीं और अहिंसा ही परम धर्म है, ये दो वचन हमें समस्त विहित अर्थ और काम की कुंजी प्रदान करते हैं।[6]

गांधी ने एकादश व्रत का पालन भी अहिंसा पूर्वक करने को कहा है। वे हैं- अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद, अभय, स्वधर्म, शरीर श्रम, स्वदेशी और अस्पृश्यता निवारण (समभाव)। उनका कहना है कि साधन की पवित्रता ही साध्य के औचित्य को निर्धारित करता है। सत्य एवं अहिंसा को वे ईश्वर कहते हैं। वे कहते हैं कि जब मैं अहिंसा को ढूंढता हूँ तो सत्य कहता है कि मेरे द्वारा उसे खोजो, जब मैं सत्य की तलाश करता हूँ तो अहिंसा कहती है मेरे जरिए उसे खोजो।[7] इसीलिए डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा है कि गांधी अनुचित साधन को सदैव ही घृणा की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि उससे एक तो कभी भी कार्य की सिद्धि नहीं हो पाती और दूसरे यदि कार्य सिद्धि जैसी कुछ लगे भी तो वह उस ध्येय को सिद्ध नहीं कर सकती, क्योंकि साधन की अपवित्रता के करण साध्य भी अपवित्र हो जाता है।[8] *मनुस्मृति* में भी कहा गया है- **''अहिंसामेव भूतानां कार्य श्रेयोनुशासनम्''**।[9]

आदर्श समाज (रामराज्य)

अहिंसक समाज जिसमें शक्ति, सत्ता और हिंसा का कोई स्थान प्राप्त न हो।[10] गांधी कहते हैं कि- ''मेरी कल्पना का समाज ऐसा होगा जिसमें ईश्वर और मनुष्य का निकटतम संबंध होगा, सरकार का हस्तक्षेप कम से कम होगा और आदर्श जीवन की प्राप्ति होगी। ऐसे समाज में जाति-भेद, ऊँच-नीच, वर्ग-संघर्ष, स्पर्धा, सांप्रदायिकता नहीं होगी। इनमें समानता, प्रेम, सहयोग, न्याय, स्वतंत्रता, अनुशासन, सुख और आत्मनिर्भरता होगी तथा प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना शासक होगा।[11] गांधी का कहना है कि- ''मेरी कल्पना का स्वराज्य इस संसार में और आप के अंतर में 'ईश्वरीय राज्य' अर्थात् 'राम-राज्य' की अनुभूति से कम नहीं है। मैं इस स्वप्न की प्राप्ति के लिए काम करना और मरना चाहूँगा, चाहे इसे कभी प्राप्त न कर सकूँ। उसका अर्थ है अनंत धैर्य और असीम परीक्षण। इस प्रकार से एक आदर्श समाज में चहुँओर नैतिक, अहिंसक और आध्यात्मिकता की धारा प्रवाहित होगी।

सर्वोदय

अहिंसक आदर्श समाज की कल्पना में गांधी जी ने सर्वोदय (सभी का उत्थान=उदय) को महत्व दिया है। इसमें चाहे वह मजदूर वर्ग हो या पूंजीपति सब का हित एवं प्रगति निश्चित है तथा साथ ही समाज का कोई भी व्यक्ति पीछे न छूट जाए इसका भी ध्यान रखा जाएगा। इसमें 'सर्वोदय' से बढ़कर 'अन्त्योदय' अर्थात् अंतिम व्यक्ति का उदय (कल्याण) भी समाहित होता है। न्याय के इस आदर्श का स्त्रोत उपनिषद के इस मंत्र में मिलता है। यथा-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।।[12]

गांधी जी को इस आदर्श की प्रेरणा रस्किन की पुस्तक ***'अन टू दी लास्ट'*** से मिली थी जिसका अनुवाद करके उन्होंने उसका नाम 'सर्वोदय' रखा। सर्वोदय की आधारशिला 'अद्वैत' की भावना है तथा उसकी नीति समन्वय।

स्वतंत्रता

एक आदर्श समाज की स्थापना तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र हो जिससे उसका विकास संभव हो सके। अपने कर्त्तव्य और अधिकार का ध्यान रखते हुए स्वतंत्रता का पालन हो सकता है जिसके लिए आत्म-नियंत्रण आवश्यक है।

स्वदेशी

सामाजिक हित के लिए लोगों में स्वदेशी की भावना का होना आवश्यक है। वे कहते हैं कि- ''स्वदेशी आत्मा का धर्म है,

पर वह भूल गया है आत्मा के लिए स्वदेशी का अंतिम अर्थ सारे स्थूल संबंधों से आत्यांतिक मुक्ति है। इसके लिए उसे स्वदेश निर्मित वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग ही श्रेयस्कर है। गांधी ने स्वदेशी के प्रत्यय को *भगवत्गीता* के 'स्वधर्म' के प्रत्यय से लिया है। जहाँ पर श्रीकृष्ण ने कहा है-

स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।[13]

अतः पूर्ण स्वदेशी मे किसी का द्वेष नहीं है। यह संकुचित धर्म नहीं है क्योंकि यह प्रेम और अहिंसा से पैदा हुआ धर्म है।[14] गांधी कहते हैं कि स्वदेशी एक सर्वकालीन सिद्धांत है। इसकी उपेक्षा के परिणामस्वरूप मनुष्य जाति ने अपरिमित-असीमित दुःख भोगा है। स्वदेशी का अर्थ है अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन अपने देश में किया जाए और उन्हीं का वितरण और उपभोग किया जाए।[15] गांधी जी ने इसे शाश्वत् धर्म भी कहा और बताया कि स्वदेशी यह नहीं है कि अपने गढ़ में डूब मरे, बल्कि इसका मानना है कि अपने गढ़ को सार्वजनिक समुद्र में होम करना है।[16] स्वदेशी की भावना से समाज कल्याण एवं मानवहित दोनों का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास होगा, उद्योगों की रक्षा हो सकेगी, लोगों को रोजगार प्राप्त होगा तथा साथ ही सेवाभाव का उदय होगा।[17]

वर्ण-व्यवस्था

भारत के संस्कृति को बनाये रखने में वर्ण-व्यवस्था का स्थान महत्वपूर्ण रहा है जो कि वैदिक काल से ही चला आ रहा है। परन्तु गांधी जी वर्ण-व्यवस्था को जाति से न मानकर जन्म से मानते हैं। उनका कहना है कि जाति व्यवस्था, वर्ण से पृथक है। सभी व्यक्ति समान हैं, कोई ऊँच-नीच नहीं हैं। इसीलिए वे विभिन्न जातियों के बीच सहयोग और अन्तर्जातीय विवाह को पूर्णरूपेण उचित ठहराया है। उनके अनुसार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के रूप में विभाजन, केवल मनुष्य के व्यवसाय के पेशे को दर्शाता है, न कि सामाजिक अन्तर्क्रियाओं के ऊपर किसी प्रकार का बन्धन लगता है। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान की दृष्टि से ब्राह्मण, रक्षा से क्षत्रिय, व्यवसाय से वैश्य और सेवा दृष्टि से शूद्र है।[18] सभी ईश्वर की सेवा अपने-अपने कर्मों के द्वारा पूर्ण करते हैं। उनका कहना है कि वर्ण धर्म सच्चा धर्म है इससे अनुशासन व्यवस्था बना रहता है।

पुरूषार्थ

पौरूष के अनुसार श्रम। गांधी ने वर्ण-व्यवस्था को बनाये रखने के लिए पुरूषार्थ को आवश्यक बताया है। चारों पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में से वे मोक्ष को सर्वोपरि रखते हैं। मानव जीवन के विभिन्न मूल्यों में मोक्ष (ईश्वर साक्षात्कार) को परम लक्ष्य माना है, किंतु इस अंतिम लक्ष्य को अन्य पुरूषार्थों की उपेक्षा करके नहीं अपितु उनके सम्यक् पालन के द्वारा संभव बताया है। अर्थ, काम गृहस्थ आश्रम में मनुष्य की प्रारंभिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और इसके पश्चात् वह आध्यात्मिक लक्ष्य के रूप में वानप्रस्थ आश्रम की ओर अग्रसर होता है और धर्मानुसरण करता है। धर्म ही अर्थ को एवं उचित-अनुचित, नित्यानित्य, विविध प्रकार से वर्णाश्रम-व्यवस्था को समाहित करते हुए उसे चरम लक्ष्य की ओर अग्रसारित करता है।

भाषा

भाषा भी वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है। गांधी जी ने अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही सर्वदा उपयोग किया है। गांधी ने अपनी मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के बराबर बताया है। साथ ही कहा कि, जब-तक मातृभाषा में विचार-व्यवहार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती और जब-तक वैज्ञानिक शास्त्रों का ज्ञान मातृभाषा में नहीं कराया जाता तब-तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा।

शिक्षा

गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा को समाज के लिए आवश्यक बताया है। शिक्षा का उचित उद्देश्य व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक गुणों की अभिव्यक्ति है। शिक्षा ही व्यक्तित्व का निर्माण करती है। गांधी का मानना है कि मनुष्य न तो सिर्फ बुद्धि है, न स्थूल पूंज शरीर और न ही आत्मा मात्र है। पूर्व मनुष्य बनने में इन तीनों का सस्वरित व अंचल संयोग होना अपेक्षित है।[19] नैतिक प्रगति और सामाजिक सन्तुलन के लिए साधन रूप में शिक्षा पर विशेष बल दिया है।[20] गांधी का कहना है कि- "By education I mean an all–around drawing out of the best in child and man-body, mind and spirit"[21] अच्छी शिक्षा संयम, सदाचार और चरित्र-निर्माण में है इसलिए शिक्षा का सही उद्देश्य बच्चों की सम्भावनाओं का पूर्ण विकास ही है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा को केवल जीवीकोपार्जन का साधन मात्र नहीं माना गया है अपितु उसे आध्यात्मिक जीवन की दीक्षा माना गया है जिसे हम सत्य और सद्गुण के अवगाहन में आत्मा की एक खोज भी कह सकते हैं। वस्तुतः गांधी जी शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति और समाज में मातृभूमि के प्रति सेवाभाव, सत्य-प्रेम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह (पंचशील) आदि विचारों को क्रियान्वित करना चाहते थे। उनका कहना था कि केवल वही उच्च शिक्षा है जो हमें अपने धर्म का संरक्षण करने के लिए समर्थ बनाती है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अंधानुकरण के कारण भारतीय शिक्षा में विदेशीयता की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। इससे भारत का उत्थान संभव नहीं है। माँ-बाप, आचार्य सबने प्राचीन आदर्शों और मूल्यों का परित्याग कर दिया जिसके कारण बच्चों में भी मूल्यबोध का ह्रास हो गया है।[22] गांधी जी ने शिक्षा को एक स्वतंत्र धर्म-दर्शन माना है। जिसका अर्थ साधना है, जो कि धर्म का सर्वस्य है। यह जीवन का एक अंग नहीं बल्कि इससे शिक्षा में जीवन का सर्वांग आ जाता है और आना चाहिए। इस जीवन दर्शन का जिसे साक्षात्कार हुआ है वही शिक्षा का कृषि है वही शिक्षापथ को प्रदीप्त करेगा, वही धर्मकार समाज धारण के रहस्य उसे अवगत हैं।[23]

नारी सशक्तिकरण

समाज के नव-निर्माण के विकास के लिए स्त्री-पुरूष के अधिकारों में समानता होनी चाहिए। गांधी के अनुसार मूल में स्त्री-पुरूष एक हैं उसी तरह से उनकी समस्याएँ भी एक होनी चाहिए। दोनों ही एक प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं, एक ही भावनाएँ हैं, एक की सक्रियता के बीना दूसरा जी नहीं सकता। अर्थात दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।[24] इसीलिए गांधी जी पुरूषों की भाँति स्त्रियों को भी सम्पत्ति में समान अधिकारी होने के पक्ष में हैं। पुरूषों के अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध स्त्रियों को संघर्ष करने के आवाहन के साथ पुरूषों को स्त्रियों का सम्मान और आदर करने को कहा है। उनका कहना है कि यदि आत्मा की शुद्धि द्वारा स्वराज प्राप्त करना चाहते हो तो स्त्री को हमें अपनी वासना का शिकार नहीं बनाना चाहिए क्योंकि स्त्री देवी एवं लक्ष्मी स्वरूप है अबला नहीं। स्त्री आज भी बलिदान, कष्ट सहन, नम्रता, श्रद्धा और ज्ञान की मूरत है, और इसलिए स्त्री अधिक श्रेष्ठ है।[25] अतः वे कहते हैं कि जब-तक पुरूषों के समान स्त्रियों को प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दता प्राप्त नहीं होगी तब-तक देश की उन्नति सम्भव नहीं है।[26] इस प्रकार से गांधी ने वेदों के समान माना है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं।[27]

प्रार्थना एवं उपवास

ऊँ असतो मा सद् गमय्।

तमसो मा ज्योतिर्गमय्।

मृत्योर्मा अमृतं गमय्[28]

गांधी जी पूर्णतः आध्यात्मिक एवं धार्मिक थे। उनका मानना था कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है। वह ईश्वर स्वरूप राम की निर्गुण भक्ति करते थे। राम उनके लिए नम्रता का एवं श्रद्धा, शांति का प्रतीक हैं। वे अपनी आत्म शांति एवं मन की शुद्धि के लिए उपवास एवं प्रार्थना किया करते थे, वे प्रति दिन सूर्य नमस्कार के साथ ही भजन किया करते थे। उनके दो प्रिय भजन थे-[29]

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड पराई जाणे रे।

पर दुःख उपकार करे तोपे, मन अभिमान न जाणे रे।

सकल लोक माँ महुने बंदे, निंदा न करे केनी रे।

वाच काछ मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेरी रे।।

रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम।

ईश्वर अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान।।

धर्म

गांधी ने सत्य को ही सार्वभौम और सनातन धर्म के रूप में माना है। धर्म अर्थात् जिसे धारण किया जाए। यह वह सत्य है जिसमें मानव आत्मा का विकास हो सके तथा मोक्ष प्राप्त हो सके। यह मनुष्य का स्थायी तत्व है तथा विश्व का नियमित नैतिक शासन पद्धति में विश्वास है। यह अदृष्ट है का नियामक है।

धर्म सहिष्णुता एवं समन्वय

धर्म सहिष्णुता हमें धर्मों के प्रति समभाव सिखाती है। गांधी ने धर्म सहिष्णुता का अर्थ ''सर्वधर्म समभाव'' बताया है। उनका कहना है कि अगर हम आदमी के माने हुए सभी धर्मों को अपूर्ण मानें तो फिर किसी को असमान मानने की बात नहीं रहती। सभी धर्म सच्चे हैं लेकिन अपूर्ण हैं इसलिए उनमें दोष हो सकते हैं। सर्वधर्म समभाव के सहारे धर्म समन्वय तक पहुँचा जा सकता है। समभाव से धर्मान्धता का परिष्कार होता है। गांधी ने धर्म की तुलना एक वृक्ष से की है जिसका मूल तो एक है पर पत्ते असंख्य हैं। ये सभी धर्म मौलिक रूप से धर्मरूपी वृक्ष के पत्ते हैं जिसका मूल वृक्ष है। अतः गांधी का कहना है कि हमें सभी धर्मों का आदर वैसे ही करना चाहिए जैसा हम अपने धर्म का करते हैं। सभी धर्म समान हैं, अपूर्ण हैं, इसलिए सबका सम्मान करना चाहिए तभी उन्नति संभव होगी और साम्प्रदायिकता एवं वैमनस्यता की भावना समाप्त होगी।

राष्ट्रीयता

गांधी जी एक अहिंसक राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि मेरे लिए देशप्रेम और मानवप्रेम में कोई अंतर नहीं है, दोनों एक ही हैं। यही राष्ट्रीयता की भावना ही सच्ची अन्तर्राष्ट्रीय मनोवृत्ति का विकास कर सकती है। गांधी जी ने अपने चिंतन में राष्ट्रवाद का बीजारोपण किया। उनके सपनों में, कल्पना में और व्यवहार में भारत ही केन्द्रित था। वे कहते हैं- ''भारत मेरे लिए दुनिया का सबसे प्रिय देश है, इसलिए नहीं कि वह मेरा देश है, बल्कि इसलिए कि मैंने इसमें उत्कृष्ट अच्छाई का दर्शन किया है। भारत की हर चीज मुझे आकर्षित करती है। सर्वोच्च आकांक्षायें रखने वाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब उसे भारत मे मिल सकता है। भारत अपने मूल स्वरूप में कर्मभूमि एवं धर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं''।[30] आगे कहते हैं कि ''मैं भारत से उसी तरह बंधा हुआ हूँ जिस तरह कोई बच्चा अपनी माँ की छाती से लिपटा रहता है, क्योंकि मैं महसूस करता हूँ कि वह मुझे आवश्यक पोषण देती है।''[31] इस प्रकार से उनके विचारों में सर्वस्य, देश-प्रेम, विश्वबन्धुत्व और राष्ट्रीयता के तत्व समाहित हुए हैं। वे स्पष्ट कहते हैं- The individual being free sacrifices himself for the family, the latter for the village, the village for the district, the district for the province, the province for the nation and nation for all".[32]

उपसंहार

संस्कृति और धर्म के मर्म को पहचानने वाले गांधी जी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ प्रतिमूर्ति रहे हैं। गांधी के जीवन का अमर

उद्घोष जीवन-पथ, शांति, प्रेम, त्याग और जीवन के आध्यात्मिक एवं सामाजिक मूल्यों की रक्षा में है। समय जैसे-जैसे गुजरता जायेगा गांधी के विचार उनका जीवन-दर्शन, चर्या, आचार-सहिंता भारत के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध होगी। भारतीय संस्कृति की महत्ता एवं विशेषता को व्यक्त करते हुए बापू ने लिखा ''मेरा तो यह निश्चित मत है कि दुनिया में किसी भी संस्कृति का भण्डार इतना भरा पूरा नहीं है जितना हमारी संस्कृति का''। संस्कृति मन और आत्मा का विस्तार है जिसका प्रवाह कहीं नहीं टूटता।

आधुनिक भारतीय चिंतन प्रवाह में गांधी के विचार सर्वकालिक हैं। वे भारतीय उदात्त संस्कृति एवं सामाजिक विरासत् के अग्रदूत, मानवता, तेजस्विता तथा सम्यक् प्रगति पथ के निर्देशक हैं। उनके लिए वेद, पुराण, उपनिषद एवं गीता का सारतत्व ही उनका ईश्वर तथा बुद्ध, महावीर, ईसा की करूणा ही उनकी अहिंसा और सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, पुरूषार्थ, शिक्षा, अस्पृश्यता, नारी शक्तिकरण, सर्वधर्म समन्वय, अभय, स्वदेशी एवं समावेशी आदर्श समाज निर्माण की परिकल्पना ही उनका लक्ष्य रहा है।

इस प्रकार से आज के दौर में भारत ही नहीं अपितु विश्व समुदाय को भी यह समझना होगा कि उनके सुझाये मार्ग पर चलकर ही एक समृद्ध, सशक्त, समतामूलक और सुसंस्कृत विश्व का निर्माण किया जा सकता है जो कि, भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को बनाये रखने में अक्षुण्य भूमिका अदा करती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. *यंग इण्डिया* : 17-11-1921, नवजीवन पब्लिसिंग हाउस, अहमदाबाद
2. *वही*
3. देशाई, महादेव, 1956, *महात्मा गांधी : 'एन आटोबायोग्राफी'* एवं *'द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेंट् विथ टूथ'*,नवजीवन पब्लिसिंग हाउस, अहमदाबाद, पृ0–34.
4. *हरिजन* : 22-4-1929, नवजीवन पब्लिसिंग हाउस, अहमदाबाद
5. सुमन, रामनाथ, 1965, *अहिंसा और सत्य,* उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि, वाराणसी, पृ0- 670
6. *हरिजन* : 27-7-1940
7. *यंग इण्डिया* : 4-10-1925
8. प्रसाद, डॉ0 राजेन्द्र, 1968, *गांधी जी की देन,* सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ0- 90
9. *मनुस्मृति,* 2/159
10. *हरिजन* : 26 मई 1939
11. *यंग इण्डिया* : 2-7-1931
12. *वृहदारण्यक उपनिषद*- 1/4/14
13. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।। *गीता* 3/35
14. कालेलकर, काका, 1950, *मंगल प्रभात,* हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा, पृ0- 62
15. *यंग इण्डिया* : 14-10-1920
16. *हिन्दी नवजीवन* : 2-2-1928
17. *यंग इण्डिया* : 17-6-1926
18. *गीता* /18/42,43,44
19. *हरिजन* : 8-5-1937
20. उन्नीथन, टी0 के0 एन0, 1979, *गांधी एण्ड सोशल चेंज,* रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0- 76
21. *हरिजन* : 31-7-1937
22. *नवजीवन* : 81-11-1920
23. *हिन्दी नवजीवन* : 23-1-1930
24. *हरिजन* : 24-2-1940
25. *हिन्दी नवजीवन* : 23-9-1921
26. सिंह, अमर ज्योति, 1995, *महात्मा गांधी और भारत,* बोरोनिका प्रिण्टर्स गोलाघर, वाराणसी, पृ0- 108
27. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। *मनुस्मृति* – 3/56
28. *वृहदारण्यक उपनिषद्* – 1/3/28
29. केसरी, अर्जुनदास, 1996, *गांधी : लोक दर्शन,* लोकवार्ता शोध संस्थान, सोनभद्र, पृ0- 102-05
30. महात्मा गांधी, 1960, *मेरे सपनों का भारत,* (सपा0) आर0 के0 प्रभु, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ0-1
31. *यंग इण्डिया* : 21-2-1929
32. दत्ता, डी0 एम0, 1953, द *फिलासॉफी ऑफ महात्मा गांधी,* द युनिवर्सिटी ऑफ विसकॉनसिन प्रेस, मैड्सिन, पृ0- 160

महात्मा गाँधी का शिक्षा में योगदान

नेहा गुप्ता एवम् डॉ. सुकुमार चट्टोपाध्याय***

महात्मा गाँधी एक धार्मिक एवं अहिंसा प्रिय व्यक्ति थे। इनका पूरा नाम 'मोहनदास करमचन्द गाँधी' था। महात्मा गाँधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 में गुजरात के काठियावाड़ जिले के पोरबंदर नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम 'करमचन्द गाँधी' था, जो राजकोट में दीवान थे। प्रारम्भ में गाँधी जी ने काठियावाड़ से मैट्रीकुलेशन तक की शिक्षा प्राप्त की। गाँधी जी ने 10 जून सन् 1891 में इंग्लैण्ड से वकालत की परीक्षा पास की। अप्रैल सन् 1893 को गाँधी जी कानूनी सलाहकार के रूप में दक्षिण अफ्रीका गए। अफ्रीका से वापस आने पर गाँधी जी ने विदेशी शासन का विरोध करते हुए स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया।

महात्मा गाँधी भारत एवं भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के एक प्रमुख राजनैतिक एवं आध्यात्मिक नेता थे। वे सत्याग्रह (व्यापक सविनय अवज्ञा) के माध्यम से अत्याचार के प्रतिकार के पक्षधर थे। उनकी इस अवधारणा की नींव सम्पूर्ण अहिंसा के सिद्धान्त पर रखी गयी थी। जिसने भारत को आजादी दिलाकर पूरी दुनिया में जनता के नागरिक अधिकारों एवं स्वतन्त्रता के प्रति आन्दोलन के लिये प्रेरित किया। उन्हें दुनिया में आम जनता महात्मा गाँधी के नाम से जानती है।

संस्कृत भाषा में महात्मा अथवा महान् आत्मा एक सम्मान सूचक शब्द है। गाँधी को महात्मा के नाम से सबसे पहले सन् 1915 में राजवैद्य जीवराम कालिदास ने संबोधित किया था। उन्हें बापू के नाम से भी याद किया जाता है। सुभाषचन्द्र बोस ने 6 जुलाई 1944 को रंगून रेडियो से गाँधी के नाम जारी प्रसारण में उन्हें राष्ट्रपिता कहकर सम्बोधित करते हुए आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के लिये उनका आशीर्वाद और शुभकामनाएँ माँगी थी। प्रति वर्ष 2 अक्टूबर को उनका जन्म दिन भारत में गाँधी जयंती के रूप में और पूरे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस के नाम से मनाया जाता है।

गाँधी जी सन् 1942 ई0 में स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिये जिसके परिणामस्वरूप उन्हें जेल जाना पड़ा। इससे स्वतन्त्रता की आग और भड़क गयी जिससे विवश होकर अंग्रेजों ने 15 अगस्त 1947 को भारत छोड़ दिया। भारत को आजादी तो मिल गयी परन्तु इसके साथ ही देश का विभाजन भी हो गया और चारों तरफ साम्प्रदायिक झगड़े आरम्भ हो गये। गाँधी जी ने इन झगड़ों को शान्त करने का प्रयास किया। उनकी इस नीति से खिन्न होकर 31 जनवरी सन् 1948 ई0 को नाथूराम गोड़से नामक नौजवान ने गाँधी की गोली मारकर हत्या कर दी।

महात्मा गाँधी के अनुसार- ''सच्ची शिक्षा वह है जो बालकों की आत्मिक, बौद्धिक और शारीरिक क्षमताओं को उनके अन्दर से बाहर प्रकट एवं उत्तेजित करती है।''

गाँधी जी का शिक्षा में योगदान

शिक्षा शब्द संस्कृत के शिक्ष् धातु से बना है जिसका अर्थ 'सीखना' अथवा सिखाना होता है। शिक्षा के लिए अंग्रेजी में Education शब्द है। Education शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Educatum शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'शिक्षित करना।'

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व और कृतित्व आदर्शवादी रहा है। उनका आचरण प्रयोजनवादी विचारधारा से ओतप्रोत था।

महात्मा गाँधी के शब्दों में ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा प्रौढ़ के शरीर, मन और आत्मा से है।'' उनके अपने शब्दों में ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के मन, शरीर और आत्मा के उच्चतम विकास से है।''[1]

"By education I mean an all-round drawing out of the best in child and man-Body, mind and spirit."

इस प्रकार गाँधी जी मनुष्य के शरीर, मन, हृदय और आत्मा का विकास करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने 3RS (Reading, Writing and Arithmetic) को 3H (Hand, Head and Heart) में परिवर्तित करते हुए पढ़ना-लिखना और गणित के स्थान पर हाथ, मस्तिष्क और हृदय के विकास पर अत्यधिक बल दिया है।

महात्मा गाँधी जी द्वारा शिक्षण विधि

गाँधी जी प्रचलित शिक्षण पद्धतियों तथा विधियों को दोषपूर्ण बतलाते हुए शिक्षण विधियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन चाहते थे। प्रचलित शिक्षण विधि में बालक निष्क्रिय अवस्था में रहता है और अध्यापक व्याख्यान देकर चला जाता है। इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षण पद्धति का विरोध करते हुए गाँधी जी ऐसी शिक्षण पद्धति लाना चाहते थे जिसमें बालक निष्क्रिय श्रोता न रहकर सक्रिय कार्यकर्ता, निरीक्षणकर्ता और प्रयोगकर्ता के रूप में शिक्षा प्राप्त करे।

* शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गाँधी जी शिक्षण के क्षेत्र में सबसे अधिक बल **क्राफ्ट केन्द्रित शिक्षण-विधि** पर देते थे। जिसके अनुसार क्रिया एवं अनुभव के आधार पर सीखने को बल दिया जाता है। इसके साथ-साथ गाँधी जी कथन, व्याख्यान और प्रश्नोत्तर विधि के महत्व को भी स्वीकार करते थे। साथ ही उपनिषद् एवं वेदान्त द्वारा प्रतिपादित **'श्रवण, मनन, निदिध्यासन'**[2] की विधि में भी इनका विश्वास था।

गाँधी जी के अनुसार बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वे प्रारम्भ से ही अपने माता-पिता, बड़े भाई-बहनों और शिक्षकों का अनुकरण करते हुए सीखते हैं, अतः प्रारम्भ में उन्हें इसी विधि को सिखाना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार बालक प्रारम्भ से ही कुछ न कुछ करता रहता है। आज की खेल विधि और प्रयोग विधि अपने में क्रिया विधि है। इस प्रकार गाँधी जी स्वयं करके सीखने पर बल देते थे व इसके साथ-साथ संगीत कला और हस्तकौशल की शिक्षा पर भी बल देते थे।

गाँधी जी के अनुसार बच्चे जिज्ञासु प्रवृत्ति के होते हैं। उन्हें शुरू से चीजों को जानने की इच्छा बनी रहती है। अतः इन इच्छाओं का समाधान करने हेतु सावधानी पूर्वक सक्रिय भूमिका में रहते हुए माता-पिता और शिक्षक को उनके समक्ष समस्याओं का समाधान करना चाहिए।

महात्मा गाँधी का शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में योगदान

गाँधी जी के समय साक्षरता का प्रतिशत काफी कम था। लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं थी। अतः गाँधी जी ने शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किए तथा प्रौढ शिक्षा पर बल दिया।

स्त्री शिक्षा

भारत में प्राचीन काल से ही स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किये जाने पर भी स्त्रियों की सहभागिता शिक्षा जगत में उतनी नहीं रही जितनी होनी चाहिए थी। प्राचीन काल में स्त्रियों का भी उपनयन संस्कार एवं ब्रह्मचर्य का वर्णन प्राप्त होता रहा है-

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।

अध्यापनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा॥

द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्य सद्योवध्वश्च।[3]

इस प्रकार प्राचीन काल से ही स्त्रियों को शिक्षित करने पर बल दिया गया है। स्त्री शिक्षा के पक्ष में भी गाँधी जी विचार प्रस्तुत किए हैं, उन्होंने स्त्री को विभिन्न उत्तरदायित्वों के निर्वाह के लिए शिक्षित होना परम आवश्यक माना है। अतः भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिये जाने पर भी मध्यकाल में उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। विधवाओं को विवाह करने की अनुमति नहीं थी, जिससे उनका जीवन अत्यन्त कठोर बन गया था। स्त्रियों में शिक्षा का लगभग अभाव था और वे घर से बाहर निकल कर काम नहीं करती थीं। इस प्रकार आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से उनकी स्थिति पुरुष से बहुत पिछड़ गई थी। गाँधी जी ने भारत में आकर जहाँ अन्य जनसमूह में जागृति फैलायी, वहाँ स्त्रियों के उत्थान का भी बीड़ा उठाया। उनका मानना था कि अब देश में स्त्री-पुरुष सभी को सामान्य शिक्षा अनिवार्य रूप से और विशिष्ट शिक्षा बिना किसी भेदभाव के योग्यता के आधार पर सुलभ करानी चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षा अथवा सामाजिक शिक्षा

गाँधी जी ने सबसे पहले देश में आकर यह अनुभव किया कि समाज के पुनर्निर्माण के लिए देश के प्रौढों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना आवश्यक है। इसलिए उन्होंने नगर के युवक-युवतियों को गाँव-गाँव में जाकर लोगों में से अविद्या के अन्धकार को मिटाने का आदेश दिया। उन्होंने प्रौढ शिक्षा आन्दोलन को व्यापक राजनैतिक आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण भाग बना दिया। साबरमती और सेवाग्राम आश्रमों में आने वाले देश के सैकड़ों हजारों लोगों ने दूर-दूर तक प्रौढ शिक्षा फैलाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया। बुनियादी शिक्षा में बालक-बालिकाओं में कोई अन्तर नहीं किया गया और दोनों के लिए एक-सी शिक्षा का ही विधान है।

सह-शिक्षा के विषय में गाँधी जी यह निश्चय नहीं कर सके कि बालक-बालिकाओं के लिए यह कहाँ तक उपयुक्त है। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं जो प्रयोग किये थे, उनके परिणाम अच्छे नहीं आये थे। फिर भी वे इस सम्बन्ध में उन्मुक्त मस्तिष्क रखते थे। उनका कहना था कि आठ वर्ष की आयु तक बालक-बालिकाओं को साथ पढ़ने दिया जा सकता है। इसके बाद वे 16 वर्ष की आयु तक सह-शिक्षा की सम्भावना मानने लगे जिसके पश्चात् युवक-युवतियाँ स्वयं यह निश्चित करेंगे कि वे किस प्रकार के विद्यालय में पढ़ना चाहते हैं।

बुनियादी शिक्षा

बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में भी गाँधी जी का महत्वपूर्ण योगदान है। उनका विचार था शिक्षा का उद्देश्य शरीर आत्मा व मस्तिष्क का समन्वित विकास है और इस दृष्टि से वे अंग्रेजों द्वारा भारत में स्थापित शिक्षा पद्धति को बहुत अधिक दोषपूर्ण मानते थे। उनका विचार था कि यह पद्धति युवकों के शारीरिक, बौद्धिक या आत्मिक किसी भी प्रकार का विकास करने में असमर्थ है। शिक्षा का माध्यम विदेशी होने के कारण विद्यार्थियों का और अहित होता है।

देश की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए उनके द्वारा एक नवीन शिक्षा प्रणाली का सुझाव दिया गया जो 'बुनियादी शिक्षा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस शिक्षा के अन्तर्गत प्रत्येक विद्यार्थी को मूलरूप में कोई न कोई दस्तकारी सिखायी जानी चाहिए और सब विषयों की शिक्षा उस दस्तकारी के द्वारा दी जानी चाहिए, जिसे

सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त कहते हैं। इस शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो तथा यह शिक्षा स्वावलम्बी हो। गाँधीजी द्वारा शिक्षा में चरित्र निर्माण पर बहुत अधिक बल दिया गया था।

बेसिक शिक्षा

बेसिक शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा प्रणाली से है, जो बालकों को पुस्तकीय और व्यावहारिक शिक्षा से हटाकर एक मूलोद्योग पर आधारित व्यावहारिक और सर्वांगीण विकास की शिक्षा देती है। बेसिक शिक्षा बुनियादी है, अर्थात् वह बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित है। ये बुनियादी सिद्धान्त हैं- निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा, स्वावलम्बी शिक्षा, जीवन से सम्बन्धित शिक्षा और हस्तकौशल पर आधारित शिक्षा। बुनियादी शिक्षा व्यक्ति और समाज के बुनियादी घनिष्ठ सम्बन्धों पर आधारित है इसलिये वह जहाँ व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाती है, वहीं समाज को भी स्वावलम्बी बनाती है। इस प्रकार वह वयक्तिगत शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक शिक्षा भी है। सन् 1955 में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित Understanding of Education में बेसिक शिक्षा को स्पष्ट करते हुये लिखा गया है- **''बेसिक स्कूल में व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वतन्त्रता की क्रियायें सबसे प्रमुख मानी जाती हैं।''**[4]

राष्ट्रीय शिक्षा योजना

सन् 1920 से गाँधी जी ने गुजरात विद्यापीठ के रूप में शिक्षा के एक बड़े प्रयोग का उत्पादन किया। गुजरात विद्यापीठ का आदर्श **'सा विद्या या विमुक्तये'**[5] **था।** सन् 1921 में गाँधी जी ने **'यंग इण्डिया'** में राष्ट्रीय शिक्षा के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए। 1 सितम्बर 1921 के यंग इण्डिया में गाँधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा की निम्नलिखित योजना प्रस्तुत की- मेरी राय में शिक्षा की वर्तमान पद्धति एक अत्यधिक अन्यायी सरकार से सम्पर्क रखने के अतिरिक्त तीन मुख्य विषयों में दोषपूर्ण है :

1. वह देशी संस्कृति की पूर्ण अवहेलना करते हुये विदेशी संस्कृति पर आधारित है।
2. हृदय और हाथ की संस्कृति की अवहेलना करती है और पूरी तरह से केवल मस्तिष्क में सीमित है।
3. वह एक विदेशी माध्यम द्वारा दी जाती है।

यौन शिक्षा

सन् 1936 में गाँधी जी ने 21 नवम्बर के 'हरिजन' में यौन शिक्षा के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए जो कि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा 'यौन विज्ञान' दो प्रकार का होता है : एक वह, जो कि यौन प्रेरणा के नियन्त्रण और विजय के लिए प्रयोग होता है और दूसरा वह जो कि उसे उत्तेजित और सन्तुष्ट करने के लिए प्रयोग किया जाता है। पहले प्रकार में प्रशिक्षण बालक की शिक्षा का अनिवार्य अंग है, वहीं दूसरे प्रकार में प्रशिक्षण बालक के लिए हानिकारक और खतरनाक है। अतः उनका मानना था कि यौन शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए जिससे बालक-बालिकाओं में इसके प्रति संशयात्मक भावना का अंत हो सके और वे शिक्षा में ध्यान केन्द्रित कर सकें।

वर्धा शिक्षा योजना

23 अक्टूबर सन् 1937 में वर्धा में मारवाड़ी राष्ट्रीय हाईस्कूल में आयोजित शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुये गाँधी जी ने कहा था- ''मेरी शिक्षा योजना का तात्पर्य यह नहीं है कि बालक पढ़ाई के साथ-साथ धन्धों को सीखें बल्कि तात्पर्य यह है कि बालकों को जो ज्ञान दिया जाय, वह किसी उद्योग अथवा दस्तकारी द्वारा ही दिया जाए।'' दस्तकारी के उद्देय को समझाते हुए गाँधी जी ने कहा ''मेरा उद्देश्य तो उद्योग या दस्तकारी द्वारा बालक के मस्तिष्क को सुन्दर बनाना है।'' इस सम्मेलन में बेसिक शिक्षा की नींव डाली गई। इसलिए यह बेसिक शिक्षा वर्धा शिक्षा योजना भी कहलाती है।

वर्धा सम्मेलन में सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किए गए-

(1) निःशुल्क शिक्षा

(2) मातृभाषा माध्यम आधारित शिक्षा

(3) हस्तकला पर आधारित शिक्षा

(4) स्वावलम्बी शिक्षा

गाँधी जी के उपर्युक्त शिक्षा सम्बन्धी विचार सन् 1931 में ही समस्त ब्रिटेन के अध्यापकों को ज्ञात हो गए थे। "The Teacher's World" नामक पत्रिका से साक्षात्कार में उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किए। इन विचारों में उन्होंने शिक्षा में प्रेम, अहिंसा, क्षमा, आध्यात्मिक शक्ति, परिश्रम तथा अध्यापकों और माता-पिता द्वारा उच्च आदर्श उपस्थित किए जाने पर जोर दिया।

उपर्युक्त लम्बे वक्तव्य से स्पष्ट है कि गाँधीजी विद्यालयों के परिश्रम के द्वारा बालकों को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। वे साहित्यिक शिक्षा के साथ-साथ औद्योगिक प्रशिक्षण देने का समर्थन करते थे। जहाँ एक ओर वे शिक्षा को निःशुल्क बनाना चाहते थे, वहीं दूसरी ओर यह भी जरूरी समझते थे कि विद्यार्थी अपने परिश्रम के रूप में शिक्षा का शुल्क अदा करें। क्योंकि मुफ्त की शिक्षा कभी भी उपयुक्त नहीं हो सकती। गाँधी जी ने भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति के लिए जिस एकादश व्रत के पालन की शिक्षा दी है और सत्य एवं अहिंसा पर आधारित जो शिक्षा योजना प्रस्तुत की है वह भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि पर ही तैयार की गई है, वह हर दृष्टि से भारतीय दर्शन पर आधारित है।

संदर्भ सूची

1. पचौरी, डॉ0 गिरीश, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, लायक बुक डिपो, मेरठ।
2. वेदान्तसार, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई।
3. देवणभट्ट, स्मृति चन्द्रिका, प्रथम भाग, नाग प्रकाशन, वर्ष 1988, पृ0 14
4. Understanding of Education, Govt. of India, 1955.
5. यजुर्वेद, 40/14

●

गाँधी-मल्हार

वेद प्रकाश मिश्र एवम् प्रो. वी. बालाजी***

नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने 6 जुलाई सन् 1944 को रंगून रेडियो से जिन्हें राष्ट्रपिता एंव राजवैद्य जीवराम कालीदास ने 1915 में जिन्हें महात्मा कहकर संबोधित किया, सत्य और अहिंसा के पालक, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, उस महान विभूती मोहनदास करमचन्द्र गाँधी का जन्म गुजरात के पोरबन्दर में 02 अक्टूबर सन् 1869 को हुआ। आपके पिता का नाम श्री करमचंद्र गाँधी (ब्रिटिस सरकार के अधीन गुजरात के पोरबंदर रियासत के प्रधानमंत्री) एवं माता का नाम पुतलीबाई था। सन् 1887 में अल्फ्रेड हाईस्कूल राजकोट से पढ़ाई कर तत्पश्चात इनर युनिवर्सिटी कॉलेज लन्दन से आपने वकालत की पढ़ाई 1891 में पूर्ण की। अल्पायु में ही आपका विवाह कस्तूरबा जी से हो गया उस समय आपकी उम्र 13 वर्ष थी। दक्षिण अफ्रिका में भारतीयों के प्रति हो रहे भेद-भाव, कठिनाई एवं अपमान ने आपको झकझोर कर रख दिया और सन् 1916 में आप भारत वापस आगये और अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतन्त्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गये। आपने सन् 1918 में चंपारण और खेड़ा सत्याग्रह आन्दोलन तत्पश्चात 1919 में खिलाफ़त आन्दोलन, 1920 में असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, सन् 1930 में डॉडी यात्रा, 1931 में इरविन समझौता, हरिजन आन्दोलन, 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन जैसे अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपनी अमूल्य योगदान से भारत के इतिहास में सदैव के लिये अमरत्व प्राप्त किया। 30 जनवरी सन् 1948 नाथूराम गोडसे ने बिड़ला भवन में गोली मारकर हत्या कर दी। महात्मा गाँधी जी के करो या मरो, अहिंसा परमो धर्मः, 'बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत कहो', सादा जीवन उच्च विचार जैसे अनेक सुविचार मानव जीवन और समाज के लिये एक महत्वपूर्ण मार्ग प्रसस्त करते हैं और हमें बापू के जीवन और व्यक्तित्व को समझने में सहायता प्रदान करते हैं और हमेशा सत्य, अहिंसा के पथ पर चलने के लिये प्रेरित करते हैं।

महात्मा गाँधी के सिद्धांतों में चार प्रमुख हैं। जिनमें सत्य, अहिंसा, शाकाहार व ब्रम्हचर्य महत्वपूर्ण हैं। आपने अपनी आत्मकथा का नाम भी 'सत्य के प्रयोग' रखा। आपका शान्त, धैर्यपूर्ण, सादा व परोपकारी जीवन निश्चित ही भारतीय सभ्यता के लिये प्रेरणास्रोत है। आपके व्यक्तित्व व चरित्र ने निश्चित ही समाज के प्रत्येक क्षेत्र जैसे- कला, शिक्षा, समाज सेवा, राजनीति इत्यादि पर व्यापक प्रभाव डाला है। भारत का बच्चा-बच्चा आपके योगदान को पढ़कर उससे प्रेरणा प्राप्त करता है। इसी प्रकार कला जगत में एक महान गायक, वाग्गेयकार पद्मविभूषण पं0 कुमार गंधर्व को जब आपके जन्मशताब्दि पर कुछ प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हुआ तो स्वाभाविक ही था कि उन्होंने इस पावन अवसर पर उन्हें नवनिर्मित राग से स्वरांजलि अर्पित करने की इच्छा व्यक्त की और इसके लिये शताब्दी समिति के सदस्यों ने पं0 कुमार गंधर्व का नवीन राग की रचना का सुझाव स्वीकार किया।

महात्मा गाँधी के महान और अत्यन्त समृद्ध ऐतिहासिक जीवन चरित्र को जानना और उस पर नवीन राग की कल्पना करना वास्तव में कोई सरल कार्य नहीं था। महात्मा गाँधी न सिर्फ़ भारत बल्कि विश्वप्रसिद्ध व्यक्ति हैं। उनको ध्यान में रखकर राग की कल्पना करना जिसके माध्यम से सचमुच उनके आदर्शों को, सिद्धान्तों को, राजनीतिक सफलता को, पुनः किसी के समक्ष रखा जा सके, उसका अहसास कराया जा सके। निश्चित ही किसी भी कलकार के लिये यह चुनौतीपूर्ण कार्य था। अतः पं0 जी के मन में इन प्रश्नों का आना स्वाभाविक ही था जिनमें मुख्य प्रश्न इस प्रकार थे, कि राग की प्रकृति कैसी हो? आधार किस राग का लिया जाय? किन स्वरों में गाँधी जी के चरित्र को प्रदर्शित करने की स्वाभाविक क्षमता है? कारण स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी की छवि और राग की मूल प्रकृति में समता होना सर्वाधिक आवश्यक था। यही पं0 कुमार गंधर्व की पहली शर्त थी।

यद्यपि पं0 कुमार गंधर्व स्वयं कहते हैं कि रागों की रचना नहीं की जाती राग स्वयं उत्पन्न होते हैं किन्तु यहाँ राग रचना के प्रथम सोपान में पं0 जी ने राग का नाम शताब्दी समिति को लिखकर भेज दिया। राग का नाम रखा 'गाँधीमल्हार'। कारण स्पष्ट है कि राग का एक स्वरूप होता है, प्रकृति होती है, व्यक्तित्व होता है, अतः किसी व्यक्ति विशेष के लिये एक राग की कल्पना करना जो उस व्यक्तित्व को प्रदर्शित कर पाये आवश्यक कार्य था । और पं0 कुमार गंधर्व के द्वारा राग का यह नाम कितना सही है यह इस बात से सिद्ध होता है कि, 2 अक्टूबर अर्थात महात्मा गाँधी जी का जन्म दिन वर्षा ऋतु के अन्तिम चरण में आता है अर्थात, यह हिन्दी मास के अनुसार आस्विन (कुआर) का महीना होता है। वर्षा ऋतु में मल्हार राग सर्वकालिक गायन हेतु उपयुक्त राग है। अतः राष्ट्रपिता को उनके जन्म शताब्दी पर समर्पित किये जाने वाले राग का इससे उपयुक्त नाम और क्या होगा। परन्तु प्रश्न अब राग के और गाँधी

* शोध छात्र, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**प्रोफेसर, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जी के प्रकृति, स्वभाव और स्वरूप में समानता का था। संगीत के विद्यार्थियों के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि मात्र बन्दिश की रचना कर के राग मिंया मल्हार से ही क्युँ नहीं स्वरांजलि दे दिया पं0 कुमार गंधर्व ने, क्युँ आवश्यक्ता महसूस हुई एक नवीन राग की जो स्वंय मल्हार है? किन्तु इस सवाल का जवाब स्पष्ट हो जाता है जब हम दोनों रागों की तुलनात्मक अध्ययन कर पुनः रागों की तुलना महात्मा गाँधी के चरित्र, व्यवहार, व्यक्तित्व, संघर्ष इत्यादि का राग के प्रकृति और स्वरूप से तुलना करते हैं।

मल्हार अंग के राग वर्षा ऋतु में हर समय गाये बजाये जाते हैं। मल्हार राग की रचना मिंया तानसेन ने की और ये कहानी भी सर्वविदित है कि मिंया तानसेन ने बादशाह अकबर के आदेश पर राग दीपक गाया अग्नि के भयावह प्रकोप से पीड़ित तानसेन को उनकी बेटी के राग मल्हार व उसके गायन के प्रभाव से बारिश हुई जिससे तानसेन की जान बचाई जा सकी थी। अतः वर्तमान में इस राग के गायन से बारिश भले न हो किन्तु इसके गायन से सावन के रिमझिम बारिश की फुहार, घनघोर बारिश के कोलाहल और बादल के उमड़-घुमड़ कर आने की गूंज एवं दामिनी के चमकने और भयानक गरजन का भय, हवाओं के चलने से पत्तों की सरसराहट और नदियों और झरनों का अपने चरम उफान पर होना, दादुर, मोर, पपीहा का बोलना और झिंगुर की झनकार के अतिरिक्त वर्षा ऋतु की अनेक रस व भाव की अभिव्यक्ति की जा सकती है। अतः जन्म शताब्दी समारोह के लिये मल्हार उपयुक्त राग था।

मल्हार अंग के स्वरों के बारे में अध्ययन करने पर यह प्राप्त होता है कि, यह काफी थाट का राग है और इसमें कोमल विकृत गन्धार और निषाद के दोनों रूप कोमल व शुद्ध प्रयोग होते हैं। इसके अतिरिक्त सारे स्वर शुद्ध हैं। वादी स्वर षड्ज एवं संवादी स्वर पंचम स्वर है। इस राग का संक्षिप्त विस्तार इस प्रकार है।

सा रे प, ग म र सा, नी म.प नी ध नी सा मरे प, नी म प, नी ध नी सां, सा नी ध, नी म प, ग म रे सा।

प्राचीन स्वर और उनसे उत्पन्न होने वाले रसों का यदि सिद्धान्त देखा जाय तो मिंया मल्हार राग में प्रयुक्त स्वरों से उत्पन्न रस का अध्ययन करने पर प्राप्त होता है कि षड्ज और रिषभ से वीर, रौद्र और अद्भुत रस की उत्पत्ति होती है, मध्यम व पंचम से वीर रस व हास्य रस, अद्भुत रस, गंधार और निषाद से करूण रस उत्पन्न होते हैं एवं धैवत स्वर से विभत्स व भयानक रस की उत्पत्ति होती है। भातखण्डे जी के अनुसार कोमल गन्धार और कोमल निषाद वाले रागों में वीर रस प्राप्त होता है। यद्यपि यह सिद्धान्त इतना अटल भी नहीं की दरबारी राग की प्रकृति गम्भीर है तो उसमें श्रृंगार रस की रचना न गायी जा सके और हास्य रस न उत्पन्न किया जा सके। किन्तु इन प्राचीन सिद्धांतो पर ही हमारा भारतीय शास्त्रीय संगीत आधरित है। मिंया मल्हार प्रचलित राग है इसमें अत्यधिक मतभेद भी नहीं है सभी घराने के कलाकार बहुत ही सुन्दरता से और शौक से गाते-बजाते हैं।

किन्तु प्रश्न अब यह है कि क्या गाँधी जी के जीवन चरित्र और जैसी प्रतिमा उनकी जनमानस के हृदय में है उसमें और राग मल्हार के प्रकृति में समानता है? एक तरफ राग गम्भीर प्रकृति का है किन्तु इस राग में करूण और श्रृंगार रस का अनुभव भी होता है। अतः इस अंग के राग के स्वरूप में और गाँधी जी के चरित्र में साम्यता तो अवश्य परिलक्षित होती है। किन्तु उसे और पूर्ण बनाने के लिये क्या कोई कसर रह गयी है? अतः यही कसर पूरा करने का अद्वितीय कार्य पं0 कुमार गंधर्व ने किया है राग गाँधी मल्हार में।

यदि राग मिंया मल्हार की चंचल प्रकृति को धैर्यवान, श्रृंगारिकता को ब्रम्हचर्य, रौद्र को सहनशीलता, इत्यादि में परिवर्तित कर दिया जाय तो एक ऐसे राग का आविष्कार होगा जो बापू के जीवन के और समीप ले जा सकता है। अतः पं0 कुमार गंधर्व ने एक ऐसे राग की कल्पना की जो जयन्ती पर गायी जा सके और उसमें बापू की झलक भी हो। अतः पं0 कुमार गंधर्व ने इस राग के निर्माण में एक वर्ष (लगभग 1968 से 1969 तक) का समय व्यतीत किया। पं0 कुमार गंधर्व कृत राग गाँधी मल्हार में गंधार व निषाद के दोनों रूप प्रयोग होते हैं। राग में यह गन्धार के दो रूप राग की प्रमुख विशेषता हैं। मध्यम स्वर कोमल है, ऋषभ व धैवत स्वर का शुद्ध रूप प्रयोग होता है। गाँधी मल्हार राग की महत्वपूर्ण स्वर संगति मींडयुक्त गन्धार-धैवत व धैवत-गंधार की है। वक्र चलन का राग है, इस राग का सर्वाधिक प्रमुख स्वर शुद्ध गन्धार है, इसका धीर-गम्भीर व शांत रूप इस राग की प्रमुखता है। यह मल्हार होते हुए भी अपना विशेष स्वरूप व स्थान रखता है। इस राग का गायन समय, वादी-संवादी, थाट इत्यादि का वर्णन पं0 कुमार कृत पुस्तक अनूप राग विलास भाग दो में नहीं किया गया है। किन्तु राग के स्वर समूह से यह अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि इस राग का चलन और स्वरूप क्या है। आरोह-अवरोह वक्र वाले राग गाँधी मल्हार का राग वाचक स्वर विस्तार इस प्रकार है।

ध़ ग- सा, री सा नि़- ध़, नि़ सा। ग--सा-री-सा। ग ग म प ध ग--, म प म-ग म-ग म-ग म प म म-री-सा। सां- ध, नि म, प ग, म प ध ग, म प म री म री म री म प म म-री-सा।[1] (अनूपरागविलास भाग-2, कुमार गंधर्व पृष्ठ संख्या- 187)

राग गाँधी मल्हार में जो बन्दिश पं0 कुमार गंधर्व ने बाँधी है वह गाँधी जी का संक्षिप्त किन्तु व्यापक परिचय है। जिसमें उनके जीवन के दर्शन, आदर्श, सिद्धान्त इत्यादि का तो समावेश है ही इसके अतिरिक्त उनके विराट और विशाल आदर्श प्रतिमा का भी वर्णन किया है जो न कि केवल भारत अपितु भारत के बाहर भी अन्य देशों के जो महान दार्शनिक या शिक्षाविद् के हृदय में ससम्मान स्थापित है हमेशा-हमेशा के लिये। पं0 कुमार गंधर्व ने राग

गाँधी मल्हार में दो बन्दिशों की रचना की। एकताल विलम्बित में निबद्ध रचना और द्रुत तीनताल निबद्ध रचना जो शास्त्रीय ख़्याल गायन शैली की क्रमिक परम्परागत गायन पद्धति है।

विलम्बित ख़्याल की रचना इस प्रकार है-

स्थायी- तुम हो धीर हो रे,
संजीवन भारत के विराट हो रे।।

अन्तरा- आहत के आरत के सखा रे,
पावन आलोक अनोखे हो रे।।

द्रुत ख़्याल की रचना इस प्रकार है-

स्थायी- तुम में सब रूप
एक ही पथ, एक मंत्र
समता साकार।।

अन्तरा- दर्शन के अनुगामी
अंतर एकाकी
भीतों के आधार।।

''इस राग में जो बंदिशें मैंने बाँधी हैं उनके शब्द मेरी नजर में बहुत अर्थपूर्ण हैं। सरसरी निगाह से देखने पर भी समझ में आजाता है कि यह व्यक्तिपूजा नहीं भारत में उद्भूत महानता की अभ्यर्थना है।''[2]

(अनूपरागविलास भाग-2, कुमार गंधर्व पृष्ठ संख्या- 186)

राग का भाव दो चीजों से मिलकर बनता है-स्वराभाव और शब्दाभाव।[3]

(सुनता है गुरु ज्ञानी , गुन्देचा बन्धु, पृष्ठ संख्या- 37)

चंद पंक्तियों में एक महात्मा, दार्शनिक, शिक्षाविद्, समाज-सेवक, सेनानी, राजनीतिज्ञ, राष्ट्रपिता, विश्वख्यिात व्यक्तित्व का वर्णन करना एक अद्वितीय कार्य है। किन्तु यह सदी के महान संगीतकार, वाग्गेयकार के लिये असंभव भी नहीं। गागर में सागर भरने का यह वास्तव में उत्तम उदाहरण है।

अब यदि पं0 कुमार गंधर्व निर्मित राग गाँधी मल्हार व राग मिंया मल्हार की तुलना गाँधी जी के जीवन चरित्र के समक्ष किया जाय तो ज्ञात होगा कि राग गाँधी मल्हार का स्वरूप गाँधी जी को और अधिक स्पष्टता और सरलता से प्रदर्षित करने में सक्षम है।

जिस प्रकार मिंया मल्हार का स्वरूप सर्वविदित है उसी प्रकार गाँधी जी का आचरण भी, यद्यपि दोनों में गम्भीरता, वीरता तो दिखता है, किन्तु मिंया मल्हार में गाँधी जी के साहस, बलिदान, धैर्य को प्रदर्षित करना गाँधी मल्हार की अपेक्षा कठिन था। अतः इस कठिनता को राग गाँधी मल्हार सरल कर देता है। मल्हार होने के बावजूद गाँधी मल्हार बहुत भिन्न स्वभाव और प्रकृति का आभास कराता है। राग गाँधी मल्हार एक ऐसी रचना है जो नवनिर्मितता का उत्तम उदाहरण है। गाँधी मल्हार बापू के चरित्र व व्यक्तित्व को निश्चित ही पूर्णता के समीप तक व्यक्त कर सकने में सफल रहा है। यह एक कलाकार के द्वारा राष्ट्रपिता को अर्पित श्रेष्ठ श्रद्धांजलि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अनूप राग विलास भाग-2, पं0 कुमार गंधर्व, मौज प्रकाषन521, प्रथम संस्करण-3 जुलाई 1993।
2. सुनता है गुरु ज्ञानी, गुन्देचा बन्धु, ध्रुपद संस्थान भोपाल, द्वितीय संस्करण 2016
3. मल्हार दर्शन, डॉ0 गीता बनर्जी, संगीत श्री प्रकाशन, संस्करण 2014
4. भारतीय संगीत का इतिहास, भगतवशरण शर्मा, संगीत कार्यालय हाथरस, संस्करण मार्च, 2010
5. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Mhatma_Gandhi
6. https://www.thehindu.com/entertainment/Music/song-to-his-simplicity/article26015562.ece/amp/

●

महात्मा गाँधी जी के सांस्कृतिक विचार और हिन्दी साहित्य

योगेश यादव एवम् प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय***

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की राजनीति को गहनता से प्रभावित करने वाले गाँधी जी ख्यात साहित्यकार नहीं थे फिर भी उन्होंने सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को अपने सांस्कृतिक विचारों से प्रभावित किया है। उन्होंने धर्म, राजनीति, समाजशास्त्र सौन्दर्यशास्त्र सभी की व्याख्या अपनी उदात्त आध्यात्मिक दृष्टि से की और युगीन साहित्यकारों एवं विचारकों को जीवन एवं जगत, व्यक्ति एवं उसकी अन्तः चेतना को मूल्यांकित करने के नैतिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमान निश्चित किए। सांस्कृतिक नवजागरण की महत्वपूर्ण उपलब्धि जीवन एवं जगत के प्रति प्रवृत्तिपरक दृष्टि थी जिसके परिणामस्वरूप धर्म एवं समाज की मानवीय दृष्टिकोण से व्याख्या हुई और मानव मात्र की गरिमा का उद्घोष हुआ। महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व में सर्वहारा वर्ग से लेकर प्रबुद्ध तक के भावों विचारों और क्रिया को प्रभावित करने वाली असाधारण क्षमता एवं सम्मोहन शक्ति के मूल में उनके चिन्तन एवं कर्म कौशल की विशिष्टता निहित है। उन्होंने शूद्रों एवं नारी जाति के प्रति सहानभूति और गौरव की भावना जगाई। नागरिक सभ्यता और औद्योगिक व्यवस्था की ओर आकर्षित ग्राम्य जीवन को उन्होंने अपनी ग्राम्य संस्कृति की ओर सचेत किया। स्वाधीनता आन्दोलन को अंहिसक आन्दोलन का रूप देकर उन्होंने भारतीय संस्कृति के गौरव की प्रतिष्ठा की। गाँधी जी के कष्ट सहन, असहयोग एवं अहिंसा के मानवीय सिद्धान्त ने विश्व को गहनता से प्रभावित किया उनके सुधारवादी आन्दोलनों ने पूरे राष्ट्र में उदारवादी भावना जगाई जिससे दीन दुखियों के प्रति पूरा युग ही संवदेनशील हो उठा।नारी जाति के प्रति उनके दृष्टिकोण ने प्रबुद्ध जनों को नई चेतना दी। कृषक वर्ग के प्रति लोगों के मन में आदर का भाव पैदा हुआ। उन्होंने राष्ट्रीय जीवन को सामाजिक एवं धार्मिक जड़ताओं से मुक्ति दिलायी तथा राम राज्य की कल्पना करके सम्पूर्ण युग की भाव भूमि को कल्पना-प्रवण बनाया। इस प्रकार गाँधी जी अपने समग्र व्यक्तित्व में भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान स्वरूप प्रमाणित हुए।

गाँधी जी में समाजवादी व्यवस्था के प्रति विशेष आग्रह था। विचार-स्वातन्त्रय और आत्मविकास के लिए उन्होंने मनुष्य मात्र को पूर्ण रूप से मुक्त घोषित किया तथा वर्ण,धर्म एवं जाति के बँटवारें भेद को मिटाकर देशवासियों में आत्मबल की प्रेरणा जगाई। 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' जैसे पत्रों के माध्यम से गाँधी जी ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति की। वे सच्चे सत्यान्वेषी थे। साहित्य मे इसकी प्रतिक्रिया यथार्थ वाद के रूप मे हुई। किसान, मजूदर, अछूत, विधवा एवं वेश्या-जीवन के प्रति उनके मन में गहन सहानभूति थी। इसके प्रभाव से साहित्यकार भी मानवतवादी चेतना से अनुप्राणित हुए। गाँधी जी के आध्यात्मिक तथा रहस्यवादी चेनता ने भारतीय साहित्यकारों को आस्तिक भाव भूमि से जोड़ा। गाँधी के अहिंसा सिद्धान्त के प्रभाव से साहित्यिक कृतियाँ प्रेम और करूणा के संवेदना पर निर्मित होने लगी तथा रचनाओं के चरित्र आत्मत्याग तथा आत्मविसर्जन का अपने जीवन का आर्दश मानते हुए दिखाए जाने लगे। लोकमंगल की चेतना से साहित्यकार प्रभावित हुए। साहित्य की भाषा सरल और सुबोध बनी। इस पूरी प्रक्रिया के मूल में गाँधी जी के वैयक्तिक आर्दशों तथा सांस्कृतिक विचारों का गहन प्रभाव था।

हिन्दी साहित्य पर गाँधी जी के उदात्त चरित्र एवं सांस्कृतिक विचारों का गहन प्रभाव रहा है। अधिकांश हिन्दी साहित्यकार गाँधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित रहे हैं। उनके सांस्कृतिक दर्शन को अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान की है। गाँधी जी कर्म सौन्दर्य पर मुग्ध होकर प्रशस्तिपरक गीतों एवं लघु खण्ड काव्यों की रचना द्विवेदी युग में ही प्रारम्भ हो गई थी। यह परम्परा छायावाद और छायावादोत्तर युग तक अखण्ड रूप से चलती रही। प्रशस्तिपरक कविताओं में आन्दोलनात्मक स्वर के साथ बलिदान और त्याग की भावना को भी स्थान मिला है। मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित कविता-

खुली हैं कूटनीति की पोल

महात्मा गाँधी की जय बोल

इस वर्ग की रचना है। माखनलाल चतुर्वेदी की 'वीर पूजा' शीर्षक कविता भी ऐसे ही आन्दोलनात्मक स्वर का निदर्शन है।[1] गाँधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलन की उपलब्धियो को लक्ष्य करके हिन्दी में अनेक खण्डकाव्यों, नाटकों और एकांकियों की रचना हुई। उनकी दुखद मृत्युपर 'खादी के फूल' नामक शोक गीत सुमित्रानन्दन पन्त और हरिवंशराय बच्चन की संयुक्त रचना उल्लेखनीय है।

गाँधीवादी विचार धारा से प्रभावित साहित्यकारों के दो वर्ग है। प्रथम वर्ग के रचनाकार गाँधी जी के महान व्यक्तित्व एवं उनकी उपलब्धियों को कृतियों की विषय वस्तु बनाए हुए हैं और दूसरा वर्ग उनके जीवन दर्शन से प्रभावित है। प्रथम वर्ग के रचनाकारों मे मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सोहन

* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**इमरिटस प्रोफेसर, मुख्य सम्पादक 'प्रज्ञा' जर्नल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

लाल द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, पन्त, दिनकर, हरिवंश राय बच्चन, हरिकृष्ण प्रेमी और भवानी प्रसाद मिश्र आदि के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व के प्रभाव में देश भक्ति से ओतप्रोत राष्ट्रीय गीतों की रचना की है। 'सत्याग्रह-संग्राम में स्वयं सक्रिय रूप से संलग्न होने के कारण इन कवियों के गीतो में भावावेश, अनुभूति, प्रवाह और सच्चाई है।इन कवियों ने ऐतिहासिक एंव पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से राष्ट्रीय जीवन की राजनीतिक एवं प्रशासनिक गतिविधि का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। प्रचलित प्रतीकों एवं मिथकों के कुछ उदाहरण द्रष्टय है- 'पुष्प-बलिदानी' 'भारती हृदय', 'सत्याग्रही प्रहलाद', 'भारत माता देवकी और द्रोपदी', सत्याग्रह संग्राम-महाभारत का युद्ध,कैदी-वासुदेव देवकी, आततायी शासन और शासक- कंश, दुशासन, दुर्योधन आदि।[2] इन राष्ट्रीय कविताओं में भारत माता को आततायी के क्रूर शासन से मुक्त करने की तीव्र चाह है तथा स्वाधीनता की प्रबल आकांक्षा में स्वबलिदान का शौर्य भी है।

दूसरे वर्ग के गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित होकर रचना करने वालों में सियाराम शरण गुप्त एवं जैनेन्द्र कुमार हैं। सियारामशरण गुप्त ने 'बापू' और 'अछूत' खण्ड काव्य मे अंहिसा एवं आत्मोत्सर्ग की भावना को व्यक्त किया है। रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन', पथिक और स्वप्न तीनों खण्डकाव्य देश प्रेम से प्रेरित है। इसी प्रकार मैथिली शरण गुप्त के 'साकेत', 'यशोधरा' और 'जय भारत' जैसी कृतियों में गाँधी जी की मानवतावादी मनोभूमि का प्रभाव परिलक्षित होता है। साकेत की सीता स्वालम्बन में विश्वास करने वाली है, स्वयं तकली कातती है, शारीरिक परिश्रम करती है, अंचल से व्यंजन झलती है। 'गुप्त जी ने सीता जी केा चित्रकूट की रमणीय प्राकृतिक भूमि में लाकर उनके हाथों में चरखा और तकली के साथ खुरपी और कुदाल भी दे दी है, जिससे वह स्वावलम्बिनी बनें और मूलमानवता से दूर न चली जायं।[3] मैथिली शरण गुप्त की भारत भारती में नव जागरण के विविध पक्षों तथा राजनीतिक गतिविधियों की विस्तृत चर्चा हुई है। भारतेन्दु के समय में स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी। उसका विकास भारत भारती मे मिलता है। मैथिली शरण जी, गाँधी जी के अंहिसा एवं सत्याग्रह आन्दोलन से इतने अधिक प्रभावित थे कि राम वनगमन के अवसर पर उनके 'साकेत' की प्रजा सत्याग्रह करती है, दशरथ और भरत के विरोध में अवज्ञा आन्दोलन की भूमिका में धरना तक देती है। इस गाँधीवादी असहयोग पद्धति को जिसका प्रयोग राष्ट्रीय आन्दोलन में हो रहा था-साकेत में पुर्नरुत्थान के कवि मैथिलीशरण गुप्त ने प्रतिष्ठा कर गाँधी जी के सांस्कृतिक विचारों के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा व्यक्त की।

गाँधी जी की लोकप्रियता और छायावाद का ऐतिहासिक समय एक ही है अंग्रेजों के आतंक के बीच में आ जाने के कारण गाँधी जी का आन्दोलन साहित्यिक लेखन को सीधे-सीधे प्रभावित नहीं कर रहा था। राष्ट्रीयता के प्रति पूर्णरूप से समर्पित प्रसाद जी के साहित्य में गाँधी वादी दार्शनिक विचार सूदूर इतिहास में स्वीकार्य किए गए। प्रसाद जी की कालजयी रचना 'कामायनी' की अर्थ और सम्प्रेषण के स्तर पर रची हुई समस्त तर्क प्रणाली गाँधी युग के उदान्त तर्कों की कल्पना मात्र है। स्वयं गाँधी जी बुद्धि और हृदय के द्वन्द्व से ग्रस्त थे। उन्होंने यान्त्रिक सभ्यता के स्थान पर आध्यात्मिक कर्तव्यपरायणता को चुना था। तर्क की अपेक्षा आस्था और विश्वास को उन्होंने महत्वप्रदान किया था। कामायनी में भी तर्क और इड़ा की ओर से विमुख होकर विश्वास (श्रद्धा) की तल्लीनता स्वीकार्य करनी पड़ती हैं।

प0सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की संवेदना का निर्माण सीधे बंगाली नवजागरण के परिणामों से हुआ था। वे बंगाल प्रवास के दौरान राजाराम मोहन से लेकर रामकृष्ण और विवेकानन्द की नवजागरण वादी संवेदना को सही रूप में आत्मसात् कर चुके थे। उनकी मानवतावादी दृष्टि तथा स्वतन्त्रता की भावना में बांगला अन्तरदृष्टि स्पष्ट है। निराला गाँधी की भांति अहिंसा में विश्वास न करके आह्वान करते हैं-

बस एक बार और नाच श्यामा

वह अंधकार को पहचानते हैं तथा अंधकार के बाहर के प्रकाश से भी परिचित हैं। इसीलिए उनकी कविताओं में गहनकारा की भी अनुभूति है और शक्तिपूजा के द्वारा क्षयी संस्कृति के प्रतीक रावण के विनाश का विश्वास भी है। वे तत्कालीन व्यवस्था के उतने ही विरोध हैं जितने गाँधी जी थे। गाँधी जी भी दीनहीन के आँसू पोछने में जीवन का सर्वस्व समझते थे। निराला जी भी 'चतुरी चमार' और 'कुल्लीभाट' के साहर्चय में परितोष पाते हैं। कहा जाता है कि 'राम की शक्ति पूजा' निराला के व्यक्तिगत संर्घष और गाँधी जी के संघर्ष की भी प्रतिध्वनि है।

पन्त की रचना प्रक्रिया पर गाँधी जी का और गाँधीवादी दर्शन का सीधा प्रभाव पड़ा है। उनकी 'बापू' शीर्षक कविता में गाँधी जी के महान व्यक्तित्व के प्रति प्रबल आस्था व्यक्त हुई है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के अनुसार पंत के कवि मानस में गाँधी जी की आत्मा, रवीन्द्र की रचात्मकता और मार्क्स की प्रगतिशीलता का समन्वय है।

प्रेमचन्द सही अर्थों में समकालीन लेखक थे। अपने कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए वे कभी अतीत (इतिहास) में नहीं गए और न कभी अन्योपदेश का ही उपयोग किया। उनकी रचनाओं मे सम्पूर्ण समसामयिक गाँधीवादी प्रभाव उभर कर सामने आया है। उनका साहित्य और वे स्वयं गाँधी जी के सीधे प्रभाव में थे। उनका लिखा 'सोजे-वतन' अंग्रेजी शासन द्वारा जब्त हुआ, पश्चात उनकी नौकरी चली गई। वे इस समय की सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रतिपक्ष में खड़े थे। उनके पास केवल लेखनी और भूखा पेट था और सत्य को सही ढंग से प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा थी। इसीलिए उनके पात्र पर्याप्त शान्त, उदास कर देने वाले लेकिन सच्चाई और स्वतन्त्रता को प्रणान्त होने तक आग्रह के साथ प्राप्त

करने में तत्पर दिखाई देते हैं। 'कायाकल्प' उपन्यास से लेकर 'गोदान' उपन्यास तक यह प्रक्रिया दिखाई देती है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में बड़े व्यापक ढंग से गाँधी वादी विचार धारा और गाँधी युगीन सत्य अभिव्यक्त हुए हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास गाँधी जी के व्यक्तित्व का पर्याय है। 'गोदान' के होरी का निरन्तर कष्ट को सहना, पीड़ा को जानना लेकिन कोई प्रतिरोध न करना एक ओर भारतीय कृषक का चरित्र है तो दूसरी और गाँधी वादी चरित्र का कृषकीकरण है। शहर से गाँवों की ओर मुड़ने का और गाँवों को ही भारतवर्ष समझने का जो स्वप्न गाँधी जी ने देखा था, वही प्रेमचन्द ने भी देखा। प्रसिद्ध आलोचक डॉ रामविलास शर्मा प्रेमचन्द के ग्राम्यबोध एवं मानवी दृष्टि का विवेचन करते हुए लिखते है- ''प्रेमचन्द की कहानियों में समाजपीड़ित विधवाएँ, सौतेली माताओं से परेशान बालक, महन्तों-पुरोहितों से ठगे जाने वाले किसान, दूसरों की गुलामी करके भी पेट न भर पाने वाले अछूत, महाजन का सूद भरते-भरते जिन्दगी गारत कर देने वाले किसान, ये और इस तरह के सभी लोग कहानीकार प्रेमचन्द में एक अच्छा दोस्त और सलाहकार पाते हैं। समाज के अन्यायी और अत्याचारी निठल्ले और मुफ्तखोर अंग्रेजी राज के वफादार-मददगार प्रेमचन्द में अपनी वह असली सूरत देख सकते हैं, जो जनता का पक्ष लेने वाले एक सजग साहित्यकार को दिखाई देती थी।'[4] कला और कलाकार नवजागरण के राजनीतिक नवोत्थान के क्रम में, जिसका नेतृत्व गाँधी जी कर रहे थे, अपनी काल्पनिक एवं रंगीन मानसिकता का त्याग करने के लिए बाध्य थे। भारतीय उपन्यास कला ने शीघ्र ही युग जीवन की बढ़ती हुई माँग को स्वीकार कर बंगला उपन्यास की रंगीन भावुकता का त्याग कर दिया और गाँधी दर्शन से प्रभावित आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्वस्थ भूमिका पर अपना स्वतन्त्र विकास किया। हिन्दी में प्रेमचन्द ने इस प्रवृत्ति का नेतृत्व किया।

जैनेद्र गाँधी दर्शन के निष्णात विद्वान के रूप मे विख्यात हैं। जैनेन्द्र ने गाँधी वादी दर्शन को अपने ढंग से स्वीकार किया है। उनके चर्चित उपन्यास 'त्यागपत्र' की मृणाल अत्यन्त बौद्धिक ढंग से सम्पूर्ण समस्याओं पर विचार करते हुए भी और अपने बारे में बौद्धिक तट्स्थता रखते हुए भी अत्यन्त आत्मपरक है। वह चरित्र और मर्यादा का अर्थ जानते हुए भी वन और मन की अलग-अलग इकाईयाँ मानती है। इसीलिए चाहे उसका चरित्र जितना उद्वर्वधर्मी हो, वह अन्धे कुँए मे जलती हुई दीपशिखा ही बन पाती है, मन्दिर के कलश को प्रकाशित नहीं कर पाती है। 'सुनीता' की सुनीता के लिए भी धर्म आत्मा का विषय है और देह सुविधापूर्वक समर्पित कर देने वाली वस्तु है। 'कल्याणी' में भी यही प्रक्रिया हैं। 'जाह्नवी' जैसी कहानी की जाह्नवी दो नैनों को बचाकर सम्पूर्ण देहको काँवों के लिए छोड़ देती है। वहाँ भी यही नियति है। इस प्रकार की मानसिक यन्त्रणा और आवेग को निरन्तर अस्वीकार्य करते रहना गाँधी वादी सहिसुष्णाता से ऊपजाए हुए तत्व है। जैनेन्द्र ने बड़े टेढ़े-मेढ़े और जटिल ढंग से गाँधीवाद को स्वीकार्य किया है।[5]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल समसायियक संवेदना से सीधे जुड़े नहीं माने जाते। उन्हें लोगों ने मध्यकालीन युग बोध का व्यक्ति कहा है। मुक्तकों के युग में वे प्रबन्ध काव्यों के अधिवक्ता के रूप में सामने आए। लेकिन इस प्रकार की दृष्टि शुक्ल जी को गहनता से न देखने के कारण है। शुक्ल जी समसामयिक संवेदना से ओत-प्रोत थे। एक ओर गाँधी जी 'रघुपति राघवराजा राम' के स्वरों से प्रार्थना सभाओं गुंजा रहे थे। तो दूसरी ओर शुक्ल जी रामचरित मानस में राम के शील और सत्य का प्रतिबिम्ब ढूढ़ रहे थे। शुक्ल जी के पास गाँधी जी के लोकमंगल वादी अन्तदृष्टि थी। सम्पूर्ण जीवन को एक विराट सन्तुलन में बाँधने की गाँधीवादी क्षमता थी। रसात्मक बोध के विविध रूप अथवा लोकमंगल की साधनावस्था अथवा जायसी का प्रेम वर्णन तथा तुलसीदास की भावुकता का विश्लेषण करते समय जो अन्तरदृष्टि और सूक्ष्म आलोचनात्मक विवेक का परिचय उन्होंने दिया, वह समकालीन युग बोध गाँधीवादी चिन्तन से जुड़ा हुआ था। सूर या कबीर के उन्मुक्त प्रेम और मुक्त तर्क मे उनकी रूचि को कुछ विशेष नहीं मिला तो इसका कारण यहीं हो सकता है कि वे मुक्त विहार या तर्क की अपेक्षा गाँधी जी की भाँति ही लोक साधना, मर्यादा, नैतिकता और विश्वास के प्रति आस्थावान थे। शुक्ल जी गाँधी जी से सीधे प्रभावित भले न हों उनकी संवेदना का नियोजन गाँधी युग की समसामयिकता से हुआ था। आस्तिक गृहस्थों की भाँति दोनों की रूचि भक्ति काव्य की ओर थी। भक्ति काव्य में भी विशेष रूप से राम काव्य की ओर। गाँधी जी का 'रघुपति राघव राजा राम पतित पावन सीता राम' तथा 'हे राम' जगत प्रसिद्ध ही है। शुक्ल जी को कृष्ण काव्य की स्वच्छन्दता एवं अनुरंजनकारी प्रवृत्ति आकर्षित न कर सकी क्योंकि सूर को गृहस्थ जीवन की लोक मर्यादा से कम सरोकार था। गृहस्थ जीवन, गम्भीर उत्तरदायित्व शुक्ल जी के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण अंग था। गाँधी जी की भाँति शुक्ल जी भी लोक पक्ष को कल्याण-कामना करते थे। इस प्रकार गाँधी जी के सांस्कृतिक का विचारों का हिन्दी आलोचना के शीर्ष शुक्ल जी माानसिकता एवं उनके आलोचना के मानदण्डों के निर्माण पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़े प्रभाव को देखा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य को गाँधी जी के अनोखें व्यक्तित्व और उनके सांस्कृतिक विचारों ने दूर तक प्रभावित किया है। गाँधी जी के समकालीन और परवर्ती हिन्दी साहित्यकारों में ऐसे कम ही साहित्यकार हैं जो गाँधी-दर्शन के प्रभाव से बचे हों।

सन्दर्भ

1. डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक –परिशोध सितम्बर 1970, पृष्ठ 26
2. डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक –परिशोध सितम्बर 1970, पृष्ठ 30
3. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य पृष्ठ 97
4. डॉ0 रामविलास शर्मा- प्रेमचन्द और उनका युग – पृष्ठ-123
5. डॉ0 महेन्द्रनाथ राय- नवजागरण और छाया वाद. राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली–1973, पृष्ठ-108

गांधी दर्शन पर चलने वाली कद्दावर संस्थाओं का संचालन (एक चर्चा)

डॉ0 मनहर चारण[*] एवं प्रो. सुदर्शन आयंगार[**]

गांधी दर्शन पर आधारित जो संस्थाएं है, खास कर कद्दावर संस्थाएं, उनके संबंध में एक सवाल खड़ा होता है। क्या इतनी कद्दावर संस्थाएं होनी चाहिए? गांधी जी के बाद विनोबा जी ने इस मुद्दे पर चिंतन किया था। अनुमानतः दोनों के दर्शन को देखें तो वे किसी भी बड़े और औपचारिक संस्थाओं के पक्षधर नहीं थे। संस्थाएं छोटी होनी चाहिए और काम बड़ा होना चाहिए। मेरी अपनी समझ भी यही बनी है कि संस्थाएं छोटी होनी चाहिए। क्या गुजरात विद्यापीठ, अहमदबाद[1] छोटी संस्था है? इसका जवाब हां और ना दोनों में हो सकता है। विद्यापीठ में विद्यार्थियों की औसतन संख्या 1800 से 2000 के बीच रहती है। शिक्षक करीब 125 हैं। विद्यापीठ की शालाओं को भी जोड़ लें, तो विद्यार्थी कुछ 4500 के करीब होंगे और शिक्षक बढ़ कर 250 तक हो जायेंगे। समग्र सेवक परिवार को जोड़ लें, तो यह संख्या 5000 तक जा सकती है। अब इसे छोटी संस्था भी नहीं कहा जा सकता, पर किसी सामान्य विश्वविद्यालय की तुलना में यह छोटी ही साबित होगी। प्रस्तुत लेख में कद की कोई विशेष व्याख्या नहीं की गयी है। परंतु जो संस्थाएं बड़ी मानी जाती है, उनका व्याप-विस्तार और कार्यक्रमों की संख्या की दृष्टि से बड़ी हैं और वह गांधीजी द्वारा दर्शाये रचनात्मक कार्यों में से किसी काम को भी कर रही हैं।

अब बात आती है गांधी दर्शन के परिप्रेक्ष्य में संचालन की। 1920 के समय में जब गुजरात विद्यापीठ की नींव रखी गई तो इसकी कल्पना राष्ट्रीय शिक्षा के प्रतिष्ठान की थी और यह उस समय विद्यमान अंग्रेजों द्वारा शासित, समर्थित और संचालित शिक्षा व्यवस्था तंत्र का विकल्प थी। हिन्दुस्तान की संस्कृति और मूल्यों पर आधारित समाज पुनर्रचना के हेतु इस नई शिक्षा प्रणाली को आरंभ किया गया था। समाज से दान-भेंट मांग कर ही इसे चलाया गया था। एक बहुत बड़ी धनराशि एकत्रित कर उसकी एक निधि बनाकर उससे होने वाली ब्याज की आय से संस्था का संचालन हो, ऐसा गांधीजी सहित सभी संस्थापकों का कदापि विचार नहीं था। 2013 में विद्यापीठ के तत्कालीन कुलपति नारायण देसाई, गांधीजी के जाने माने और अपनी मृत्यु तक उनके सचिव रहे, महादेव देसाई के पुत्र थे। नारायण भाई जैसा कुलपति भी आज के समय में शायद ही मिले उन्होंने विद्यापीठ के कुलपति का कार्यभार संभाला तो उन्होंने एक महत्वपूर्ण बात कही, जो गांधी-विनोबा दर्शन आधारित संस्थाओं के लिये लागू होती है। कबीर को टांकते हुए नारायण भाई ने कहा था-

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम। दोनों हाथ उलेचिए यही सयानो काम॥

संस्था को पैसे के संग्रह का मोह न रखते हुए निधि संचित किये बिना, समाज से जरूरत के मुताबिक आर्थिक सहयोग पा कर उसे खर्च कर देना चाहिए। उनका मंतव्य था कि जितनी बड़ी संस्था हो, वह उतनी ही गरीब होनी चाहिये, ऐसी अवस्था में ही निष्ठावान और कर्मठ कार्यकर्ता टिकेंगे ओर बाकी लोग संस्था छोड़ देंगे। अगर संस्था धन संपन्न है तो उसमें काम करने के लिये और उसके संचालन में हिस्सा लेने के लिये कई लोग लालायित होंगे। यह वो लोग होते हैं जो आवश्यक तौर पर मूल्य-निष्ठ और कर्मठ नहीं होते और समय रहते अपना स्थापित हित साध कर, संस्था को उसके मूल ध्येयों से भटका कर, एक लचर संस्था बना देते हैं। जहाँ अक्सर सत्ता की राजनीति हावी हो जाती है। उन्होंने आगे कहा कि गांधी विचार पर चलने वाली संस्थाओं को कबीर के उपरोक्त दोहे के अनुसार चलना चाहिये। हाँ, ऐसा जरूर होगा कि कई संचालक इसके विरोधी भी हो जायेंगे और तलब करेंगे कि क्या सभी धन खर्च कर देने से संस्था में स्वर्ग उतर आयेगा? अगर बिना धन समर्थन के संस्था बंद होने के कगार पर आ जाय, तो क्या इन संस्थाओं की समाज के प्रति कोई जवाबदेही होगी ही नहीं? पर नारायण भाई ने मजबूती से यह कहा कि अगर संस्था अपने ध्येय और मूल्यों के प्रति वफादार है, तो समाज भी उसकी कद्र करता है और मदद के लिये जरूर आगे आता है। जो समाज ऐसी मदद नहीं करता, उसके लिये संस्था का बंद हो जाना भी योग्य ही होगा।

नारायण भाई की बात गौरतलब है, परंतु उत्तर गांधीयुग में संस्थाओं का कायापलट भी हुआ है। मैं, गुजरात विद्यापीठ के संदर्भ में अपनी बात करूँ। गांधीयुग के मूल्य और गांधी दर्शन को केन्द्र में रख कर चलने वाली संस्थाओं में मूल्य-निष्ठ रह कर आचरण करने के प्रयास में आडंबर बहुत आया है। कहना न होगा कि इसका एक महत्वपूर्ण कारण- अपने आपके प्रति ईमानदार न रहना है- पर यह बहुत कठिन है।

सन 2000 में गुजरात विद्यापीठ ट्रस्ट ने मुझे ट्रस्टी के तौर पर आमंतत्रित किया। विद्यापीठ का यह नियम है कि विद्यापीठ का ट्रस्टी हो या सेवक, निरंतर खादी पहनने वाला और नियमित कताई करने वाला होना चाहिए। मैं, खादी युवावस्था से ही पहनता आया हूं। युवावस्था में एक आदर्श था। 1972-73 का साल, अकाल का था। जयप्रकाश नारायण उन दिनों शांति सेना के राष्ट्रीय अध्यक्ष

* सहायक प्रोफेसर, मानवतावादी अध्ययन विभाग, आईआईटी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** पूर्व कुलपति, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

हुआ करते थे। नारायण देसाई के नेतृत्व में तरूण शांति सेना का निर्माण हुआ। इस संगठन ने 'अकाल बनाम तरूण' का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम दिया, जिसमें भारत सरकार से सहायता मिली। इस कार्यक्रम के एक शिविर में मैं, भी जुड़ा था। गरीबी और बेरोजगारी का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, यह बात दीगर थी कि मैं, कॉलेज में अर्थशास्त्र ही पढ़ रहा था। पर एक बात गाँवों के बीच रह कर समझ आयी कि अगर खादी पहनी जाय, तो किसान, मजदूर और महिलाओं को रोजगार मिलेगा। तभी से खादी को अपनाया था। इस तरह विद्यापीठ के निरंतर खादी के एक नियम का पालन तो कर रहा था। अब दूसरा नियम नियमित कताई का था। मैंने, कताई कभी नहीं की थी। मैं, किसी गांधी विचार के परिवार में पला-बड़ा नहीं था। विद्यापीठ के ट्रस्टी बनते समय लिखित में स्वीकृति देनी होती थी।

अब मैं, संकट में आया। मैं, योग्य नहीं था, क्योंकि मैं, कताई बिल्कुल नहीं करता था। अब बुद्धि का खेल या छल शुरू हुआ। हृदयपूर्वक निष्ठा रहती तो मैं, अस्वीकृति देता और कहता कि मैं, योग्य नहीं हूं। पर बुद्धि ने हल निकाला। आडंबर यहीं से शुरू होता है। बुद्धि कोई तर्क ढूंढ़ ही लेती है। मैंने, तत्कालीन कुलपति बहन सुशीला नय्यर, जिन्होंने पत्र लिख कर मुझे आमंत्रित किया था, उन्हें स्वीकृति पत्र भेजा और नीचे एक टिप्पणी लिखी कि मैं, कताई नहीं करता हूं। बुद्धि की कुटिलता यह थी कि मैं, अपनी जवाबदारी को कुलपति के सिर पर मढ़ रहा था। अब यह उन्हें तय करना था कि इस व्यक्ति को ट्रस्टी बनाया जाय या नहीं। उनकी तरफ से कोई जवाब नहीं आया और मैं, एक तरह से निश्चिंत हो गया कि कुलपति जी की सहमति है। मैं ट्रस्टी बन गया। गांधी-विचार की बड़ी संस्थाओं में इस तरह आडंबर और संचालकों की बेजवाबदारी शुरू होती है। गांधी-दर्शन को मैंने, तब तक थोड़ा पचाया होता, तो या तो ट्रस्टी बनने से इंकार कर देता या जिस दिन से स्वीकार किया उस दिन से कताई सीखता और करता। ऐसा मैंने नहीं किया। मेरी बेजवाबदारी से संस्था का तत्व घटा। ऐसा औरों के किस्से में भी हुआ होगा, पर मैं, तो अपनी बात कह सकता हूं। यह बात दीगर है कि मेरा स्वीकृति पत्र कुलपति को दिखाया गया होगा कि नहीं और उन्होंने कोई प्रतिक्रिया दर्शायी या नहीं।

सन् 2005 में मैं, संयोगवस कुलनायक बनाया गया। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह पद बहुत ही काबिल लोगों ने संभाला था। कुलनायक पदेन विद्यापीठ न्यास का प्रमुख है। इस पद पर काकासाहेब कालेलकर, सरदार पटेल और मोरारजी देसाई जैसे लोग रह चुके हैं। ट्रस्टी होने के नाते तो मैं, कताई नहीं करता था, पर जब कुलनायक बना तो उससे मुकरना अपने आपको धोखा देने जैसा होता। 50 की उम्र पार ही की थी। सीख पाऊंगा? यह सवाल आया, पर निष्ठा-पूर्वक प्रयत्न करना है यह निश्चित किया। बुद्धि का बांकपन देखने लायक होता है। कुलनायक को कई कामों से बाहर तो जाना पड़ता ही है और मेरे पुराने कामों का सिलसिला तो था ही। तो महीने में कभी दस तो कभी बारह दिन बाहर जाना होता था। रविवार की ओर अन्य सार्वजनिक छुट्टियों में कातना चाहिए या नहीं इस पर सोचे बिना तय कर लिया कि जब परिसर में हाजिर रहूंगा और प्रार्थना में जाऊंगा तो कताई करनी होगी। तो यह हुई मेरी कताई की नियमितता। मेरी तो क्या शिक्षकों और सेवकों की भी यही समझ थी। बुद्धि ने विवेक पर पर्दा डाल रखा था और संस्था के मूल मूल्यों के प्रति निष्ठा बस इतनी ही रही।

एक बार शिक्षा सत्र के प्रारंभ में नये विद्यार्थियों से बातचीत करते हुए मैं, सवाल कर बैठा कि वे आवश्यक कारणों को छोड़कर नियमित कताई का क्या अर्थ करेंगे? एक तरूणी ने जवाब दिया कि अगर स्वास्थ्य ठीक न हो और शरीर काम करने की स्थिति में न हो या हाथ में कुछ तकलीफ हो तो कताई नहीं हो पायगी, इन स्थितियों को छोड़ कर रोज कताई करना ही नियमित कताई माना जाना चाहिए। मेरी आंखे खुली, मैं, कितनी सफाई से अपने आप को उचित ठहरा रहा था कि मैं, विद्यापीठ के सेवक होने के नाते नियमित कताई के नियम का पालन कर रहा हूँ! सभी ऐसा कर रहे थे, विद्यार्थियों ने इसे कभी मुद्दा भी नहीं बनाया पर यह जिम्मेवारी तो खुद की हुई ना? मैंने, तय किया कि कताई के नियत समय के दौरान जितनी पूनी कातता हूं, उसके आलावा जिस दिन कताई न कर पाऊं, तो उतनी पूनी मेरे खाते में जमा और समय मिलने पर कताई कर उतनी पूनियों का हिसाब करूंगा। यह निश्चय भी ठीक रहा और मैं, अपने आप को थोड़ा अधिक काबिल बना पाया। मेरे इस निर्देशन से शिक्षकों और सेवकों में कोई परिवर्तन आया हो, ऐसा मुझे नहीं लगा, परंतु एक बात अवश्य हुई। बड़ी संस्थाओं में ध्येय व मूल्य के प्रति निष्ठा संपूर्ण संचालक वर्ग के व्यवहार से ही हासिल की जा सकती है और मेरा यह अनुभव रहा है कि बड़ी संस्थाओं में संचालक वर्ग पूर्णतया निष्ठावान नहीं है।

बड़ी संस्थाओं में मूल ध्येयों पर निष्ठा से चलने में एक ओर बाधा आ खड़ी हुई है। संस्थाओं की कद में वृद्धि का कारण कार्य के दायरे का बढ़ाना और बड़े बजट का होना है। कर्मचारियों की संख्या बढ़ जाने से औपचारिकता का प्रवेश होता है। स्वयं-सेवक वेतनभोगी हो जाते हैं और उनकी अपेक्षाएं भी सरकारी या अर्द्धसरकारी संस्थानों में काम करने वाले नौकरी पेशा वर्ग जैसी हो जाती है। कर्मचारी की ऐसी मानसिकता और संचालकों में मूल्य-निष्ठ व्यवहार की कमजोरी मिलकर संस्था को मूल उद्देश्यों से च्युत कर देती है। कद्दावर संस्थाओं को कद दिलाने में पैसों की भूमिका बड़ी रही है। अक्सर संस्थाओं ने सरकारी कार्यक्रमों में शामिल होना तय किया और अपनी संस्थाओं को अनुदानित संस्था बना दिया। सरकारी पैसा आने से संस्था का सरकारीकरण हो जाता है और संस्था सरकारी नौकरशाही की धौंस में आ जाती है तथा उनके कर्मचारी भी कर्त्तव्य पालन के मामले में सरकारी रवैया अपनाने लगते हैं। सरकार कर्मचारियों को काम पर रखने के लिये सरकार सरकारी नियमों को पालने को बाध्य करती है। संस्था अपनी

स्वायत्तता खोने लगती है। अपने देश में ऐसा भी हुआ है कि आजादी मिलने के बाद करीबन पहले पच्चीस सालों तक सरकारों ने गांधीविचार की संस्थाओं की स्वायत्तता को बरकरार रखा, परंतु सरकारी अनुदान लेकर उसे तय कार्यक्रम और ध्येय के लिए उपयोग करने में संस्था के संचालकों ने सावधानी नहीं बरती। इतना ही नहीं, संचालकों ने हमेशा योग्य, निष्ठावान और कार्यक्षम कार्यकरों का चयन नहीं किया। ट्रस्टी ओर बड़े पद पर आसीन लोगों ने अपनी सत्ता के उपयोग से अपने नजदीकी अयोग्य, और नाकारा लोगों चयन करवा देते हैं और इससे संस्था कमजोर बनती है। पैसे का भी मनमाना उपयोग किया गया। नतीजा यह हुआ कि सरकार ने अपना अंकुश बढ़ाया और संस्थाओं ने अपनी स्वायत्तता खोई।

आज ऐसी संस्थाओं में यह आम अनुभव है कि सरकारी अनुदान से तनख्वाह पाने वाले कर्मचारी को जब संस्था के ध्येय व मूल्य के मुताबिक व्यवहार करने को कहा जाता है, तो उसका यह प्रतिभाव होता है कि वो तो एक मुलाजिम मात्र है और नौकरी करने आया है, उसे गांधी मूल्यों से कोई सरोकार नहीं है और वह उस पर थोपे नहीं जाने चाहिये। ऐसी अवस्था में प्रशासन चलाने के दो तरीके हैं। एक वैधानिक तरीका जो कार्यकर को नियमबद्ध करता है। गुजरात विद्यापीठ में आरंभ से ही कर्मचारियों को सेवक कहा गया। शिक्षक भी सेवक और प्रशासन में कार्यरत भी सेवक। संस्था बड़ी हो गयी तो कर्मचारी नियमावली भी बनी। सरकारी अनुदान लेने की बाद भी विद्यापीठ की इतनी स्वायत्ता तो बनी ही रही कि काम पर रखने वाली विद्यापीठ ही होगी और वह नियम अपने से बना सकती है; बशर्ते कि वे सरकारी नियमों को अपने में समा रहे हों और वे सरकारी नियमों के विरुद्ध न हों। विद्यापीठ के अपने नियमों में खादी पहनना, प्रार्थना में नियमित शामिल होना, कताई करना वगैरह है। व्यक्ति व्यसनमुक्त होना चाहिए और हिंसा में विश्वास रखने वाला नहीं होना चाहिए, यह अपेक्षित है, इसे नियम में लाया नहीं जा सका है। अलग शब्दों में कहें तो विद्यापीठ के हर सेवक को गांधीजी द्वारा प्रतिपादित एकादश-व्रतों[2] का पालन करना चाहिए।

आज विद्यापीठ में कार्यरत सभी कर्मचारी गांधीजी के मृत्यु के बाद पैदा हुए हैं। 1950 के दशक में पैदा हुए लोगों की पौध भी अब सूख रही है। गांधीजी के समय की पीढ़ी बहुत मजबूती से मूल्य-निष्ठ जीवन जीने का निर्देशन शायद नहीं दे पाई और उसके बाद की पीढ़ियों से तो पतन तेज हुआ और कहीं-कहीं तो शतमुख विनिपात की स्थिति भी आई है। ऐसे में संचालक के पास वैधानिक नियमावली के हथियार के अलावा कुछ खास बचा नहीं है।

सभी संस्थायें गर्त में गई या जा रही है, ऐसा नहीं है। जिन संचालकों को गांधी-विचार की मूल बात पकड़ में आयी कि केन्द्र में व्यक्ति है और व्यक्ति का निरंतर प्रयास 'स्वराज'[3] प्राप्त करने के लिये होना चाहिए। जिन संस्थाओं में इस समझ के अनुरूप व्यवहार भी रहा उन संस्थाओं में अभी भी दमखम है। हालाँकि अब संख्या अति-सीमित हैं। पर सभी कद्दावर संस्थाओं के संचालक यह समझ लें कि गांधी-विनोबा के दर्शन आधारित समाज रचना के प्रयास का मूल मंत्र भी यही है। इस मौके पर विनोबा की एक बात को पकड़ना आवश्यक है। गांधी-विनोबा दर्शन पर आधारित संस्थाओं की पहचान क्या है? विनोबा ने कहा कि यह समाज की प्रयोगशालाएं हैं। जिस तरह विज्ञान की खोज प्रयोगशालाओं में होती हैं, वैसे ही यह समाज विज्ञान की खोज है। जैसे विज्ञान की प्रयोगशालाओं में प्रयोग के प्रोटोकोल या नवाचार का उल्लंघन कर के प्रयोग संभव ही नहीं, वैसे ही गांधी दर्शन पर आधारित संस्थाएं समाज विज्ञान की प्रयोगशालाएं हैं। अतः उन्हें चलाने के लिए बनाये गये नियम, प्रोटोकोल हैं, जिनके उल्लंघन से प्रयोग नहीं हो सकता। अतएव इस समाज विज्ञान की प्रयोगशाला की प्रत्येक इकाई याने व्यक्ति को उसी प्रोटोकोल के मुताबिक अपना व्यवहार रखना होगा, तभी दर्शन में रहे तत्व को हकीकत में उतारा जा सकेगा। फर्क सिर्फ इतना हैं कि विज्ञान की प्रयोगशाला में उपयोग में लाये जाने वाले सभी पदार्थ, द्रव्य या तत्व हैं यह मनुष्य के संपूर्ण अंकुश में है। समाज विज्ञान की प्रयोगशाला में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति निरंकुश हो सकता है और व्यवस्था तंत्र तब तक सफल नहीं होता जब तक, हर एक व्यक्ति अपने आपको अंकुश में नहीं रखे। दरअसल यही एक बड़ी शिक्षा है जो गांधी-विनोबा की हर संस्था में उनके जीते जी और उनके बाद कुछ समय दी जाती रही। आज इन संस्थाओं में इस मूल शिक्षा का अभाव होता जा रहा है। गांधी-विचार के दर्शन के अनुसार अपने ध्येय बनाकर समाज परिवर्तन के कार्य में जुटी संस्थाओं में कार्य करने वाले व्यक्ति अपने आप में निरंतर परिवर्तन में नहीं लगे हैं। यानि इन प्रयोगों में प्रोटोकोल या जरूरी नवाचार का पालन नहीं हो रहा है। यह बहुत बड़ी चुनौती है।

प्रोटोकोल का पालन नहीं किए जाने पर व्यवहार में आडंबर पैदा होता है और याद रहे कि इस प्रयोग के बाहर जो समाज है वो आपको बराबर निहार रहा है। वह इस आडंबर को जल्दी पहचान लेता है और फिर पूरे दर्शन का मखौल उड़ने लगता है। एक उदाहरण से बात को गहराई से समझा जा सकता है। सालों पहलें जब मैं, गुजरात विद्यापीठ से नहीं जुड़ा था, तब गांधी-विचार आधारित और शिक्षा में अपना मौलिक विचार रखने वाले गांधीजन नानाभाई भट्ट द्वारा स्थापित 'लोक भारती' संस्था में गया। साधन एक टैक्सी थी। आप सभी को विदित है कि गुजरात में संपूर्ण शराबबंदी है, बावजूद इसके जब मैं, गंतव्य पर पहुंचा, कि टैक्सी चालक ने पूछा-

'सर ओर कोई व्यवस्था कर दूं, मेरे पास हमेशा इंतजाम रहता है।'

मैंने आश्चर्य से पूछा, 'क्या व्यवस्था?'

कहा, 'वो ही सर बोतल वगैरह....'

मैंने कहा, 'आप जानते हो कि यह गुजरात है और मैं, पीनेवाला लगता हूं?'

बोला, 'आपने खादी पहनी है इसलिये...'

आजादी के बाद नेताओं ने खादी के पहनावे को भी नहीं छोड़ा, यही एक निशानी रह गई है अपने को गांधी के करीब का साबित करने की। शुक्र है, कि गांधी का काम करने वाली युवा पीढ़ी के लोगों ने इस लिबास को छोड़ दिया, नहीं तो हमने अपने समय के पवित्र कपड़े को सत्ता लोलुप और हर तरह से गिरे हुए सार्वजनिक नेताओं की पोशाक बना दिया है। यहीं पर 1942 की एक घटना भी स्मरण करने के काबिल है। 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय मुंबई के अगस्त क्रांति मैदान की सभा के बाद पुलिस ने गिरफ्तारियां शुरू कर दी। गांधी जी, कस्तूरबा और उनके मुख्य सहयोगी तो सभा से पूर्व ही पकड़े जा चुके थे। मैदान में हो रही गिरफ्तारियों में एक महिला भी थी। उसने पुलिसवालों को दो मिनट रोका और जो गहने पहन रखे थे, उसे उतार कर अपने एक रुमाल में बांध कर, एक गठरी बनाई और इधर-उधर देखा। एक नौजवान को घर का पता दे कर गठरी घर पहुंचाने को कहा। युवा दिग्मूढ़, उसने कहा कि 'मैं तो आपको जानता नहीं', उस महिला ने कहा कि 'भाई तुम खादी जो पहने हो!' 1942 के काल में सामान्य जनता भी प्रोटोकोल के अनुसार व्यवहार में थी।

इस संदर्भ में एक ओर बात बता दूं। आजादी के बाद समाज की मुख्य धारा तो कहीं ओर चल दी पर समाज की एक नजर अब भी गांधी-विचार की संस्थाओं पर है। विद्यापीठ में मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव कई बार हुआ है। विद्यापीठ के परिसर में देशी शराब की प्लास्टिक की खाली थैलियां और कभी-कभी शराब की खाली बोतल के समाचार अखबार में छपते। विद्यार्थियों के बीच कभी-कभी रॅगिंग या मांस-मछली पका कर खाने की बात जैसे ही होती, तो सारा अखबारी आलम और टीवी वाले कुलनायक को घेर लेते। मैंने, एक बार उनसे कहा कि यह सभी तो वर्तमान समाज से हैं और अन्य विश्वविद्यालयों की तुलना में विद्यापीठ में कभी कभार ही ऐसी घटनाएं होती है, तो आप लोग हमें क्यों सूली पर चढ़ा देतें हो? ज्यादातर पत्रकार तो इन घटनाओं को सनसनीखेज पुटेज देकर प्रस्तुत करना चाहते थे। पर एक संजीदा पत्रकार ने कहा कि सारा समाज ही पतनोन्मुखी है, ऐसे में विद्यापीठ जैसी गिनी-चुनी संस्थाएं ही तो रह गई हैं, जहां गांधी जैसा व्यक्तित्व मिलने के आसार रहते हैं, इसलिये हम चिंतित हो जाते है। इस उदारहण से भी स्पष्ट है कि गांधी-विचार के दर्शन पर चलने वाली संस्था बड़ी हों या छोटी, जवाबदारी तो पक्की ही बड़ी है, वह आज भी समाज की नजर में समाज परिवर्तन की प्रयोगशालाएं हैं और प्रोटोकोल का महत्व बहुत ज्यादा है।

गांधी-विचार की बड़ी संस्थाओं के संचालन में एक ओर मुद्दा है कार्यालय और काम में समय पालन। समय पालन को लेकर गांधी जी का आग्रह तो खूब जगजाहिर है। कांग्रेस के गोधरा सम्मेलन के एक सत्र में लोकमान्य तिलक कुछ देर से पहुंचे, तो गांधी जी ने चुटकी लेते हुए कहा था, कि देश को आजादी मिलने में भी उतनी देर होगी और तिलक महाराज उसके जिम्मेवार होंगे। गांधी जी तीस जनवरी 1948 को भी शाम की प्रार्थना के लिए हुए विलंब को लेकर बहुत विचलित थे। विद्यापीठ में समय पालन करवाना तो बहुत बड़ा मुद्दा रहा है। मैं, कुलनायक, समझने और समझाने के पक्ष में और हमारे प्रशासक-कुलसचिव नियमों को कठोर बनाने के पक्ष में। वे अपने अनुभव से अपनी बात रखते थे। मैंने, कई कोशिशें की। अनियमित कर्मचारियों को व्यक्तिगत तौर पर बुलाकर शर्म महसूस करवाई, समझाया और मनाया भी। पर उससे बात कम बनी। आखिरकार, प्रशासक के सुझाव को माना कि महीने में तीन दिन देर हुई, तो आधी छुट्टी कट जायेगी। कुछ प्रभाव हुआ पर फिर वही ढ़ाक के तीन पात। पर अब यह सभी तरीके पुराने हो चुके हैं। मनुष्य अब मनुष्य से सीधी बात नहीं करता। बीच में मशीनों को डाल दिया गया है। मशीनें गजब हैं और कारगर भी। मशीन से शरीर तो अंकुश में आ जाता है, पर मन का क्या? विद्यापीठ में जब सभी मानव संभव तरीकों ने जवाब दे दिया, तो समय पालन के लिये बायोमेट्रिक्स साधन लगाने का सुझाव आया। हर एक कर्मचारी को अपना अंगूठा लगाना होगा, तब उसकी हाजरी दर्ज हो जाएगी और समय भी सेकेंडों में छपेगा। प्रशासन यह सुझाव लेकर मेरे पास आया। मुझे इस सुझाव में गांधी हारता हुआ नजर आया। गांधी-विचार और दर्शन पर चलने का पक्का ध्येय रखने वाली संस्था अपने प्रशासन से अपना मानवीय स्पर्श खो दे तो रह क्या गया? संस्था चले ही क्यों? इसे सामान्य संस्था ही कह दिया जाए, तो कम से कम गांधी जी की छाप तो निकल जाए। मैंने समझाया, पद का दबाव भी डाला और इस सुझाव को नकारा। मेरे पद से निकलने के बाद 2018 के अंत तक तो यह जद्दोजहद चलती रही और अब विद्यापीठ में बायोमेट्रिक्स लग गया है। यहां भी गांधी को हम समझ नहीं पाए, सिर्फ प्रशासन ही जवाबदार है ऐसा मैं, कतई नहीं कहूंगा, हर एक कर्मचारी इसके लिए जवाबदार है, न वह अपनी जवाबदारी ले सकता है और न ही अपने साथी की। दुखःद तो यह है कि गांधी-दर्शन पर चलने का ध्येय रखने वाली इस विद्यापीठ के शिक्षकों में से एक-दो को छोड़ कर किसी ने यह मुद्दा चर्चा योग्य भी नहीं समझा। क्या अब यह संस्था गांधी मूल्य सिखा पायेगी? इस बात को भूल जाना चाहिए। यह भी उच्च शिक्षण की एक और संस्था बन गई है, जिसमें गांधी के विचारों को कहीं-कहीं पढ़ाया जाएगा। उसे जीने की कोशिश करने की जवाबदारी शिक्षक/कर्मचारियों की नहीं रही। विद्यार्थी तो दूर की बात हो गए।

उपरोक्त मुद्दे के संदर्भ में एक ओर जुड़ा हुआ मुद्दा है वो है विश्वास का। गांधी-दर्शन पर चलने वाली संस्थाओं मे काम करने वाले सेवकों को एक-दूसरे के प्रति विश्वास होना प्राथमिक शर्त है। अंग्रेजी में अच्छा पद है ट्रस्ट डेफिसिट – विश्वास का घाटा। बड़े कद की संस्थाओं में विश्वास का घाटा बढ़ गया है। विश्वास के मूल में प्रेम है। प्रेमबल ही चालक बल है। हिंद-स्वराज में गांधी जी ने सत्रहवें अध्याय में सत्याग्रह और आत्मबल की बात कही है। उसका चालक बल प्रेम है। गांधी जी ने तुलसी को उद्धृत किया-

दया धर्म का मूल है, देह मूल अभिमान।

तुलसी दया न छोड़िए, जब लग घट में प्रान॥[4]

अपने ही द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवाद में दया को लव-फोर्स कहा। यानि प्रेमबल। इस प्रेमबल के जरिये ही सत्याग्रह संभव है। सत्याग्रह का हमने सीमित अर्थ कर दिया कि यह तो एक समूह का दूसरे समूह के प्रति या जनता का राज्य के प्रति ही सत्याग्रह हो सकता है। संस्था के संचालन में इस सत्याग्रह का या प्रेमबल के उपयोग का कोई स्थान ही नहीं है। विश्वास का घाटा, इसलिये भी हुआ चूंकि संबंधों में औपचारिकता आ गयी। मानवीय संबंध न होने पर मतभेद, मनभेद में बदल जाता है। लगता है, गांधी-दर्शन के आधार पर काम करने वाली संस्थाओं ने यह पाठ भुला दिया है। बड़ी संस्थाओं ने पदानुक्रमिक व्यवस्था खड़ी कर दी है और हर एक उपरी पदों पर अपने विश्वासपात्र मातहतों की श्रंखला चाहते हैं। मातहत अगर भिन्नाभिप्राय देते हैं, तो उसे मतभेद के तौर पर समझ कर वहां रोक नहीं दिया जाता। मन-मुटाव दोनों पक्षों में आ जाता है। वहां से मनभेद शुरू होता है और शुरू होती है गुटबाजी। फिर चलती है रणनीतियां और यहीं से राजनीति प्रवेश करती है। दुखःद तो यह है कि इसमें पक्षीय राजनीति से लेकर जातिवाद और धर्मवाद तक प्रवेश कर जाता है। गांधी हारने लगता है। मानवीय संबंध फाईलों पर अमानवीय रूप धारण करते हैं। प्रेमबल का शनैः शनैः स्वाह होता है। विश्वास का घाटा बढ़ने लगता है। गांधी-दर्शन के विपरीत यह व्यवहार दर्शन पैठ जाता है। गांधी-विचार पर चलने वाली बड़ी संस्थाओं में यह दोष अंतरतम स्तर तक चला गया है।

गांधी जी आम लोगों में से थे और आम लोगों के लिये थे। यह बात उन्होंने बार-बार कही है। परंतु, गांधी जी को संत बना दिया गया। संस्थाएं उनके नाम से चलती है, पर उनके मार्ग पर नहीं। गांधी के उत्तर काल में इस गांधी-विचार के मूल मंत्र को भुला दिया गया है। गांधी-विचार की संस्थाओं में भी आधुनिक संचालन और प्रबंधन के तरीकों को अपनाने के प्रयास हो रहे हैं। संस्था संचालन को टेक्नोलॉजिकल उपाय अधिकतर समस्यों का समाधान करने में समर्थ और योग्य हैं, ऐसा विश्वास दिला दिया गया है। व्यक्ति के अपने व्यवहार को उसी की नैतिकता पर छोड़ कर उसे समष्टि के नियमों में टेक्नोलॉजी के उपाय से अंकुश में रखने के प्रयास को ही कुशल-प्रबंधन और संचालन की पद्धति स्वीकारी गई है। बहुतेरी संस्थाएं ऐसी कोशिश में जुटी है, जहां सारी टेक्नोलॉजी के साथ गांधी-दर्शन बच जाए। यह बुद्धिवान मूढ़ों का अहंकार है। इस ढ़ांचे में गांधी जी को संत बना देना और उनके सद्गुणों को आदर्श मूल्य मान कर, उसे उच्च मंच पर बैठा कर भूला देना, एक रणनीति है। इस रणनीति के अंतर्गत गांधी को मानना अनिवार्य है, उसके अनुसार व्यवहार का अभ्यास करते रहना अनिवार्य नहीं है। गांधी-दर्शन में पूर्ण श्रद्धा रखने वाली संस्थाओं को मूल दिशा में जाना होगा और अपनी संस्था का संचालन उसी के अनुसार करना होगा। यह एक चुनौती है, समय ही बता पाएगा कि हम कहां पहुंचेंगे। गांधी अपनी राह पर अडिग है और मानव जाति को पुकार रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता, अमिता, कुमार, आशिष, हैंडबुक ऑफ युनिवर्सिटी, भाग-1, अटलांटिक पब्लिशर्स दिल्ली-2006, पृ0 297
2. गांधी, महात्मा, अनु.- अमृतलाल, मंगल प्रभात, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1957, पृ0- परिशिष्ट
3. कौशिक, आशा, गांधी नई सदी के लिए, रावत पब्लिकेशन, जयपुर-2000, पृ0 130
4. गांधी, महात्मा, अनु0- अमृतलाल, हिन्दस्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1959, पृ0 61

●

वर्तमान समय में महात्मा गांधी के विचारों की स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रासंगिकता

शैलेश कुमार, प्रो. गोविन्द नारायण श्रीवास्तव** एवम् प्रो. आनन्द प्रसाद मिश्र****

''यह स्वास्थ्य ही है जो हमारा सही धन है, सोने और चाँदी का मूल्य इसके सामने कुछ नहीं''- गाँधीजी

मोहनदास करमचन्द गांधीजी का जन्म पश्चिमी भारत में वर्तमान गुजरात के एक तटीय शहर पोरबंदर नामक स्थान पर 2 अक्टूबर 1869 को हुआ था। गांधीजी की मृत्यु 30 जनवरी 1948 को नई दिल्ली के बिरला भवन में हुई थी। वर्तमान समय में जीवन की नगरीय शैली, जहाँ पर दिन और रात के बीच फर्क करना मुश्किल सा लगता है वहाँ पर महात्मा गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता खासकर स्वास्थ्य के क्षेत्र में बड़ी कीमती प्रतीत होती है क्योंकि गांधीजी स्वास्थ्य को ही सही धन मानते थे, आज कई रोग ऐसे हैं जो की व्यक्तियों के गलत खान-पान और रहन-सहन से पैदा हो रहे है, जो कि व्यक्ति के जीवन शैली से ही निसृत हो रहे है जैसे कि मोटापा। इन्होंने अनुशासित जीवन और शारीरिक गतिविधियों के साथ ताजी सब्जियों और फलों का सेवन, शर्करा, नमक और वसा वाले खाद्य पदार्थ का कम सेवन, तम्बाकू और शराब के सेवन से बचना, पर्यावरणीय स्वच्छता और व्यक्तिगत स्वच्छता बनाएं रखने के महत्व को प्रासंगिक बतलाया। वर्तमान में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जारी की गई सलाह जो कि गैर-संचारी रोगों के साथ-साथ संचारी रोग के लिये भी है, जो कि अच्छे स्वास्थ्य के सिद्धान्त हैं, महात्मा गांधीजी ने एक सदी पहले ही इसका प्रचार किया था जो कि आज के दौर में भी प्रासंगिक है। अनुशासित जीवन के साथ रहना और ध्यान के साथ शारीरिक फिटनेस जो की जीवन शैली के रोगों जैसे मानसिक स्वास्थ्य और युवा से सीधा जुड़ाव है। गांधीजी पर्यावरण, जीवन शैली, बीमारियों और सामाजिक व्यवहार के बीच अन्तर्सम्बन्ध को दर्शाते हैं, समस्याओं का उनका समाधान हमेशा सरल और व्यवहारिक था जैसे कि पैदल चलना और प्राकृतिक खाद्य पदार्थ का सेवन करना जो कि वर्तमान समय में गैर-संचारी रोगों (मधुमेह, कैंसर और हृदय-संबंधी बीमारियों) के निवारक में सहायक है और उनका यह विचार हमारे लिए एक अनुस्मारक (रिमाइंडर) है। संचारी रोग (कम्युनिकेबल डिजीज) के क्षेत्र में, गांधीजी ने मच्छरों और मलेरिया के प्रजनन को रोकने के लिये उपाय के रूप में मच्छर प्रजनन स्थलों को खत्म करने और पानी के कंटेनरों की नियमित निगरानी के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने ऐसे तरीकों को क्विनिन की गोलियों के वितरण से अधिक प्रभावी माना। गांधीजी ने कुष्ठ और तपेदिक जैसे रोगों के उन्मूलन की मांग कि जो संक्रमित लोगों के अलगाव के माध्यम से कलंक और अस्पृश्यता को जन्म देते हैं।[11] उन्होंने हाइजीन और स्वच्छता के महत्व को जो की (हैजा, मलेरिया, डेंगू, क्षयरोग और लेप्रोसी) से सीधा सम्बन्धित है को बतलाया। यह लेख स्वास्थ्य पर गांधीजी के विचारों का मूल्यांकन और वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता का वर्णन करता है। स्वास्थ्य पर गांधीजी के दर्शन का सम्मान करना न केवल वर्तमान समय में समाज के लोगों की स्वास्थ्य और जीवन-स्तर, में सुधार पर बल देगा बल्कि उनके जीवन शैली को अनुशासित और पुरस्कृत करने में सहयोग करेगा और इसके साथ ही साथ संयुक्त राष्ट्र संघ के सतत विकास लक्ष्य, 4वें लक्ष्य (अच्छा स्वास्थ्य और जीवन स्तर, सभी को स्वस्थ जीवन और सभी के जीवन स्तर में सुधार लाना) को प्राप्त करने में हमारी मदद करेगा। यदि हम अपने आस-पास के वातावरण को साफ रखते है, स्वच्छता बनायें रखते है और उचित आहार के साथ सन्तुलित जीवन जीते है, तो हम कई बीमारियों से अपने आप को आसानी से बचा सकते है। उन्होंने अपने आहार और भोजन के साथ इसका प्रयोग किया और शारीरिक गतिविधियों के महत्व को बतलाया। उन्होंने शाकाहार का भी अभ्यास किया और वे तम्बाकू और शराब के खिलाफ थे। शराब के सेवन का प्रभाव न केवल वित्तीय हानि, बल्कि नैतिक तौर पर भी नुकसान को बतलाया। गांधीजी की पुस्तक ''स्वास्थ्य की कुंजी'' (Keys to Health) उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों में से एक है जो कि स्वास्थ्य के बारे में उनके विचारों के महत्व पर प्रकाश डालती है। ''गांधीजी अपनी युवावस्था में डॉक्टर बनना चाहते थे। उनके भाई ने आपत्ति की तथा इनके पिता शवों के विच्छेदन के विरोध में थे तथा पिता चाहते थे कि मोहनदास को बार की तैयारी करनी चाहिए।[1] जब गांधीजी को रुढ़िवादी एलोपैथिक चिकित्सा के चिकित्सक बनने से रोका गया, इसके बावजूद उन्होंने अपनी रुचि के अनुसार चिकित्सा और स्वास्थ्य पर कई पुस्तकों का अध्ययन किया और जीवन भर उन्होंने पोषण और चिकित्सा के क्षेत्र में कई प्रयोग किए'' (op. cit., 1971, p.2)। इन्होंने स्वास्थ्य पर अपने अध्ययन और प्रयोग के आधार पर एलोपैथ चिकित्सा पद्धति को अप्रासांगिक मानते थे तथा आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा (नेचुरोपैथी) को प्रासंगिक बताया (op. cit., 1979, p.3)। कुदरती इलाज (नेचर क्योर) पर गांधीजी

* शोधार्थी, भूगोल विभाग, विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, तपेदिक और श्वसन रोग विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
*** प्रोफेसर, भूगोल विभाग, विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दो महत्वपूर्ण पुस्तकों से प्रभावित थे, पहली पुस्तक लुडविग कुनै की 'द न्यू साइंस सॉफ हीलिंग' और दूसरी पुस्तक एडोल्फ जस्ट की 'रिटर्न टू नेचर'। समय के बीतने के साथ-साथ गांधीजी का विश्वास कुदरती इलाज की तरफ बढ़ता गया। उनका मानना था कि रोग, प्रकृति से मनुष्य के विलगाव का प्रतिफलन है और इसको बहाल करने के लिये केवल एक स्थायी तरीका है वह यह कि प्राकृतिक शक्तियों के साथ अपने जीवन का पुनर्निर्माण करना या सामंजस्य बनाए रखना। गांधीजी कहते है कि सबसे पहले हमें स्वास्थ्य शब्द के अर्थ को जानना चाहिए, जिसका मतलब है शरीर की सहजता। एक स्वस्थ व्यक्ति, वह होता है जिसका शरीर बीमारी से मुक्त हो और वह बिना किसी थकान के अपनी सामान्य गतिविधियों को कर सके। गांधीजी कहते थे कि हर व्यक्ति को अपने शरीर के बारे में ज्ञान होना जरूरी है, जिसके बारे में अधिकांश व्यक्ति अनभिज्ञ हैं (A Guide to Health, pp. 9-10)। उन्होंने बताया कि प्राचीन दार्शनिकों के अनुसार, मानव शरीर का निर्माण पंच तत्वों (पृथ्वी, जल, आकाश (ईथर), प्रकाश और वायु) से मिलकर बना है। गांधीजी ने उद्घाटित किया की शरीर में इन पंच तत्वों का अच्छे स्वास्थ्य के साथ सामंजस्य जरुरी है। पहला तत्व हवा है, जो कि हमें चारों तरफ से घेरा हुआ है और इसके बिना हम मानव जीवन की कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। गांधीजी कहते हैं कि जो लोग साँस लेना नहीं जानते, उन्हें साँस सही तरह से लेने की कवायद करनी चाहिए और इसके साथ ही साथ, वह खुले आसमान के नीचे सोने के महत्व को भी बताते हैं। दूसरा तत्व जल जिसे जीवन की बुनियादी जरुरत बताते हैं इसके साथ ही साथ स्वच्छ और साफ जल की भी बात करते हैं जो कि स्वस्थ शरीर के विकास के लिये अति आवश्यक है। तीसरा तत्व पृथ्वी जिसका उपयोग प्राकृतिक तरीके से रोगों के इलाज में किया जा सकता है। चौथा तत्व प्रकाश है जो की सीधे हमें सूर्य से प्राप्त होता है, इसके कई प्रयोग गांधीजी बताते हैं जैसे कि सूर्य स्नान और अंतिम तत्व आकाश जिसे (ईथर) भी कहा जाता है जिससे कि स्वास्थ्य को बनाएं रखने और पुनः प्राप्त करने में हमारी मदद करता है। इस प्रकार गांधीजी उपचार की कुदरती इलाज (नेचर-क्योर) विधियों के हिमायती थे। गांधीजी ने अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता के रूप में आध्यात्मिक शुद्धता पर बहुत बल दिया और कहा कि ''शरीर जिसमें रोगग्रस्त मन होता है वह कभी भी रोगग्रस्त हो सकता है''।[6] उनका मानना था कि मानव शरीर, मन और आत्मा को सरल नियमों के पालन से उत्तम स्वास्थ्य की स्थिति में बनाए रखा जा सकता है। उन्होंने सामान्य बीमार स्वास्थ्य के कारणों की खोज करने का प्रयास किया और कुदरती इलाज के तात्कालिक सरल उपचार को महत्व दिया। 1944 में उन्होंने पूना के समीप उरली ग्राम में एक कुदरती इलाज केंद्र (नेचर क्योर क्लिनिक) स्थापित किया, जो कि विशेष तौर पर निर्धन लोगों के लिए था क्यों कि उनके द्वारा महंगी दवाइयां और उपचार का वहन करना मुश्किल था, जिसमें कि गांधीजी के द्वारा अपने जीवन भर के प्राप्त अनुभवों (स्वास्थ्य और स्वच्छता के क्षेत्र में) से उनकी सेवा करना मानवता का सही धर्म समझा। मानव शरीर के उपयोग के बारे में गांधीजी कहते हैं कि ''दुनिया की हर वस्तु का उपयोग और दुरुपयोग किया जा सकता है और यह हमारे शरीर पर भी लागू होता है। वह कहते हैं कि जब हम इसका उपयोग अपने स्वार्थी उद्देश्यों के लिए करते है तब हम इसका दुरुपयोग करते है जिससे कि हमारे शरीर का ही नुकसान होता है। अगर हम आत्म-संयम बरतें और पूरी दूनिया में खुद को समर्पित कर दें तो इसका सही इस्तेमाल किया जा सकता है।'' गांधीजी ब्रह्मचर्य दर्शन को भी स्वास्थ्य के क्षेत्र के लिए प्रासंगिक बताते हैं और कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से व्यक्ति स्वस्थ जीवन को पाता है। यह जीवन के एक ऐसी विधा है, जिसमें ईश्वर की प्राप्ति होती है। बोध आत्म-संयम की अनुभूति के माध्यम से होता है। वह आगे कहते है कि यदि विचार और कार्य को नियंत्रित करने का दृढ़ संकल्प है, तो जीत निश्चित है। किसी कि पशुता की गुलामी करना शायद सबसे बुरा है। वह आगे कहते हैं कि ''चिकित्सा का वर्तमान विज्ञान धर्म से विलगाव करता है। एक व्यक्ति जो प्रतिदिन नमाज या गायत्री मे उचित भावना से भाग लेता है, उसे कभी भी बीमार नहीं होना चाहिए। एक स्वच्छ आत्मा, स्वच्छ शरीर का निर्माण करती है। मैं आश्वस्त हूँ कि आचरण के मुख्य नियम आत्मा और शरीर दोनों का संरक्षण करते है'' (Young India, February 28, 1921)। आयुर्वेद (भारतीय चिकित्सा पद्धति की प्राचीन प्रणाली) जो कि नैदानिक पद्धति और उपचार की विधियों दोनों मायने में एलोपैथ (चिकित्सा की पश्चिमी प्रणाली) से अलग है। यह वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा (नेचुरोपैथी) के निकटता से जुड़ा हुआ है क्योंकि यह व्रत और आहार के नियंत्रण जैसे उपायों का प्रयोग करता है और आयुर्वेद में बताई गई दवाइयों का निर्माण पेड़ों के पत्तियों, फलों, छालों और जड़ों से होता हैं। यह एलोपैथ द्वारा बताई गयी सभी प्रकार की रासायनिक दवाइयों और इंजेक्शनों को नियोजित नहीं करता है। गांधीजी को आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा के बीच समानता के बारे में पता था और उन्होंने आयुर्वेद द्वारा निर्धारित विभिन्न दवाओं में जीवंत रुचि ली।

गांधीजी का मानना था कि यदि हम अपने आस-पास के वातावरण को स्वच्छ रखते हैं, स्वच्छता बनाएं रखते हैं और उचित आहार के साथ संतुलित जीवन जीते हैं, तो हम आसानी से कई बीमारियों से बच सकते हैं। उनका मानना था कि अस्वच्छ शौचालय और खुले में शौच करने से बहुत सारी बीमारियाँ जन्म लेती हैं। इस लिए अस्वच्छता को वह एक बहुत बड़ी समस्या मानते थे। स्थितियों से गांधीजी इतने वाकिफ थे कि दक्षिण अफ्रीका और अहमदाबाद में समिति बनाई जहाँ वालंटियर नुक्कड़ सभा करके स्वच्छता के बारे में जागरुकता फैलाते थे और लोगों के घर-घर जाकर स्वच्छता की जाँच करते थे और उनको शिक्षित भी करते थे। हालाँकि इसे बनाएं रखना मुश्किल था, इसको देखते हुए, गांधीजी ने अपनी पुस्तक

''सोशल सर्विस, वर्क एंड रिफार्म'' खण्ड-1 में स्वच्छता से सम्बन्धित विभिन्न समाधानों की पेशकश की ताकि स्वच्छता बनायी रखी जा सके और उनके द्वारा प्रस्तुत सबसे अच्छा समाधान यह था कि प्रत्येक व्यक्ति को भंग्गी यानी स्वीपर बन कर खुद अपनी स्वच्छता करनी चाहिए और गांधीजी ने खुद इसका अभ्यास किया। महात्मा गांधीजी जो हाल ही में दक्षिण अफ्रिका से भारत लौटे थे और महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के निमंत्रण पर 1916 में बनारस आए और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास समारोह में शामिल हुए। 6 फरवरी, 1916 को दर्शकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि ''**स्वच्छता, राजनीतिक स्वतंत्रता की तुलना में कही अधिक महत्वपूर्ण हैं।**'' आयुर्वेद के साथ-साथ स्वस्थ शरीर को प्रभावित करने वाले और अन्य पहलुओं पर जैसे पोषाहार और सार्वजनिक स्वच्छता के विषय पर इनकी गहरी दिलचस्पी थी। उस समय की स्वच्छता की स्थिति के बारे में कहते हैं कि भारतीयों में आज तक सार्वजनिक स्वच्छता की भावना का अभाव है, यदपि इन्होंने इसके महत्व की सराहना करने के लिए बहुत समय समर्पित किया, लेकिन वे इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर देश की चेतना को प्रभावित नहीं कर सके।[1] राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने देश को गुलामी से तो मुक्त कराया परन्तु 'स्वच्छ भारत' का उनका सपना पूरा नहीं हो पाया। स्वच्छ भारत के सपने को पूरा करने के लिए भारत सरकार द्वारा 2 अक्टूबर, 2014 को 'स्वच्छ भारत अभियान' की शुरुआत की गई। अभियान का लक्ष्य 2 अक्टूबर, 2019, महात्मा गांधी के जन्म की 150वीं वर्षगांठ तक ग्रामीण भारत को खुले में शौच मुक्त (ओडीएफ) को हासिल करने का लक्ष्य रखा है जो कि महात्मा गांधीजी के स्वच्छ-भारत और स्वस्थ-भारत के सपने को पूरा करेगा और इसके साथ ही साथ संयुक्त राष्ट्र संघ के सतत विकास लक्ष्य, 6वें लक्ष्य (साफ जल और स्वच्छता, सभी के लिए स्वच्छ जल और स्वच्छता की उपलब्धता और उसका टिकाऊ प्रबंधन सुनिश्चित करना) को प्राप्त करने के लिये सराहनीय प्रयास है।

गांधीजी का मानना था कि अत्यधिक और बार-बार भोजन, स्टार्च और शर्करा युक्त भोजन का अति सेवन अस्वास्थ्यकर और बीमारियों का कारण है। उन्होंने यथासंभव मिठाई से बचने और कम मात्रा में गुड़ का सेवन करने का सुझाव दिया। उन्होंने चावल की पोलिशिंग या गेहूं के रेनिंग के पक्ष में नहीं थे। वह अनाजों में से भूसी या पेरिकारप को हटाने के पक्षधर नहीं थे, वे इसे लवण और विटामिन का एक समृद्ध स्रोत मानते थे, दोनों पोषण के दृष्टिकोण में बहुत मूल्यवान है। इनके अनुसार पौष्टिक आहार अच्छे स्वास्थ्य की कुंजी है। इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आईसीएमआर) की विशेष अंक (गांधीजी और स्वास्थ्य @150) पर, नेशनल इंस्ट्रियूट ऑफ नुट्रीसन (एनआईएन), हैदराबाद के विशेषज्ञ सुब्बाराव एम. गवारावारापू और आर. हेमालाथा ने बताया कि ''गांधीजी के द्वारा बताये गये पोषण पर विचार, यह सब पोषण पर वर्तमान सिफारिशों के अनुरुप है।'' ''गांधीजी ने आहार में वसा/तेल को शामिल करने की आवश्यकता को पहचाना। आज भी, एनआईएन द्वारा विकसित आहार दिशा-निर्देशों का सुझाव है कि कुल दैनिक कैलोरी का लगभग 10 प्रतिशत विजिबल (visible) वसा से मिलना चाहिए।

महात्मा गांधीजी ने लोगों को निवारक और प्रचारक स्वास्थ्य का सन्देश देने के लिए एक परिवर्तनकारी भूमिका का निर्वहन किया। स्वास्थ्य के नियमों के पालन से बीमारी को रोकना कहीं अधिक और सुरक्षित है, क्योंकि यह बीमारी हमारे स्वयं के अज्ञान और लापरवाही से उत्पन्न होती है, इसीलिए यह सभी विचारशील मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे स्वास्थ्य के नियमों को समझें।[3] मिल्टन कहते हैं, कि ''मन, स्वर्ग को नरक या नरक को स्वर्ग बना सकता है। इसीलिए स्वर्ग बादलों के ऊपर और नरक धरती के नीचे कहीं भी नहीं हैं। संस्कृत में उद्धृत, एक श्लोक-मन एवम् मनुष्यानाम, करणंबंधा-मोक्षायण। बंधाया विसयासंगो मुक्तयै निर्विसायम मनः।। जिसका अर्थ है कि, मनुष्य की कैद या स्वतंत्रता उसके मन की स्थिति पर निर्भर है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक व्यक्ति स्वस्थ या अस्वस्थ है, यह खुद पर निर्भर करता है। व्याधि (Illness) न केवल हमारे कार्यों का बल्कि हमारे विचारों का भी परिणाम है, जैसा कि एक प्रसिद्ध चिकित्सक ने कहा था कि बीमारियों (जैसे चेचक, हैजा और प्लेग) के डर से ही बहुत सारे लोग मर जाते है न कि जो इन बीमारियों से प्रभावित होते है।[3] जॉर्ज बर्नार्डशॉ ने एक बार उद्घाटित किया ''जीवन अपने आप को खोजने के बारे में नहीं हैं, बल्कि जीवन अपने आप को सृजन करने के बारे में हैं।'' यह गांधीजी के लिए प्रासंगिक है क्योंकि वे जो उपदेश देते थे, उसका अभ्यास खुद ओ किए होते थे, इसके लिए उन्होंने बदलाव की शुरुआत खुद से ही शुरु की थी। उनका मानना था कि ''जो बदलाव आप दूसरों में देखना चाहते हैं, वह बदलाव पहले अपने आप में लाइए।'' उनका जीवन एक खुली किताब थी, वह कहते थे कि, 'मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है।' गांधीजी पेशेवर तौर पर चिकित्सक न होने के बावजूद भी निर्धनों, दलितों और हाशिए के लोगों की पीड़ा को कम करने के लिए उनका जुनून, समर्पण और प्रतिबद्धता अभूतपूर्व थी। इन्होंने मानवीय मूल्यों को पुर्नपरिभाषित किया और एक ऐसी प्रणाली विकसित कि जो नयी, आत्मनिर्भर, सस्ती और पुरस्कृत थी।[9] वर्तमान समय में भारत जैसे विकासशील देशों के लिए गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता खासकर स्वास्थ्य के क्षेत्र में और आज के बदलते दौर में बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। यदि हम किसी भी विकासशील देश के लिए सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज की बात करते हैं तो, गांधीजी वक्त की जरुरत महसूस प्रतीत होते हैं। हाल ही में भारत सरकार द्वारा स्वास्थ्य के क्षेत्र में उठाएं गए कदम जैसे- आयुष्मान भारत या प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (पीएम-जेएवाई), पोषण के क्षेत्र में (राष्ट्रीय पोषण मिशन) और टीकाकरण के क्षेत्र में (मिशन इन्द्रधनुष) जो कि नये भारत (न्यू इंडिया) के निर्माण के लिये एक सराहनीय प्रयास है। गाँधीजी के स्वस्थ्य भारत के सपने को पूरा करेगा।

वर्तमान समय में गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता स्वास्थ्य के क्षेत्र विशेष तौर पर आयुर्वेद और कुदरती इलाज (नेचुरोपैथी) के सन्दर्भ में उपेक्षित सी प्रतीत हो रही है जिस पर विशेष ध्यान देने की जरुरत है। निहित स्वार्थों की शक्ति और हमारी राष्ट्रीय हीनता दोनों ने मिलकर चिकित्सा की एलोपैथिक प्रणाली की असंगति के मिथक को बनाया और बढ़ावा दिया।[1] सन् 1977 में भारत के तत्तकालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने उद्घाटित किया था कि सार्वजनिक क्षेत्र का 99 प्रतिशत आवंटन एलोपैथ को जाता हैं यद्यपि आयुर्वेद और कुदरती इलाज (नेचुरोपैथी) जो कि भारतीय परिस्थितियों के लिए बहुत ही प्रभावशाली और अनुकूल हैं, उसकी उपेक्षा की जा रही है।[1,10] अगर हम गाँधीजी के विचारो का अमल स्वास्थ्य के क्षेत्र में करना चाहते हैं तो देश की स्वास्थ्य नीति में बदलाव समय की जरुरत है जिससे की इस पुरानी भारतीय चिकित्सा की प्रणाली से ज्यादा से ज्यादा लोग लाभान्वित हो सके।

सन्दर्भ सूची

1. Charles, Koipillai J. (1979), Gandhi's Views on Health, Journal of Religion and Health, 18 (1).
2. Gandhi and Health@150, (2019). Indian Journal of Medical Research Published by Indian Council of Medical Research, New Delhi, India.
3. Gandhi, M.K., (1906) "A Guide to Health" translated from Hindi by Iyer, A Rama, S. Ganesan, Publisher, Triplicane, Madras, (C.E.)
4. Gandhi, M.K., (1927. "An Autobiography or the Story of My Experiments with Truth," Navajivan, Publishing House, Ahmedabad, India.
5. Gandhi, M.K., (1949). "Diet and Diet Reform", Navajivan, Publishing House, Ahmedabad, India.
6. Gandhi, M.K., (1948). "Keys to Health", Navajivan, Publishing House, Ahmedabad, India
7. Gandhi, M.K. "Nature Cure" edited by Kumarappa, Bharatan, Navajivan Mudranalaya Ahemdabad, India
8. Gandhi, M.K. (1976). "Social Service, Work and Reform", Navajivan, Publishing House, Ahmedabad, India, Vol-1
9. Rajnikant, Bharagava, Balram & Nadda, J.P., 2019). "Editorial" Indian Journal of Medical Research by ICMR.
10. The Hindu, 26 July, 1977
11. The Hindu Bussiness Line, 28 March, 2019

●

महात्मा गाँधी का शिक्षादर्शन एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता

डॉ0 विजय कुमार सिंह एवम् डॉ0 माया सिंह***

भारतवर्ष के ऋषि परम्परा में 2 अक्टूबर सन् 1869 ई0 में पोरबन्दर, गुजरात में एक ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ जिन्हें हम महात्मा गाँधी के नाम से जानते हैं। सक्रिय समाज सुधारक, महान आध्यात्मिक चिन्तक एवं दार्शनिक, योग्य शिक्षाशास्त्री की भूमिका में गाँधीजी ने देश के नवनिर्माण एवं नवीन युगचेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राधाकृष्णन के अनुसार, ''वे अतीत एवं भविष्य की देहली पर थे, उनमें अतीत के युगों का समन्वय तथा भावी युगों के निर्माण करने की नवशक्ति थी। जो नया युग इस समय पैदा हो रहा है, वे उसके जनक हैं।[1]

महात्मा गाँधी ने राजनैतिक, सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में जिस नवीन विचारधारा को स्थापित किया, संपूर्ण विश्व उसे 'गाँधीवाद' के नाम से जानता है। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त वर्तमान में भी पूरी मानवता को नेतृत्व प्रदान कर रहे हैं।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में ऐसे महान युगपुरुष दार्शनिक, समाज सुधारक, राजनीतिवेत्ता एवं शिक्षाशास्त्री महात्मा गाँधी जी के शैक्षिक दर्शन एवं वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में उसके शैक्षिक निहितार्थ तथा प्रासंगिकता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के द्वारा अपनी राजनैतिक लड़ाई लड़ने वाले, छुआ-छूत जैसी सामाजिक बुराई को दूर करने वाले महान समाज सुधारक तथा बुनियादी एवं प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में गाँधी जी के विचार व्यावहारिकता के धरातल पर बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के सम्बन्ध में थे। गाँधी जी ने अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को पत्रिका के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाया जिसे हम ''बेसिक शिक्षा प्रणाली (वर्धा शिक्षा प्रणाली)'' के नाम से जानते हैं।

महात्मा गाँधी के शैक्षिक दर्शन का शिक्षा जगत में अप्रतिम स्थान है। माउन्टबेटन ने लिखा है, ''सारा संसार गाँधी जी के जीवित रहने से सम्पन्न था और उनके निधन से वह दरिद्र हो गया।''[2] गाँधी जी का शैक्षिक सिद्धान्त उनके दार्शनिक विचारों का व्यावहारिक प्रयोग था। उनके सारे विचार, जीवन दर्शन, जीवन में प्रयोग करके सामने आये हैं। गाँधी जी के संपूर्ण शिक्षा सिद्धान्त का मूलाधार यही है कि सत्य और करुणा के माध्यम से व्यक्ति और मानव समाज की सच्ची प्रगति संभव है। गाँधी जी ने बालक की प्रारंभिक शिक्षा सबसे सुंदर मौलिक रूप से ही देने पर बल दिया है।[3]

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। मात्र साक्षर होना शिक्षा नहीं है। ''साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न ही शिक्षा का प्रारम्भ, यह केवल एक साधन मात्र है जिसके द्वारा पुरुष और स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।''[4]

महात्मा गाँधी Head, Hand and Heart (3H) की शिक्षा देने के पक्ष में थे। अर्थात् उनका मानना था कि शरीर, मस्तिष्क तथा हृदय का विकास करना ही शिक्षा का लक्ष्य है। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए इन तीनों में सामंजस्य अत्यन्त आवश्यक है। शरीर के विकास से आशय बालक के स्वस्थ एवं रोगमुक्त तथा चुस्त-दुरुस्त शरीर से है। मानसिक विकास का आशय, कल्पना, चिंतन, तर्क, स्मरण, निर्णय, प्रत्यक्षीकरण आदि के विकास से है। हृदय के विकास का आशय है - बालक में प्रेम, सहानुभूति, परोपकार, दया, क्षमता, करुणा आदि का विचार विकसित करना है।[5]

गाँधी जी ने आजीवन सादा जीवन - उच्च विचार का संदेश दिया और सदैव इसका अपने जीवन में अनुपालन किया। वे शिक्षा के माध्यम से बालक के सर्वांगीण विकास पर बल देते थे। उन्हीं के शब्दों में, ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक एवं मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास से है।''[6] शिक्षा वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा बालक को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। इसलिए गाँधी जी ने हस्तकला तथा शिल्पकला को बेसिक शिक्षा का आधार माना तथा व्यावसायिक शिक्षा देने पर बल दिया। ''समस्त ज्ञान का उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना होना चाहिए। चरित्र के बिना पवित्रता और पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ है।''

''सच्ची शिक्षा वह है जो व्यक्ति में ईश्वर के प्रति आस्था की वृद्धि करती है, उसे कमजोर नहीं करती। शिक्षा का अंतिम उद्देश्य आत्म-अनुभूति है, ईश्वर के प्रति विश्वास, व्यक्ति को उपलब्धि प्राप्त करने की परिस्थिति पैदा करता है।''[7]

महात्मा गाँधी जी ने देश के लिए, तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए, एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की। एक शिक्षण पद्धति के रूप में इस योजना की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, टी0डी0पी0जी0 कालेज, जौनपुर
** असिस्टेण्ट प्रोफेसर, मनोविज्ञान, टी0डी0पी0जी0 कालेज, जौनपुर

कि यह शिल्प तथा कला-कौशल के माध्यम से बालक को शिक्षा प्रदान कर उसे स्वावलम्बी बनने का प्रशिक्षण प्रदान करती है, उसे जीविकोपार्जन के योग्य बनाकर, उसके सर्वांगीण विकास पर बल देती है। गाँधी जी का मानना था कि शिक्षा को बालकों की बेरोजगारी के विरूद्ध एक प्रकार की सुरक्षा देनी चाहिए।

वर्धा के 'नवभारत विद्यालय' के रजत जयन्ती के अवसर पर आयोजित अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में देश के जाने माने शिक्षाशास्त्री (यथा डॉ0 जाकिर हुसैन, प्रो0 के0टी0 शाह, आचार्य विनोवा भावे, काका कालेलकर तथा महावीर देसाई आदि) सम्मिलित हुए। अध्यक्षीय भाषण में गाँधी जी ने वर्धा-शिक्षा योजना संबंधी अपने विचारों का विशद रूप से निरूपण किया। विस्तृत विचार-विमर्श के पश्चात इस सभा में चार प्रस्ताव पास किये -

1. निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा 7 से 14 वर्ष की अवस्था तक राष्ट्रीय स्तर पर प्रदान की जाये।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।
3. शिक्षा का केन्द्र स्थानीय हस्तकला या उद्योग हो जिससे सम्बन्ध स्थापित करके अन्य पाठ्य विषयों का शिक्षण हो।
4. हस्तकला के द्वारा निर्मित सामग्री से उपार्जित धन द्वारा पाठशाला का व्यय और अध्यापकों को वेतन प्रदान किया जा सके।[8]

गाँधी जी के शिक्षा संबंधी विचारों तथा सम्मेलन द्वारा पारित किये गये प्रस्तावों के आधार पर जाकिर हुसैन समिति द्वारा 'नई तालिम' (बुनियादी शिक्षा) की योजना तैयार की गई तथा इस रिपोर्ट को हरिपुर के अधिवेशन में 1938 ई0 में स्वीकृति दी गई जिसे 'वर्धा शिक्षा योजना' के नाम से जानते हैं। यही बुनियादी शिक्षा का आधार है।[9]

गाँधी जी ने शिक्षा को जीवन से जोड़ने का प्रयत्न किया। वे बालक को माता-पिता तथा समाज पर भार नहीं बनने देना चाहते थे, अपितु वे उसे ऐसी शिक्षा प्रदान करने के पक्षधर थे, ताकि वह स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर हो, अपना जीविकोपार्जन स्वयं कर सकने में सक्षम बन सके, इसी उद्देश्य से हस्तकला को केन्द्र मानकर शिक्षा योजना बनाई कि बेसिक शिक्षा का पाठ्यक्रम क्रिया प्रधान हो। इसमें बेसिक क्राफ्ट, मातृभाषा, गणित, सामाजिक विषय, स्वास्थ्य विज्ञान, सामान्य विज्ञान, संगीत, ड्राईंग जैसे विषय को शामिल किया गया।

गाँधी जी ने शिक्षण विधियों के रूप में क्रियात्मक विधि, अनुभव द्वारा सीखना, अनुकरण विधि, सहसम्बन्ध विधि, मनन चिंतन तथा स्वाध्याय पर विशेष बल दिया।

गाँधी जी सह शिक्षा के पक्षधर थे। बेसिक शिक्षा योजना में उन्होंने बालक एवं बालिका में कोई भेद नहीं किया है। 16 वर्ष की उम्र तक एक साथ शिक्षा प्रदान की जाय लेकिन इसके बाद उनके द्वारा यह निश्चित किया जाय कि एक साथ पढ़ेंगे या नहीं। गाँधी जी का स्पष्ट मत था कि पुरुष शिक्षक की तुलना में महिला शिक्षिका छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए ज्यादा ठीक रहेगी।

गाँधी जी का मानना था कि यदि बालक/बालिका की शिक्षा सत्य, प्रेम, पवित्रता की कठोर नींव पर आधारित नहीं है, तो वह व्यर्थ है। सच्ची शिक्षा का अर्थ पुरानी या वर्तमान पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है, सच्ची शिक्षा बालक के वातावरण में है, उसके आस-पास की परिस्थितियों में है, साथ-संगति में है जिससे जाने-अनजाने बालक आदत ग्रहण करता है। शिक्षा सत्य, अहिंसा, निर्भयता, सेवा जैसे उद्देश्यों को प्राप्त कराने का एक साधन है। शिक्षा के माध्यम से ही हम जीने की कुशलता सीखते हैं। जीवन एवं शिक्षा एक दूसरे पर निर्भर है। अतः शिक्षा ऐसी हो जिससे बालक ज्ञानार्जन कर बंधनमुक्त होना सीख सके। सत्य एवं अहिंसा का पालन प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। गाँधी जी ने कहा है- **''शिष्टता और विनम्रता अहिंसा की आत्मा है।''** व्यक्ति विचार में सत्य, कार्य में सत्य एवं भाषण में सत्य होना चाहिए; सत्य का अवलम्बन ही जीवन की सत्यता है। ''सत्य ही ईश्वर है।'' सत्य का व्यापक स्वरूप गाँधी जी के जीवन का आधार है और शिक्षा दर्शन उनके जीवन दर्शन से प्रभावित दिखाई देता है। गाँधी जी उसे ही सच्चा शिक्षित व्यक्ति मानते हैं जिसकी बुद्धि शुद्ध हो, जो शान्त एवं न्यायदर्शी हो।[10]

सत्य और अहिंसा के कठिन पथ पर चलने में न्यायदर्शिता ही हमें सक्षम बनाती है और जीवन के इस सबल अवलम्बन की प्राप्ति का एकमात्र साधन शिक्षा ही है क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही बालक के व्यक्तित्व का चतुर्मुख विकास संभव होता है। गाँधी जी का मानना था कि शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास करना, होना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार, ''शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा का उचित सामंजस्यपूर्ण सम्मिश्रण संपूर्ण व्यक्ति की रचना करता है और यही शिक्षा की सच्ची मितव्ययिता का निर्माण करता है।''

शिक्षा के सांस्कृतिक उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कस्तूरबा बालिका आश्रम, नई दिल्ली में गाँधी जी ने बालिकाओं से कहा था, ''मैं शिक्षा के साहित्य पक्ष की बजाय सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूँ, संस्कृति ही आधार है एवं मूल्यवान है।''

गाँधी जी ने सच्ची शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते लिखा है, ''समस्त ज्ञान का उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना होना चाहिए। व्यक्तित्व पवित्रता को समस्त चरित्र निर्माण का आधार होना चाहिए। चरित्र के बिना शिक्षा और पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ है।''[11]

गाँधी जी ने शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य अंतिम वास्तविकता का अनुभव, ईश्वर एवं आत्मानुभूति का ज्ञान बताया है। आत्मा का प्रशिक्षण स्वयं महान कार्य है। आत्मा का विकास करना, चरित्र का

निर्माण करना है एवं बालक/व्यक्ति को ईश्वर आत्मानुभूति के लिए कार्य करने के योग्य बनाना है।''[12]

गाँधी जी ने शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करने के साथ ही शिक्षक के बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि शिक्षक को संपूर्ण गुणों से युक्त होना चाहिए यथा- चरित्रवान, मृदुभाषी, कर्त्तव्यपरायण, विनोदप्रिय, स्फूर्तिवान, श्रमी, संयमी एवं मिलनसार आदि। एक सफल शिक्षक बनने के लिए यह आवश्यक है कि उसे अपने विषय का पूर्ण ज्ञान होने के साथ ही उसमें छात्र/छात्राओं की रुचियों, क्षमताओं, चिन्ताओं एवं मनोभावों को परखने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए। एक मित्र, सहायक तथा मार्गदर्शक के रूप में शिक्षक की भूमिका होनी चाहिए साथ ही बालकों की समस्याओं को हल करने में सहायता करनी चाहिए। गाँधी जी ने बेसिक शिक्षा प्रणाली में प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति पर बल दिया था। आत्मिक शिक्षा में शिक्षक का आचरण महत्वपूर्ण है। मैं स्वयं झूठ बोलूँ और अपने शिषयों को सच्चा बनाने का प्रयत्न करूँ, तो वह व्यर्थ ही होगा। डरपोक शिक्षक शिष्यों को वीरता नहीं सिखा सकता।[13]

महात्मा गाँधी विद्यार्थी को सादगी से जीवन जीने की शिक्षा देने के पक्षधर थे। प्राचीन गुरुकुल आश्रमों की भाँति विद्यार्थी को विद्याभ्यास के लिए ब्रह्मचारी होना आवश्यक मानते थे। विद्यार्थियों को अपने दैनिक जीवन के सारे कार्य स्वयं करने चाहिए। विद्यार्थियों के समक्ष दिये गये अपने एक भाषण में उन्होंने कहा कि, ''तुम्हें अपने कपड़े धोने सीखने चाहिए, खाना बनाना सीखना चाहिए और अपने सारे कार्यों को करना चाहिए।''[14] गाँधी जी के अनुसार विद्यार्थियों में चरित्र बल, आत्मबल एवं बौद्धिक बल होना चाहिए तथा उनमें शिक्षा द्वारा अनुशासन, विनयशीलता, समाजसेवा, देश प्रेम, अहिंसा तथा सत्याचरण जैसे गुणों का विकास होना चाहिए। गाँधी जी आत्मनियंत्रण तथा स्व-अनुशासन को सर्वोत्तम अनुशासन मानते थे।

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए गाँधी जी ने कहा कि पुरुषों के समान स्त्रियों को भी समान रूप से शिक्षित होना चाहिए। स्त्रियाँ ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। उन्हें पशुता एवं बर्बरता के खिलाफ लड़ने वाली वीरांगना के रूप में शिक्षित होना चाहिए। गाँधी जी ने दहेज प्रथा, बाल-विवाह, विधवा विवाह, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों को समाज से दूर करने के लिए आजीवन प्रयत्न किया। स्त्रियों को भारत के स्त्री समाज की सेवा और नेतृत्व करने वाली वीरांगना के रूप में शिक्षा के द्वारा, प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। सह-शिक्षा के समर्थन के साथ ही गाँधी जी ने स्त्रियों को गृह विज्ञान, पालन-पोषण, बालकों की शिक्षा तथा उनकी सेवा आदि का ज्ञान दिये जाने पर बल दिया।

महात्मा गाँधी ने सर्वधर्म समन्वय के लिए धर्मों के प्रति आदर निष्ठा और सहभागिता पर जोर दिया। सभी धर्म सत्य है। उनका कहना था कि, ''मैं जैसा विश्वास गीता में रखता हूँ वैसा ही बाइबिल में भी। मैं अपने धर्म के समान ही विश्व के सभी धर्मों में विश्वास रखता हूँ।[15] गाँधी जी के अनुसार धार्मिक शिक्षा घर पर सर्वोत्तम ढंग से बालक को दी जा सकती है। यही कारण है कि उन्होंने 'वर्धा शिक्षा योजना' में अलग से इसके लिए कोई व्यवस्था नहीं किया। गाँधी जी के शब्दों में, ''मेरा धर्म का अर्थ सत्य और अहिंसा या केवल सत्य है, क्योंकि सत्य अपने में अहिंसा रखता है।''

गाँधी संपूर्ण मानवता को शिक्षित करने की कामना करते थे इसलिए उन्होंने प्रौढ़ शिक्षा का समर्थन किया। प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ मात्र अक्षर ज्ञान ही नहीं अपितु उनके हृदय और मस्तिष्क को इस प्रकार परिवर्तित करना है जिससे उनकी अज्ञानता दूर हो सके।

महात्मा गाँधी जी के शिक्षा दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता

अंग्रेजों की गुलामी की बेड़ियों में जकड़े भारतवर्ष को आजाद कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले 'राष्ट्रपिता' की उपाधि से विभूषित, जिन्हें प्यार से जनमानस ने 'बापू' कहकर सम्मान दिया, उनका दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान शिक्षा की राष्ट्रीय योजना है जिसे 'बेसिक शिक्षा' कहा जाता है। जो हस्तशिल्प कार्यों या लघु कुटीर उद्योग पर आधारित है और जिसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, चारित्रिक विकास के साथ विद्यार्थियों को स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनाना है। 6 से 14 वर्ष के बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव रखा जिसे संविधान निर्माताओं ने स्वीकार किया और प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का संकल्प लिया।

पाठ्यक्रम निर्माण में गाँधी जी का दृष्टिकोण यथार्थवादी था इसलिए उन्होंने बालक को शिक्षित करने में, जीवन से सम्बन्धित विषयों को पाठ्यक्रम में रखने पर विशेष बल दिया। गाँधी जी के इन विचारों का प्रभाव आजादी के बाद गठित सभी आयोगों पर पड़ा और सभी ने प्राथमिक शिक्षा को बालक के जीवन से सम्बन्धित करने की संस्तुति किया। गाँधी जी का मानना था कि ''सच्ची शिक्षा वह है, जो बेरोजगार के खिलाफ रोजगार की गारंटी हो।'' अर्थात् शिक्षा वह है जो बालक को जीविकोपार्जन के योग्य बनाये, उसमें आत्मनिर्भरता का विकास करे। यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, भारतवर्ष के विशेष संदर्भ में देखा जाय तो शिक्षा के क्षेत्र में जो नूतन प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही हैं, सभी इस ओर स्पष्ट संकेत करती हैं। जिस तरह से गाँधी जी ने करके सीखने तथा कार्यानुभव को अधिक महत्व दिया था, कोठारी आयोग ने भी राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की संस्तुति में इसे स्वीकार कर विद्यालयों के साथ कार्यशालाएँ जोड़ने की बात कही। कोठारी आयोग की रिपोर्ट पर पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति आधारित थी जो 1968 में बनाई गयी।[16] नई शिक्षा नीति में समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की शिक्षा दिये जाने पर विशेष बल दिया गया है इसमें ग्रामीण आधारित हस्तशिल्पों को ही महत्व दिया

गया है। इसलिए गाँधी जी के बेसिक शिक्षा प्रणाली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित हो रहा है और इसकी प्रासंगिकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दिखाई दे रही है।

गाँधी जी का स्पष्ट मत था कि हमें आर्थिक आजादी तभी मिल सकती है जब भारत की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए कृषि तथा कुटीर उद्योग को शिक्षा के द्वारा विकसित किया जाय। हस्तशिल्प के माध्यम से शिक्षा प्रदान किये जाने का व्यापक प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा और शारीरिक श्रम को प्रतिष्ठा मिली। इसे गाँधी जी 'मौन सामाजिक क्रान्ति' की संज्ञा देते थे।

स्त्री और पुरुष समाज को आगे ले जाने में दो पहिये के समान है। इसलिए दोनों का समान रूप से शिक्षित होना आवश्यक है। उनकी इस विचारधारा के कारण लड़कियों की शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन मिला।

टैगोर जी ने गाँधी जी को एक व्यवहारवादी विचारक के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए कहा है- ''वह महान है, वह एक राजनीतिज्ञ के रूप में, एक जन नेता के रूप में, एक नैतिक सुधारक के रूप में, महान है ..... जब भी वह प्रयोग समाज के लिए सुझाते हैं वह उसे पहले अपने ऊपर प्रयोग करके देखते हैं। यदि वह दूसरों से बलिदान करने की बात कहते हैं तो उसमें वह स्वयं त्याग करके दिखाते हैं।[17]

सर्वोदय के सिद्धान्त

सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है। आजीविका का अधिकार सबको एक समान है। सादा मेहनत-मजदूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।[18] राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का अहिंसा आन्दोलन; सत्याग्रह एवं शान्ति सन्देश स्वतः ही अपना महात्म्य सिद्ध करता है। गाँधी जी का मानना था कि 1- आँख के बदले आँख का सिद्धान्त पूरे विश्व को अंधा बना देगा। 2- पाप से घृणा करो, पापी से नहीं तथा 3- कमजोर व्यक्ति कभी क्षमा नहीं कर सकता। क्षमा वीरों का आभूषण है।[19]

गाँधी जी का शिक्षा दर्शन एवं नई शिक्षा नीति (एन ई पी) 2019

31 मई, सन् 2019 को के0 कस्तूरीरंगन (नौ सदस्यीय) समिति ने नई शिक्षा नीति (एन ई पी) 2019, के सम्बन्ध में 484 पन्नों का दस्तावेज केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्रालय को सौंपा है जो सन् 2035 तक देश की शिक्षा प्रणाली में अनेक बदलाव लाना चाहती है। इस दस्तावेज में नई शिक्षा नीति के संदर्भ में विस्तृत योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है जिसमें स्कूलपूर्व, स्कूल और उच्च शिक्षा के साथ-2 व्यावसायिक, वयस्क और शिक्षक प्रशिक्षण और नियम कायदे शामिल हैं। इस मसौदे में स्कूलों में शुरूआती बचपन की शिक्षा कार्यक्रमों को मजबूत करना, शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर ध्यान देना, स्कूल पाठ्यक्रमों में व्यावसायिक कोर्स जोड़ना, उच्च शिक्षा में रिसर्च के लिए धन जुटाने को बढ़ावा देना और उच्च शिक्षा में गुणात्मक बदलावों की खातिर शीर्ष नियामकीय निकायों का पुनर्गठन करना और नये निकाय बनाना शामिल है।[20] एनईपी के अनुसार, ''अगर यह सबसे बुनियादी शिक्षा आधारभूत स्तर पर पढ़ना, लिखना और अंकगणित - पहले हासिल नहीं की जाती, तो हमारे छात्रों के इतन बड़े हिस्से के लिए बाकी की नीति मोटे तौर पर अप्रांसगिक होगी।[21]

3 से 18 साल के बीच की उम्र के बालक/बालिकाओं को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा बाल अधिकार (संशोधन) 2019 के दायरे में लाया जाना चाहिए, एनईपी 10+2 की मौजूदा मॉडल के स्थान पर 5+3+3+4 का पाठ्यक्रम और शिक्षा का वैज्ञानिक ढाँचा अपनाने पर बल देती है जो बच्चे के संज्ञानात्मक और सामाजिक भावनात्मक विकास की अवस्थाओं पर आधारित हो।

एनईपी पाठ्यक्रम की रूपरेखा में जोर पाठ्यपुस्तकों से सीखने पर नहीं बल्कि इसके बजाय अपने हाथों से करने, अनुभव और विश्लेषण से सीखने पर देती है। कला, संगीत, दस्तकारी, खेल, योग और सामुदायिक सेवा सहित तमाम विषय पाठ्यक्रम के हिस्से होंगे। पाठ्यक्रम बहुभाषा, प्राचीन भारतीय ज्ञान पद्धतियों, वैज्ञानिक मिजाज, नैतिक विवेक, सामाजिक जिम्मेदारी, डिजिटल साक्षरता और स्थानीय समुदायों के सामने मौजूद बेहद अहम मुद्दों की जानकारी को बढ़ावा देगा।[22]

ढाँचागत और पाठ्यक्रम से जुड़े इन बदलावों के बावजूद एनईपी स्वीकार करती है कि शिक्षक वह धुरी होंगे जिनके चारों तरफ शिक्षा की इस क्रान्ति को अंजाम दिया जा सकता है।

एनईपी में अनेक सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं, जिनके द्वारा स्कूली शिक्षा की सूरत बदलने की उम्मीद की गई है जैसे - **बचपन की आरंभिक देखभाल और शिक्षा,** स्कूल शिक्षा का अभिन्न अंग बनेगा। **बच्चों के संज्ञानात्मक और सामाजिक-भावनात्मक विकास के** चरणों पर आधारित 5+3+3+4 पाठ्यक्रम और शैक्षणिक ढाँचा मौजूदा 10+2 मॉडल की जगह लेगा। पहले पाँच वर्ष आधारशिला चरण (आयु 3-8 वर्ष) में, उसके बाद कक्षा 3 से 5 (उम्र 8-11 वर्ष) तक प्रारंभिक चरण में, कक्षा 6 से 8 (आयु 11-14 वर्ष) तक मध्यचरण और कक्षा 9 से 12 (आयु 14-18 वर्ष) तक माध्यमिक चरण के साथ समाप्त होगा। फोकस बहुभाषी और अंतरविषयी शिक्षा पर होगा।

किताबों का बोझ और रटन्तू पढ़ाई को कम करने के लिए पाठ्यपुस्तकों के बदले हाथ के हुनर, प्रयोगात्मक और विश्लेषणात्मक शिक्षण पर जोर होगा। सब के लिए अनिवार्य सामान्य विषय होंगे लेकिन पाठ्यक्रम और सह-पाठ्यक्रम या पाठ्येत्तर क्षेत्रों के बीच कोई फर्क नहीं होगा। पाठ्यक्रम में बहुभाषा, प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणालियों, वैज्ञानिक स्वभाव, नैतिक तर्कशक्ति,

सामाजिक जिम्मेदारी, डिजिटल साक्षरता और स्थानीय मुद्दों के ज्ञान को बढ़ावा दिया जायेगा।[23]

उपर्युक्त तथ्यों पर ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होता है कि सदी पूर्व महात्मा गाँधी जी ने बेसिक शिक्षा की जो अवधारणा प्रस्तुत की थी, वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता अधिक बढ़ गई है। किताबी ज्ञान के बजाय व्यावहारिक ज्ञान कहीं ज्यादा लाभप्रद है। कहीं-न-कहीं यह अवश्य परिलक्षित होता है कि शिक्षा ऐसी हो जो किसी-न-किसी रूप में बालक/बालिकाओं को इस योग्य बनाये कि वे आत्मनिर्भर हो सकें। गाँधी जी का स्पष्ट प्रभाव यहाँ दिखाई देता है। चाहे सहशिक्षा की अवधारणा हो प्राथमिक स्तर पर निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की बात हो, किसी-न-किसी हस्तशिल्प के माध्यम से बालक को कुशल एवं निपुण बनाने की बात हो, मातृभाषा एवं गणित शिक्षण की बात हो, दशकों पूर्व गाँधी जी ने जिस शिक्षा दर्शन को अपने व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर दिया है, उसका प्रभाव शिक्षा के सम्बन्ध में गठित समितियों के ऊपर अवश्य पड़ा है। यही कारण है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महात्मा गाँधी के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता बहुत अधिक है। गाँधी जी द्वारा दिये गये शिक्षा के सिद्धान्त, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, आज भी बालक, बालिकाओं, विद्यालय तथा समाज के लिए उतने ही आवश्यक हैं जितने पहले थे। उनकी महत्वपूर्ण कृति बुनियादी शिक्षा अथवा बेसिक शिक्षा बालकों को स्वावलंबी बनाने में मददगार सिद्ध हुई है। केवल मानसिक ही नहीं अपितु शारीरिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए भी गाँधी जी की बेसिक शिक्षा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।[24] अविनाशलिंगम के शब्दों में, ''बुनियादी शिक्षा हमारे राष्ट्रपिता का अंतिम और संभवतः महानतम् उपहार है।''[25]

संदर्भ

1. सिंह, ओ0पी0, शिक्षादर्शन एवं शिक्षाशास्त्री, 2012, पृ0 217, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. दूबे, बृजभूषण एवं सिंह, माया, ''भारत के संदर्भ में महात्मा गाँधी के शिक्षा दर्शन का शैक्षिक निहितार्थ'', पृष्ठ-3, लघु शोध प्रबन्ध, 1996-97।
3. वही
4. हरिजन, 3-7-37 ई0
5. तत्रैव संदर्भ संख्या-1, पृष्ठ 221
6. तत्रैव संदर्भ संख्या-1, पृष्ठ 222
7. तत्रैव संदर्भ संख्या-1, पृष्ठ 223
8. वही
9. https://hi.m.wikipedia.org
10. पूर्वोक्त संदर्भ संख्या-2, पृष्ठ 29
11. तत्रैव, पृष्ठ 32
12. वही
13. गाँधी, एम0के0 (अनुवादक- काशीनाथ त्रिवेदी), सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ0 310, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पुनर्मुद्रण अप्रैल 2006
14. पूर्वोक्त संदर्भ संख्या-1, पृ0 225
15. मिश्र; हृदय नारायण, विश्व धर्म, 1990, पृ0 210, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद।
16. कौशिका डेका, शिक्षा क्रांति का वादा, इंडिया टुडे 3 जुलाई 2019, पृ0 50.
17. The man, an article on Gandhi by Tagore (The Sunday Statement, Feburary 13, 1938)
18. पूर्वोक्त संदर्भ संख्या-11, पृ0 271.
19. त्रिपाठी विभा एवं सिंह, माया, शान्ति का मनोविज्ञान, भारतीय मनीषी चिन्तन एवं शान्तिमूलक अपराधशास्त्र, प्रज्ञा, पृष्ठ-57, अंक-60, भाग-1, वर्षः 2014-15
20. पूर्वोक्त संदर्भ संख्या-14, पृ0 38-40
21. तत्रैव, पृ0 42
22. तत्रैव, पृ0 43
23. तत्रैव, पृ0 41
24. गाँधी जी का शिक्षा दर्शन /B.Ed./CTET/KVS/YouTube: Mission Study 30 March, 2018 visited at 25/6/2019.
25. https://ni.m.wikipedia.org visited at 25/06/2019.

●

प्रेमचंद की कहानियों में गाँधीवाद का प्रभाव

निवेदिता कुमारी एवम् डॉ0 नीरज खरे***

किसी भी विचारधारा एवं विराट व्यक्तित्व का प्रभाव समाज के साथ-साथ साहित्य पर भी पड़ता है। गाँधी जैसी महान शख़्सियत का प्रभाव भारतीय राजनीति, जीवनदृष्टि विचारधारा, संवेदना, साहित्य, समाज, एवं व्यक्ति मानस पर पड़ा। महात्मा गाँधी जनवरी, 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे, तब भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में एक बड़ा परिवर्तन उनके आगमन से आया। उन्होंने सत्याग्रह और अहिंसा के बल पर संघर्ष किया। उनका यह प्रयोग बड़े व्यापक स्तर पर जनता ने स्वीकार किया और साथ ही उनका यह प्रयोग स्वाधीनता आंदोलन की दिशा बदलने में प्रभावशाली रहा।

गाँधी जी के राष्ट्रवाद का शंखनाद सबसे पहले दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहों से प्रारंभ हुआ। जैसा कि इतिहासकार चन्द्रन देवनेसन ने कहा है कि ''दक्षिण अफ्रीका ने ही गाँधी जी को महात्मा बनाया।''[1] दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने भारतीय मूल के लोगों के हितों की रक्षा के लिए पहली बार अहिंसात्मक सत्याग्रह को अपनाया और सफल रहे। महात्मा गाँधी ने इसी सत्य और अहिंसा आधारित आंदोलनों के माध्यम से भारत को स्वाधीनता दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सन् 1917 ई. के चम्पारण सत्याग्रह से उन्होंने भारतीय राजनीति में सक्रिय कदम रखा। इसी तरह का एक आंदोलन सन् 1918 में उन्होंने गुजरात के खेड़ा के किसानों के लिए किया, जिसकी सफलता के बाद देश में गाँधी जी की लोकप्रियता बढ़ी। देश की स्वाधीनता संघर्ष में गाँधी जी द्वारा किये गये आंदोलनों जैसे-असहयोग आंदोलन (1920-22), नमक सत्याग्रह (1930), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-31), भारत छोड़ो आंदोलन (1942) आदि आंदोलनों की अहम भूमिका रही। इन समस्त आंदोलनों ने देश की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया।

महात्मा गाँधी ने व्यक्ति, समाज, धर्म, और व्यवस्था आदि के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं जिनका सीधा संबंध मानव-जीवन के कल्याण से है। उनकी यही मानव-जीवन के कल्याण संबंधी विचारधाएँ गाँधीवाद के रूप में प्रसिद्ध हुई। यद्यपि गाँधी जी ने गाँधीवाद जैसी किसी बात को ज़ोर देकर नहीं कहा, फिर भी उनकी बातों एवं विचारों का संग्रह एक 'वाद' के रूप में चल पड़ा। अपनी आत्मकथा में गाँधी जी ने लिखा है- ''गाँधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, मेरा यह दावा भी नहीं है कि मैंने किसी नये तत्व या सिद्धान्त का आविष्कार किया है। मैंने तो सिर्फ जो शाश्वत सत्य हैं उनको अपने ढंग से उतारने का प्रयास किया है। मुझे दुनिया को कोई नई चीज़ नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आ रहे हैं।''[2] गाँधीवाद को गाँधी जी के शब्दों में समझना हो तो सत्य और अहिंसा की साधना ही मनुष्य-जीवन का मुख्य उद्देश्य है। गाँधीवाद का आदर्श अहिंसा और सेवा द्वारा रामराज्य की स्थापना है। गाँधीवाद के सैद्धान्तिक स्वरूप के दो पक्ष हैं- वैचारिक एवं व्यवहारिक पक्ष (रचनात्मक पक्ष)। वैचारिक पक्ष के अंतर्गत उनके विचार सिद्धान्त और मूल बातें आती हैं जबकि रचनात्मक पक्ष के अंतर्गत मानव कल्याण के लिए किये गए उनके प्रायोगिक कार्यक्रम आते हैं।

वैचारिक पक्ष के कुछ आयाम निम्नलिखित हैं- सत्य, अहिंसा, हृदय परिवर्तन, ट्रस्टीशिप, विकेन्द्रीकरण आदि जबकि रचनात्मक पक्ष में साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, खादी का प्रयोग, ग्रामोद्धार, मद्यपान तथा मांसाहार का निषेध, स्वदेशी-ग्रहण, गौ-रक्षा, रामराज्य की परिकल्पना, स्त्री शिक्षा, विलायती वस्तुओं का त्याग, दलित, पीड़ित तथा शोषित समाज के प्रति सहानुभूति, नारी मुक्ति और श्रम पर बल आदि।

सन् 1917 के बाद आधुनिक हिन्दी साहित्य में गाँधीवाद का प्रभाव देखे जा सकते हैं। गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा के नारों के साथ-साथ देश की स्वाधीनता का संदर्भ व्यापक रूप से लिया। आशय यह है कि वे आज़ाद भारत में सामाजिक रूढ़ियों, जाति प्रथा की जड़ताओं और समाज के सभी वर्गों के अधिकारों और मानवीय अस्मिता को मुक्त देखना चाहते थे। साहित्य लेखन में लगभग यही विचार दृष्टि प्रेमचंद की भी थी। गाँधी जी राजनेता के रूप में स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। अतः उन कुरीतियों का प्रतिकार सत्याग्रह के द्वारा किया। प्रेमचंद का बहुत सा लेखन गाँधीवादी सिद्धान्तों से प्रेरित है। प्रेमचन्द ने सैकड़ों कहानियाँ लिखी है। उनमें से बहुत सी कहानियाँ महात्मा गाँधी की राजनीतिक गतिविधियों, आंदोलनों की वैचारिक दृष्टि से परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप में प्रेरित जान पड़ती हैं।

प्रेमचंद की 'सोज़ेवतन' कहानी संग्रह की रचना उस समय हुई, जब परिस्थितियाँ ऐसी थी कि हर सच्चे भारतीय के हृदय में देश प्रेम उफान मार रहा था। परन्तु अंग्रेज़ों का ज़ुल्म और आतंक चारों तरफ फैला हुआ था। पत्रकारों और लेखकों को जेल में डाल दिया जाता था। यहीं कारण है कि 'सोज़ेवतन' ब्रिटिश सरकार द्वारा फ़ौरन ज़ब्त कर लिया गया। 'सोज़ेवतन' में संकलित कहानियाँ प्रेम के आलोक में गहरे स्वाधीनता संघर्ष की कहानियाँ हैं। इस संग्रह की

* शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' उपरी तौर पर आशिक़ दिलफ़िगार और माशूका दिलफ़रेब के प्रेम की कहानी प्रतीत होती है, पर गहरे अर्थों में यह कहानी स्वाधीनता संघर्ष तथा ब्रिटिश शासन के ज़ुल्मों को बयान करती कहानी है। कहानी का अंत इसी देशप्रेम से होता है जब दिलफ़रेब रत्नजटित मंजूषा से एक तख्ती निकालती है जिस पर लिखा हुआ था- ''खुन का वह आख़िरी कतरा जो वतन की हिफाज़त में गिरे दुनिया का सबसे अनमोल चीज है।''[3]

प्रेमचंद की आरम्भिक उर्दू में लिखी कहानियों और कुछ हिन्दी में लिखी कहानियों में भी ऐतिहासिकता और देश के लिए मर-मिटने यानि त्याग और बलिदान की भावभूमि दिखायी पड़ती है- जैसी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति उस समय के अन्य रचनाकारों के यहाँ भी दिखायी पड़ती है। प्रेमचंद जल्द ही इसकी सीमाएँ समझकर अपनी वैचारिक चेतना को भारतीय समाज की ठोस सच्चाईयों से संघर्ष और उन्हें बदलने की मंशा से अपने लेखन की दिशा बदलते दिखते हैं।

प्रेमचंद की कहानी 'सत्याग्रह' गाँधी जी के सत्याग्रह आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है, जिसमें सत्याग्रह करना 'मोटूराम जैसे धन-लोलूप, लोभी, स्वार्थी और चटोर व्यक्ति के बस की बात नहीं है। इसके लिए पहले सत्य के प्रति पूर्णनिष्ठा, दृढ़-संकल्प तथा अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

महात्मा गाँधी का ज़ोर मनुष्य के हृदय परिवर्तन पर अधिक था, क्योंकि उन्हें पता था कि मनुष्य में जब तक भीतरी बदलाव नहीं आता तब तक सामाजिक बदलाव भी संभव नहीं है, फिर चाहे कितने भी संवैधानिक नियम ही क्यों न बन जाएँ। गाँधी जी देश की आज़ादी और सामाजिक समानता के लिए मनुष्य में संवेदना, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, न्यायप्रियता व कर्त्तव्य-परायणता आवश्यक मानते थे। प्रेमचंद की 'जुलूस', 'नमक का दरोगा', 'बड़े घर की बेटी' आदि कहानियों में हृदय परिवर्तन ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, सदाशयता, न्यायप्रियता, कर्त्तव्य परायणता, जैसे मूल्य निहित हैं। 'जुलूस कहानी के इब्राहिम अली पर गाँधी जी के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। इब्राहिम गाँधी जी तरह सत्यवादी, अहिंसक और दृढ़संकल्पित पुरुष हैं। दारोगा बीरबल सिंह के द्वारा जुलूस रोकने पर वह कहते हैं- ''मैं आपको इत्मीनान दिलाता हूँ, किसी किस्म का दंगा-फसाद न होगा। हम दुकानें लूटने या मोटर तोड़ने नहीं निकले हैं। हमारा मकसद इससे कहीं ऊंचा है।''[4] इब्राहिम अली सत्य और अहिंसा के राह पर चलते-चलते स्वाधीनता संघर्ष में शहीद हो जाते हैं पर अपने संकल्प पर अडिग रहते हैं। गाँधीवादी विचारों का चरम स्फूरण कहानी के अंत में दिखायी पड़ता है जब सत्य और अहिंसा की शक्ति के समक्ष बीरबल जैसा जल्लाद, पद-लोलूप, स्वार्थी, सत्ता-लिप्सा में जकड़ा दारोगा का हृदय परिवर्तन हो जाता है और वह इब्राहिम अली की विधवा के सम्मुख आँखों में आँसू भरे अपने अपराध की माफ़ी मांगता है।

गाँधी जी द्वारा चलाए गए नशा-मुक्ति अभियान की पृष्ठभूमि पर ही प्रेमचंद की 'शराब की दुकान' कहानी है। महात्मा गाँधी ने नशा-मुक्ति अभियान के लिए स्त्रियों से बढ़-चढ़कर भाग लेने के लिए आह्वाहन किया था। उनका मानना था कि स्त्रियों में धैर्य, संवेदना, उदारता तथा आत्मबल पुरुषों से कहीं अधिक होता है जिसके बल-बूते वे पुरुषों को इस नशा रूपी दलदल से बाहर निकालने में कामयाब होंगी। इसी तरह की सशक्त स्त्री के रूप में प्रेमचंद ने मिसेज सक्सेना के चरित्र की रचना की है, परन्तु प्रेमचंद ने गाँधी जी के इस विचार से कुछ आगे बढ़कर इस अभियान के लिए जयराम जैसे क्रान्तिकारी पुरुष के सहयोग को अपेक्षित माना है। प्रेमचंद यह बख़ूबी जानते थे कि नशा करने वालों पर अनुनय-विनय का असर उतना प्रभावी नहीं होता। उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए अनुनय-विनय, वाद-प्रतिवाद के साथ-साथ आवश्यक बल का प्रयोग भी अपेक्षित है।

महात्मा गाँधी स्वाधीनता संघर्ष में स्त्रियों की भागीदारी को बराबर महत्व देते थे। प्रेमचंद की कहानी 'जेल' मृदुला और क्षमा के स्वाधीनता संघर्ष की कहानी है, जिन्होंने देश की आज़ादी की लड़ाई में अपने पूरे परिवार को खो दिया है। उनके जीवन का अब एक ही उद्देश्य है- देश को आज़ादी दिलाना। उनके लिए जेल सज़ा नहीं बल्कि कर्मभूमि हैं। मृदुला क्षमा से कहती है- ''जेल के बाहर भूलों की सम्भावना है, बहकने का भय है, समझौते का प्रलोभन है, स्पर्द्धा की चिन्ता है, जेल सम्मान और भक्ति की एक रेखा है जिसके भीतर शैतान कदम नहीं रख सकता। मैदान में जलता हुआ अलाव वायु में अपनी उष्णता को खो देता है, लेकिन इंजिन में बंद होकर वहीं आग संचालन शक्ति का अखण्ड भण्डार बन जाता है।''[5]

'होली का उपहार' तथा 'पत्नी से पति' दोनों ही कहानियाँ गाँधी जी द्वारा चलाए गए खादी के प्रयोग तथा विदेशी वस्त्रों के त्याग अभियान की पृष्ठभूमि में लिखी गयी कहानियाँ हैं। 'होली के उपहार' की सुखदा तथा 'पत्नी से पति' की गोदावरी दोनों ही गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित सशक्त स्त्री पात्र है, जिन्हें रंग-बिरंगी, महीन कारीगरी की गयी विलायती वस्त्रों से तनिक भी मोह नहीं है। उनके लिए विदेश मानसिकता से मुक्त होकर स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़ना ही वास्तविक अर्थों में होली का आनंद मिलन और पत्नी धर्म का पालन करना है।

'आहुति', 'दिल की रानी' और 'क्षमा' आदि कहानियों में प्रेमचंद ने अहिंसा, त्याग, प्रेम, न्याय और अन्याय के संघर्ष को प्रस्तुत किया है। 'आहुति' कहानी का विश्वम्भरनाथ गाँधी जी के विचारों से प्रभावित युवक है जिसे न अपने विद्यार्थी जीवन की चिन्ता है और न सुखद भविष्य की लालसा। वह अपने चौबीस-पच्चीस वर्ष के छात्र जीवन की कड़ी मेहनत की आहुति देकर तथा अपनी बुद्धि पर आत्मा की विजय पाकर स्वयं को देशहित के लिए समर्पित कर देता है।

गाँधी जी भेदभाव और छुआछूत जैसी रूढ़ि को सामाजिक मानवीय मुक्ति में बड़ी बाधा समझते थे। उन्होंने जातिवाद की जड़ को मिटाने के लिए अछुतोद्धार से जुड़े आंदोलन छेड़ा। वह एक तरफ अंग्रेज़ों के विरूद्ध स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहे थे तो दूसरी ओर देश के भीतर ही उपजी सामाजिक असमानताओं और भेदभाव के विरूद्ध लड़ रहे थे। भारत की ग़ुलामी के कारणों की खोज करते हुए उन्होंने पाया था कि जाति भेद, अस्पृश्यता, सामाजिक अन्याय, महिलाओं का गौण दर्जा, श्रम को नीच समझना आदि अनेक कारण थे, जो भारत की एकता और अखण्डता में बाधक थे। अंग्रेजों ने भारतीय समाज की इसी आपसी असमानता का फायदा उठाते हुए फूट डालो और शासन करो की नीति अपनायी और वे इसमें सफल भी हुए। इन सभी प्रकार के सामाजिक असमानताओं के विरूद्ध गाँधी जी ने आंदोलन चलाया और उन्हीं आंदोलन में से एक महत्वपूर्ण आंदोलन है- अस्पृश्यता-निवारण। महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए सन् 1932 में हरिजन सेवक संघ की स्थापना किया तथा इस संस्था से जन आंदोलनकारियों को जोड़ा। प्रेमचंद भारतीय समाज की जातिगत समस्याओं को लेकर अपनी कहानियों में चिन्ता व्यक्त करते हैं तथा उन समस्याओं को लेकर सवाल उठाते हैं। इस संदर्भ में उनकी चर्चित कहानियाँ 'सद्गति' और 'ठाकुर का कुआँ' का उल्लेख आवश्यक है। 'सद्गति' का दुखी चमार पण्डित घासीराम की बेगारी करते - करते अपनी जान दे देता है पर अन्ततः उसे सम्मान-जनक मौत भी नसीब नहीं होता। उसकी लाश को गीदड़, गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच-नोचकर खा जाते हैं। उसके जीवन पर्यन्त भक्ति, सेवा और पूर्ण निष्ठा का यही पुरस्कार उसे मिलता है। 'ठाकुर का कुआँ' भी इसी जातिवादी संरचना की घिनौनी सच्चाई को व्यक्त करती कहानी है, जहाँ तथाकथित उच्च जाति का ठाकुर शोषक और विचार से नीच होने पर ऊँचा है और मेहनतकश गंगी और जोखू सिर्फ इसलिए अस्पर्श हैं कि वे वर्णव्यवस्था आधारित जाति संरचना में निचली जाति में आते हैं। प्रेमचंद की उपरोक्त दोनों कहानियाँ जातिवादी संरचना आधारित भारतीय समाज की विडम्बना को व्यक्त करने वाली यथार्थपरक कहानियाँ है।

'समरयात्रा' कहानी सन् 1930 में प्रकाशित है। यह वह समय था जब देश में गाँधी जी द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन अपने ज़ोरों पर था। यह कहानी इसी आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है, जिसका एक-एक पात्र गाँधीवादी विचारों की जीवित प्रतिमा है। नोहरी, कोदई तथा सत्याग्रहियों के जत्थे का नायक सत्य और अहिंसा को परमधर्म मानकर, अपने स्वहितों की तिलांजलि दे तथा गृहस्थी से मोह त्यागकर देशहित के लिए स्वयं को समर्पित कर देते हैं। कोदई सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए स्वाधीनता संघर्ष में गिरफ़्तार होकर गौरवान्वित अनुभव करता है। वहीं नोहरी, गंगा, मैकू और गाँव के अन्य युवक भी देश की सेवा करने के लिए सत्याग्रहियों के जत्थे के साथ निकल पड़ते हैं।

महात्मा गाँधी भारत की एकता और अखण्डता के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता आवश्यक मानते थे तथा समाज में साम्प्रदायिक सौहार्द्रय बनाए रखने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। प्रेमचंद ने अपने कहानियों यथा- 'मन्दिर और मस्जिद' तथा 'पंच परमेश्वर' आदि के द्वारा समाज में साम्प्रदायिक एकता और सौहार्द्र स्थापित करने का प्रयास किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'सोज़ेवतन' से प्रारंभ हुई देश की आज़ादी की लड़ाई 'समरयात्रा' तक गाँधीवाद के प्रभाव में या यूँ कह लें कि गाँधीवाद के समानधर्मी होते हुए चलती रही, जिसमें स्वाधीनता संघर्ष के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों से भी निरन्तर संघर्ष विद्यमान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Making of mahatma Gandhi, Devanesan Chandran S.; Sangam Books Pvt. Limited, Hyderabad, January 1, 1975
2. सत्य के प्रयोग, मोहनदास करमचंद गाँधी, अनुवादक महाबीर प्रसाद पोद्दार, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली
3. सोज़ेवतन, प्रेमचंद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013
4. प्रेमचंद रचना-संचयन, संपादन-निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
5. प्रेमचंद रचना-संचयन, संपादन-निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

●

वर्तमान वैश्विक सन्दर्भ में बापू के अहिंसा सिद्धान्त की सार्थकता

शुभंकर बाबू एवम् प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय***

आज सम्पूर्ण विश्व हिंसा की चपेट में है। वैयक्तिक कारणों से की जाने वाली छिटपुट हिंसा के अतिरिक्त नानाप्रकार के असन्तोषों को उजागर करने के लिये की जाने वाली (सामूहिक/आतंकी) हिंसाएँ आज विश्व के समस्त देशों के सम्मुख एक असमाधेय प्रश्न बनी हुई हैं। आतंकवाद की ज्वालामुखी कब और कहाँ फूट पड़ेगी; इसका कोई ठिकाना नहीं है? कब और कहाँ सैकड़ों लोगों के चिथड़े उड़ जायेंगे और वे मौत की नींद सो जायेंगे; यह निश्चित नहीं है? सामान्य नागरिक ही नहीं पुलिस और सेना के जवान भी आतंकवादियों के निशाने बन रहे हैं। मजे की बात यह है कि लोगों को मौत के मुख में जबरन भेजने वालों को स्वयं के मर जाने का भी खौफ नहीं रह गया है। वे स्वेच्छया विस्फोटकों को अपने शरीर में बाँध लेते हैं और उससे अपने आपको उड़ा देते हैं। परिणाम स्वरूप उनके चतुर्दिक् विद्यमान निर्दोष जनता असमय में ही काल-कवलित हो जाती है। इनका दुस्साहस इतना बढ़ गया है कि ये हिसांत्मक कार्यवाहियों को सम्पादित करके उसका दायित्व भी निर्लज्जता पूर्वक अपने सिर पर ले लेते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि कुछ देश अपने निहित स्वार्थों के लिए इन आतंकी संगठनों का पोषण करते हैं; जिससे इनका हौसला बुलन्द रहता है। जबकि बाकी देशों की सरकारें तमाम सावधानियाँ बरतनें के बावजूद प्रायः इन अनपेक्षित घटनाओं को घटित होने से न तो रोक पाती हैं और न इन आतंकवादी संगठनों की नाक में नकेल डाल पाती हैं। परिणाम भयंकर से भयंकर होता जा रहा है। चारों ओर त्राहि-माम मची हुई है। लोग शान्ति की खोज में भटक रहे हैं।

ऐसे में हमें याद आते हैं 'मोहनदास करमचन्द गांधी' जिन्हें हम श्रद्धा से महात्मा गांधी कहते हैं तथा जिन्होंने संसार को सत्य और अहिंसा की राह दिखाई थी और अपने इस दिव्यास्त्र से उस प्रचण्ड ब्रिटिश हुकूमत को भी भूलुण्ठित कर दिया था जिसके राज्य में सूर्य कभी अस्त ही नहीं होता था।

बापू की यह अहिंसा क्या थी? इसके मायने क्या थे? आज ये प्रश्न उठने लगे हैं। लोग बापू की अहिंसा के महत्त्व को समझने लगे हैं। आखिर क्या थी बापू की अहिंसा? लोग यह जानना चाहते हैं। विश्वशान्ति के सन्दर्भ में बापू की अहिंसा आज पुनः प्रासंगिक हो गई है -

सामान्यतः जीवों का बध करके उनके प्राण हर लेना हिंसा समझी जाती है और हिंसा का अभाव अहिंसा कही जाती है। अहिंसा अर्थात् हिंसा नहीं। किन्तु अहिंसा केवल इतनी ही नहीं है। अहिंसा अर्थात् मन, वचन और शरीर (कर्म) से किसी को पीड़ा न देना अथवा उसका अहित न करना। भारतीय संस्कृति में किसी के वैधानिक प्राप्तव्य का बलात् हरण कर लेना या उसे न देना भी हिंसा की कोटि में आता है। ऐसी हिंसा ही प्रतिक्रिया के रूप में जीव हिंसा का रूप ले लेती है। हमारे शास्त्रों में अहिंसा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है- अहिंसा परमो धर्मः। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह- ये धर्म के पाँच तत्त्व बतलाए गये हैं। अहिंसा धर्म के इन पाँच तत्त्वों में प्रमुख है।

महर्षि पतजंलि ने योग के यम नियमादि आठ अंगों को परिभाषित करते हुए यमों की संख्या 5 बतलाई है। जिसमें अहिंसा प्रथम है।[1] याज्ञवल्क्य स्मृति में यमों की संख्या 10 बतलाई गई है। इसमें भी अहिंसा प्रमुख है।[2] चरक-संहिता आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों और तंत्र शास्त्र में भी अष्टाङ्ग योग तथा उसके प्रमुख उपाङ्ग में अहिंसा की प्रशंसा की गई है। विष्णुपुराण में कहा गया है कि अहिंसादि यम नियमों की सकाम साधना से ये विशेष फल देते हैं और निष्काम साधना से मुक्ति सिद्ध होती है।[3] गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अहिंसा को शारीरिक तप, श्रेष्ठ ज्ञान और दैवी सम्पत् कहा है तथा प्राणियोंके मन में उत्पन्न होने वाले इस अहिंसा के भाव को अपना ही स्वरूप कहा है।[4] जैन दर्शन में रत्नत्रय नाम से अभिहित मोक्षोपयोगी तीन साधन कहे गए हैं- 1-सम्यग् दर्शन, 2-सम्यक् ज्ञान और 3- सम्यक् चारित्र्य। इनमें से सम्यक् चारित्र्य की सिद्धि के लिए अहिंसा आदि सार्वभौम 5 महाव्रतोंका पालन करना नितान्त आवश्यक कहा गया है।[5] बौद्ध दर्शन में त्रिरत्न नाम से तीन साधन कहे गए हैं- शील समाधि तथा प्रज्ञा। यहाँ शील से तात्पर्य समस्त सात्विक कर्मों का पालन करना है। अहिंसा, अस्तेय, सत्यभाषण, बह्मचर्य तथा नशा का सेवन न करना ये पंचशील कहे गए हैं और ये गृहस्थों एवं भिक्षुओं के लिए समान रूपसे आचरणीय कहे गए हैं।[6] रामचरितमानस में प्रत्येक जीव को ईश्वर का अंश और अविनाशी कहा गया है- ***'ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।'***[7] शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामने संकट की भयंकर घड़ियों में भी अहिंसा का साथ नहीं छोड़ा था और बालि तथा रावण जैसे आतंकियों को भी (उनका वध करने के पूर्व) जीवन बचाने का पूरा-पूरा मौका दिया था। अंगद को दूत बनाकर लंका में भेजते समय श्रीराम ने अहिंसा का बिल्कुल ही व्यावहारिक दृष्टान्त प्रस्तुत

* शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, कला सङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** इमेरिटस प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कला सङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

किया और अंगद को स्पष्ट शब्दों में निर्देश दिया तुम रावण दरबार में वही कहना जिससे मेरा कार्य सिद्ध हो जाय और उसका भी हित हो। ***'काजु हमार तासु हित होइ। रिपु सन करेहु बतकही सोई।'***[8] रावण जैसे परमशत्रु और अपकारी का भी इस प्रकार हित चिन्तन करना अहिंसा की पराकाष्ठा है। यह भारतीय संस्कृति का गौरव दर्शाता है। श्रीराम के इस निर्देश में भावी युद्ध में होने वाले अनावश्यक खूनखराबे से उभय पक्ष को बचाने की मंशा स्पष्ट लक्षित होती है। द्वापर युग में महाभारत का युद्ध न होने देने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं शान्ति-दूत बने तथा उन्होंने धृतराष्ट्र एवं दुर्योधनादि को काफी समझाया परन्तु वे नहीं माने।[9]

भारतीय नीतिशास्त्रों में कहा गया है कि असन्तोष और विद्वेष से जन्मा अन्धकार साम अर्थात् अहिंसा से ही दूर होता है- 'साम्नैव विलयं यान्ति विद्वेषिप्रभवः तमः'। शाण्डिल्योपनिषद् में कहा गया है कि - 'मन वचन और कर्म से समस्त प्राणियों के दुःख का कारण न बनना ही अहिंसा है'। इस सन्दर्भ में मनुस्मृति कहती है कि -

या वेदविहिता हिंसा नियतस्मिंश्चराचरे ।

अहिंसामेव तां विद्याद्रेदाद्धर्मो हि निर्वभौ ॥[10]

यद्यपि शान्ति की स्थापना हेतु अहिंसा सर्वोत्तम मार्ग है तथापि अहिंसा का प्रयोग करते समय हमें प्रतिद्वन्द्वी की संस्कृति को भी ध्यान में रखना होगा। यदि प्रतिद्वन्द्वी बर्बर संस्कृति से है तो हमें अहिंसा नहीं अपितु नृशंसता का आश्रय लेना होगा। कहा भी गया है कि **'शठे शाठ्यं समाचरेत्'**[11]। इस दृष्टि से मुहम्मद गोरी आदि के प्रति बरती गई क्षमाशीलता अन्ततः अनुचित सिद्ध हुई थी। समय के अनुसार अहिंसा नीति में परिवर्त्तन भी अपेक्षित होते हैं। चाणक्य की नीतियों और झाँसी की रानी की वीरता के प्रसंगों का सम्यग् अनुशीलन कर के ही हमें अपनी नीतियाँ निर्धारित करनी होंगी।

बापू की अहिंसा भी वही थी जो ऊपर कही गई है। अहिंसा हमारे देश की संस्कृति का मूलाधार है। महात्मा गांधी ने अहिंसा की व्याख्या करते हुए अनेकशः लिखा है- अहिंसा का भावार्थ है कि प्रत्येक जीवधारी में ईश्वर का दर्शन करना तथा यह प्रयत्न करना कि उस प्राणी के जीवन एवं विकास आदि में कोई रुकावट न आए। उनसे अपने के समान व्यवहार करना तथा उनके सुख दुःख में सहभागी बनना। बापू का आदर्श वाक्य था कि- ***'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे।'***[12]

महात्मा गांधी ने लिखा है कि - ***जब कोई व्यक्ति अहिंसक होने का दावा करता है, तो उससे आशा की जाती है कि वह अपने को घायल करने वाले व्यक्ति के प्रति क्रोध न दिखाए। वह उसका बुरा करने की इच्छा भी नहीं रखे, वह उसका भला चाहेगा, वह उसे अपशब्द नहीं कहेगा और वह उसे शारीरिक हानि नहीं पहुँचायेगा। वह बुरा करने वाले व्यक्ति के द्वारा पहुँचाई गई हानि को भूल जायेगा। इस प्रकार अहिंसा पूर्णतः निर्दोषता है। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति बुरी भावना की पूरी तरह अनुपस्थिति में ही समग्र अहिंसा है। इस प्रकार यह विषैले कीड़ों या पशुओं सहित सबके प्रति प्रेम का आह्वान करती है। वे हमारी विनाशकारी प्रवृत्तियों को पूरा करने के लिए उत्पन्न नहीं किए गए हैं। यदि हम स्त्रष्टा के मस्तिष्क को जानते तो हमें पता चल जाता कि जग की उत्पत्ति में उनका भी उचित स्थान है। इस प्रकार अपने सक्रिय भाव में अहिंसा प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना प्रकट करने में है। यह शुद्ध प्रेम है। मैंने ऐसा हिन्दू ग्रन्थों में, बाइबिल में और कुरआन में पढ़ा है।'***[13]

महात्मा गांधी सत्य और अहिंसा को गीता के 'अनासक्ति' से जोड़ते थे। आपका कहना था कि जिस कार्य में फल की आसक्ति रहेगी उसके सम्पादन में सत्य और अहिंसा का ईमानदारी से निर्वाह हो पाना सम्भव नहीं है। फलासक्ति होने से मनुष्य में असत्य बोलने तथा हिंसा अपनाने का लालच हो जाता है। गीता के अनुसार वे कर्म; जो ऐसे हैं कि आसक्ति के बिना हो ही न सकें तो वे त्याज्य हैं। सरलता से शान्ति उत्पन्न होती है। अहिंसा गीता काल के पूर्व भी परमधर्म मानी जाती थी परन्तु गीता के अनासक्ति के सिद्धान्त ने इसे सहज व्यवहार्य बना दिया है -

'गीता के मतानुसार जो कर्म ऐसे हैं कि आसक्ति के बिना हो ही न सकें वे सभी त्याज्य हैं। ऐसा सुवर्ण नियम मनुष्य को अनेक धर्म संकटों से बचाता है। इस मत के अनुसार खून, झूठ, व्यभिचार इत्यादि कर्म स्वतः त्याज्य हो जाते हैं। मानव जीवन सरल हो जाता है और सरलता से शान्ति उत्पन्न होती है।...

...इस विचार श्रेणी के अनुसार मुझे ऐसा जान पड़ा है कि गीता की शिक्षा को व्यवहार में लाने वाले को अपने आप सत्य और अहिंसा का पालन करना पड़ता है। फलासक्ति के बिना न तो मनुष्य को असत्य बोलने का लालच होता है, न हिंसा करने का। चाहे जिस हिंसा या असत्य के कार्य को हम लें, यह मालूम हो जायेगा कि उसके पीछे परिणाम की इच्छा रहती है। गीता काल के पहले भी अहिंसा परमधर्म रूप मानी जाती थी, पर गीता को तो अनासक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना था। दूसरे अध्याय में ही यह बात स्पष्ट हो जाती है।'[14]

यज्ञों में पशुबलि के सम्बन्ध में महात्मा गाधीं ने लिखा-

गीता युग के पहले कदाचित् यज्ञ में पशु हिंसा मान्य रही हो। गीता के यज्ञ में उसकी कहीं गंध तक नहीं है। उसमें जपयज्ञ यज्ञों का राजा है। तीसरा अध्याय बतलाता है कि यज्ञ का अर्थ है मुख्य रूप से परोपकार के लिए शरीर का उपयोग। तीसरा और चौथा अध्याय मिलाकर दूसरी व्याख्याएं

भी निकाली जा सकती हैं, पर पशु-हिंसा नहीं निकाली जा सकती।[15]

गांधी जी अहिंसा को लोकतंत्र की ओर ले जाने वाला मार्ग बतलाते थे। उन्होंने लिखा था कि ***'युद्ध का विज्ञान हमें विशुद्ध तानाशाही की ओर ले जाता है; अहिंसा का विज्ञान ही शुद्ध लोकतंत्र की ओर ले जा सकता है।'***[16] गांधी जी ने अनुभव किया था कि ***'उनकी अहिंसक सत्याग्रह की विधि जिससे वे छोटी-छोटी समस्यायों का समाधन कराते रहे हैं; एक पूर्णतया सशक्त माध्यम है जिसे राजनैतिक गुलामी जैसी बड़ी समस्या से जूझने के लिए भी उपयोग में लाया जा सकता है।***[17]

गांधी जी ने अपने इस अनुभव को कार्य रूप में ढाला और सफल हुए। इति दिक्।

पाद-टिप्पणी

1. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः/ पातंजल योगसूत्र 2/30चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी।
2. ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्दानं सत्यमकल्कता। अहिंसाऽस्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः।। याज्ञः स्मृ.3/313/आप्टे कोश पृ.830।
3. ब्रह्मचर्यमहिंसां च....।

   एते यमाः सनियमाः पंच पंच प्रकीर्तिताः।

   विशिष्ट फलदाः कामे निष्कामाणां विमुक्तिदाः।।विष्णु पुराण 6/7/36-38। चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
4. गीता में भगवान् के वचन- अहिंसा समता तुष्टिः। (10/5), अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्। (13/7), अहिंसा सत्यमक्रोधः। (16/2), देव द्विज गुरु प्राज्ञं पूजनं शौचमार्जवं। ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते। (17/14),
5. भारतीय दर्शन/बलदेव उपाध्याय पृ. 113-116/ शारदा मन्दिर, वाराणसी।
6. भारतीय दर्शन/बलदेव उपाध्याय पृ.124/ शारदा मन्दिर, वाराणसी।
7. श्रीरामचरितमानस (7/116/2) गीताप्रेस, गोरखपुर।
8. श्रीरामचरितमानस (6/16/2) गीताप्रेस, गोरखपुर।
9. संक्षिप्त हिन्दी महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर।
10. मनुस्मृति 5/44।
11. पंचतंत्र, शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
12. भक्त नरसी मेहता का प्रसिद्ध पद जो महात्मा गांधी का अत्यन्त प्रिय भजन था।
13. महात्मा गांधी और अहिंसा/ ले. रवीन्द्र कुमार।
14. 'गीता माता' पृष्ठ- 62, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली 2017।
15. महात्मा गांधी के विचार/ भवानीदत्त पण्ड्या/ पृ. 123/ ने.बु.ट्र. इण्डिया/ 1994।
16. 'गीता माता' पृष्ठ-62, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली 2017।
17. (समकालीन भारतीय दर्शन/ बसन्तकुमार लाल/मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी। पृष्ठ 117)

●

अहिंसा के पुजारी द्वारा हिंसकों द्वारा रचित चक्रव्यूह का सफल-भेदन

प्रो. महेन्द्र नाथ दूबे[*]

नोआखाली से लौटने के बाद बाबा ने बड़े बिस्तार से गाँधी जी की लक्ष्यभेदी सफल नोआखाली यात्रा का विवरण सुनाया था धान के पुआल से बनी मोटी चटाई की गद्देदार बिस्तरे पर सोते-सोते हितोपदेश-पंचतन्त्र-रामायण-महाभारत की कथाएँ जैसे सुनाया करते थे, ठीक उसी तरह। परन्तु चार दिन बाद ही जब माँ ने मुझसे वह सब जानना चाहा, तब तक तो मैं सब भूल चुका था। माँ ने एक दिन बाबा से शिकायत भी की, किस महामूर्ख को आप इतनी अच्छी चीजें सिखाने पढ़ाने की क्यों कोशिश करते हैं। ऐसी बात नहीं है बहू माँ। जब यह लघु कौमुदी के श्लोक और अस्टाध्यायी के सूत्र रट लेता है, तब किसी भाषा की किसी भी व्यवस्था को अच्छी तरह आसानी से याद कर लिया करेगा। तुम देखना कि गाँधी, जी महाकंट काकीर्ण राह में तरह-तरह के कष्ट उठाते चलने की महान कोशिशें को यह कितनी अच्छी तरह याद कर लेगा।'' फिर तो वे हर रात महाभारत के वीर अभिमन्यू के चक्रव्यूह के भेदन की कथा की तरह महात्मा गाँधी कि हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द्र स्थापना ऊँच-नीच के भेद-भाव मिटाने अछूतों को भगवान मानकर पूजने तक के ढेर सारे किस्से आपने कई कई वर्षों तक लगातार सुनाते रहे थे। उन्हें इस बात का गर्व था कि भले ही वे पुरुषोत्तम मदनमोहन श्री कृष्ण का दर्शन नहीं कर पाएं, किन्तु उन्होंने उसकाल में युगपुरुष मोहनदास करमचन्द गाँधी का जो दर्शन-साहचर्य पा लिया, बस इस एक पुण्य के भरोसे ही वह भवसागर पार कर जाएँगे।

सन् 1952 में अपनी अन्तिम साँस लेने के समय तक वे उस यात्रा कि विवरण भावविभोर ही सुनाते ही रहे थे। तब तक अपनी भी याददाश्त इतनी हो गई थी कि उनकी सुनाई कथाओं को स्मृति में सहेज सकूँ। हालाँकि उसके तीन वर्ष पहले ही गुजर कर स्वर्गवासिनी हो चुकी माँ का मै अपनी याददाश्त की ताकत को दिखा नहीं पाया कि अभी भी जब नितान्त अकेला होता हूँ तो उसे सिलसिलेवार रूप से मन-ही-मन दुहारा लेता हूँ।

अगरतला के जगन्नाथ मन्दिर-दुर्गा मन्दिर और हरिहर मन्दिर में- एक रात में ही थोड़ी-थोड़ी देर इन तीन जगहों में बदल-बदल कर रहते हुए गोपीनाथ बरदलै ने बाबा को बतलाया था कि (1) वे क्योंकर उन्हें साथ चलने को बाध्य कर रहे हैं। (2) इस महाखतरनाक यात्रा में, जिसमें कहीं भी प्राणों पर संकट आ सकता है, क्योंकि वे मुख्य मन्त्री के रूप में सुरक्षा-गार्ड लेकर न चलकर इतने सामान्य ढंग से जा रहे है कि महात्मा गांधी से मुलाकात के बाद भी वे नहीं चाहते कि कोई यह जाने कि वे महात्मा से मिल गए हैं। विशेष कर पंडित जी। उनका इशारा जवाहर लाल नेहरू से था, वायसराय वावेल द्वारा गठित अन्तवर्त्ती मन्त्रिमण्डल (Internal Counsil) के प्रमुख मन्त्री होने के कारण-कमेटी के सभापति पद से इस्तीफ दे चुके थे ओर देश-विदेश के समाचार पत्र वाले उन्हें प्रधानमन्त्री लिखने लगे थे। ऐसी गोपनीयता बनाए रखने में आप का सहयोग नितान्त आवश्यक हो गया है, क्योंकि महात्मा गांधी ने प्रतिदिन हिन्दू भगानेवाले अभियान जिसमें कत्ले आम ही होता रहता है, ऐसे गाँव में एक गाँव से दूसरे गाँव की जो यात्रा कर रहे हैं, उसे फिलहाल उन्होंने स्थगित कर दिया है और जवाहर लाल नेहरू के आने तक नोआखाली जिले के एक **श्रीरामपुर** नाम गाँव में डेरा डाले हुए हैं।

वहाँ उनके आस-पास विशेष-विशेष कारणों से जो ढेर सारे लोग हैं उनमे छह (6) व्यक्ति ऐसे हैं जो आप के निकट परिचय के हैं, जिनमें (1) एक आचार्य जे. वी. कृपलानी जी, जो आप के बड़े भाई देवव्रत दुबे के शिक्षक होने के साथ सिन्धी, गुजराती भाषा जानने के कारण उन्हें खूब चाहते थे और उनके तथा मालवीय जी के बीच सन्देशवाहक का काम जो आप करते थे अतः आप के भी स्नेह करते हैं। बाङ्ला भाषा-भाषी होने के कारण उनकी पत्नी सुचेता कृपलानी जी भी आप से स्नेह करती हैं। वे भी वहाँ आई हुई हैं। वे दूसरी महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। ऐसा ही एक भावी जोड़ा गान्धीजी चिकित्सकीय देखभाल करने वाली डॉ सुशीला नायर और उनके भावी पति श्रीमान् काका कासेलकर के पुत्र छोटे कासेलकर का है जो बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में जब कृपलानी जी थे तब उनके यहाँ आते-जाते समय आप से परिचित हुए थे। पाँचवे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं, एस.एस.पी. पुलिस अधिक्षक (4) श्री सतीशदास गुप्त, जो गाँधी जी की सारी यात्रा-योजना के सुरक्षा का भार सँभाले हुए हैं। छठें और सर्वाधिक काम आनेवाले व्यक्ति हैं आप के गुरुवर **प्रोफेसर निर्मल कुमार बसु** जिनसे आपने प्राचीन भारत और प्राचीन भारतीय लिपियाँ बड़े मनोयोग से सीखी थीं। काछाड़-शिलचर के बाङ्ला भाषी क्षेत्र के होने के कारण और उर्दू-हिन्दी जानने के कारण जो आप का बहुत मानते हैं। चूँकि गांधी जी के सचिव (सेक्रेटरी) के रूप में वे बराबर उनके साथ-साथ रहते हैं और प्रत्येक दिन सन्ध्या समय देशी-विदेशी पत्रकारों को गाँधी जी की दैनिक सारी गतिविधि की जानकारी देते हैं। विदेशी संवाददाताओं के लिए इंग्लिश में देना उनके लिए सुगम होता है, किन्तु चूँकि यहाँ ज्यादातर संवाददाता बाङ्लाभाषी है अतः उन्हें बाङ्लाभाषा में सारी रिपोर्ट समझनी पड़ती है। गांधी जी के हिन्दी

* प्रोफेसर, पूर्व निदेशक के0एम0 हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा

भाषणें का बाङ्ला अनुवाद वे बहुत फैलाकर जो देते हैं उससे उन्हें तो परेशानी होती ही है, बाङ्ला संवाददाता भी बोर हो जाते है इसी से उन्होंने आप को तार सन्देश से बुलाया था कि कम-से-कम हिन्दी का और हो सके तो बाङ्ला का भी सार-संक्षेप आप पत्रकारों को बतलाकर मेरी मदद करें। निश्चय ही वहाँ की जटिल परिस्थिति को समझते हुए ही आप जाना टालते रहे हैं। परिस्थिति खतरनाक है भी, किन्तु इसी का सुयोग लेकर-कि स्वयं प्रोफसर बसु ने आप को बुलाया है। इसलिए देर से ही सही आप आ पहुँचे है। मैं आप की सारी सुरक्षा का जिम्मा लेते हुए आप को वहाँ लिवालें चलना चाहता हूं। क्योंकि आप अपने इतने परिचितों की मदद से मेरी मुलाकात महात्मा जी से ऐसी गोपनीयता से करवाएँ कि किसी को कानोकान खबर न हो।

''ऐसा भला कैसे हो सकता है''- बाबा बोले थे,-''महात्मा गांधी से देश के एक प्रान्त का मुख्यमंत्री मिल रहा है और किसी को इसकी खबर नहीं होगी। ऐसा क्या संभव है?'' ''तब फिर दूसरा उपाय यह है कि आप प्रोफसर बसु का विश्राम करने के लिए राजी कर उन्हें विश्राम गृह में जब भेंजने और उनकी जगह स्वयं साक्षातकार करवाने में लग जाँय तब मुझे खबर करें, ताकि तब ही मैं मिलने पहुँचूँ?'' ''प्रोफेसर साहब का जैसे उदार स्वभाव है और रोज-राज की कड़ी मेहनत से वे जो काफी थके चुके होंगे, इस आधार पर मैं ऐसा करने में सफल तो हो जाऊँगा। किन्तु मैं यह नहीं समझ पा रहा कि आप प्रोफेसर बसु की उपस्थिति क्यों हटवाना चाहते हैं? आखिर वे भी तो हिन्दू ही हैं?''

''वह इसलिए कि वे बंगाली हैं।'' उत्तर में वसुमतारी जी कह उठे-''इसे मैं समझता हूँ। देश के एक आम हिन्दू में प्रति बंगाली हिन्दू का जैसा व्यवहार होता है, एक असमिया हिन्दू के साथ वैसा कत्तई नहीं हो सकता। कारण है, असमिया भाषा के प्रति बंगालियों का विद्वेष भाव जिसकी ढेर सारी परते हैं, जिसमे मुख्य है-असमीया लोगों को बंगाली भद्रोजन की अपेक्षाहीन कोटि का और असमीया भाषा को बाङला भाषा की अपेक्षा निम्नश्रेणी का मानना। अंग्रेजी शासन पहले कलकत्ते को केन्द्र कर बंगाल में ही दृढ़ हुआ। असम काफी बाद में जब अंग्रेजी हुकूमत हुई, तब तक बाङ्ला भाषा शासन की सहायक भाषा बन चुकी थी। असम में किस स्थानीय भाषा से शासन हो? इसकी चिन्ता के समय बंगाली महापुरुषों – यहाँ तक कि कवि गुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक ने समझाया कि असम की कोई अपनी भाषा नहीं है। बंगाल का बिगड़ा हुआ रूप ही असमीया भाषा है। अतः अच्छा हो कि असम-प्रदेश में भी स्थानीय भाषा के रूप में बंगाल-भाषा का ही व्यवहार हो। फलतः स्थानीय भाषा के रूप में असम में भी बाङ्ला भाषा का ही व्यवहार होने लगा। बाद में जब अंग्रेजों को वास्तविकता समझ में आई, असमिया जनगणना ने जब संघर्ष किया तो सन् 1935 ई0 में जाकर असमिया हमारे प्रदेश की स्थानीय भाषा हुई। इससे बाङ्ला भाषा के भरोसे जो पूरे असम में बंगाली भद्रजन नौकरी पाते चले आ रहे थे, वह कम होने लगे। परिणाम स्वरूप असमिया जनता के प्रति बंगाली समाज में द्वेष भाव बढ़ गया।

दूसरी कठिनाई है-बाङ्ला भाषा के प्रति अधिकाधिक आग्रह भाव। बंगाली हिन्दू, बंगाली मुसलमान से मार खाने पर उससे अलग तो होगा, मगर यदि उसका झगड़ा असमीया भाषी हिन्दू-मुसलमान से हो, साथ ही की बाङ्ला भाषी मुसलमान से भी वैसी स्थिति बने तो वह हिन्दुभाई की बात भूलकर बाङ्ला भाषाई एकता के नाम पर बाङ्ला भाषी मुसलमान का साथ देगा, असमीया भाषी हिन्दू किसी और का नहीं।'' ''सुनिए पंडित जी!'' उनके साथ जो एक और सज्जन-कोकरा-झाड़ के ब्रह्म उपाधिधारी आए थे, वे कह उठे-''मै प्रोफेसर साहब का शिष्य रहा हूँ। अच्छी तरह जानता हूँ कि उनमें ऐसी दुर्बलता नहीं है। परन्तु उनका जो अतिसरल स्वभाव है, किसी बात को छिपाए रखने की जो चतुराई नहीं है, उससे वे नरदलै जी की ऐसी बातों को भी सहज ही फैला दे सकते हैं, जिन्हे फिलहाल फैल जाने से भारी मुसीबत खड़ी हो सकती है।''

''ये ब्रहन जी शिलहट के मुरारी कालेज ढाका के जगन्नाथ कालेज ही नहीं कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालेज के भी बाङ्ला और अंग्रेजी छात्र रहे हैं। महात्मा जी के हिन्दी भाषण को, कांग्रेस अध्यक्ष और उनके वर्त्तमान सहयोगी कृपलानी जी की कृपा से जब आप हिन्दी से बाङ्ला में कर देंगे, तो बाङ्ला से अंग्रेजी में करने का कार्य ये सम्पन्न कर देंगे। फिर उनके स्टेनोटाइपिस्ट जब उन्हें टाइप कर देवे, तब उसे ले जाकर आप प्रोफेसर बसु को सौंप दीजिएगा। बस एक दिन की तो बात है। कहिए मंजूर है, न?''

बाबा ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया था। रात के अँधियारे में ही कार से शुरू हुई यात्रा लगातार सबेरे तक जारी रहती चल रही थी। थकावट मिटाने के लिए काफिला जो एक जगह रुका तो चाय की एक दूकान पर चाय पीते हुए जो एक अंग्रेजी अखबार पढ़ा तो जानकारी मिली कि ठीक उसी दिन पंडित जवाहर लाल नेहरु महात्मा गांधी से कुछ जरूरी विषयों पर मार्ग दर्शन लेने हेतु श्रीरामपुर नामक उस गाँव में ही पहुंच रहे है। अतः बंगाल-प्रदेश की सुहरावर्दी की मुस्लिम लीग सरकार ने पूरे नोआख्वानी मण्डल में सुरक्षा व्यवस्था और अधिक चाक चौबन्द कर दी है। छोटे-छोटे नाले नालियों पर भी बांव-लकड़ी के खम्भे बाड़ लकड़ी के तख्तों से पुल सा बना दिया गया है, ताकि खाल-बिल-नदी-नालों झील-तालाबों- धान के खेतों वाहने इस पनियल इलाके में भी कहीं पंडित जी के पावों में कीचड़ पानी न लगे। घास-फूस के झुण्डों में भी जगह-जगह पुलिस तैनात कर सतीशदास गुप्ता ने सुरक्षा व्यवस्था ऐसी कड़ी कर दी है कि आज तो उधर जाना ही संभव नहीं है। अतः कारों को टैंकों एवं बैंको के लिए मशहूर शहर कोमिल्ला की ओर मोड़ दिया गया। कोमिल्ला के एक होटेल में जो पूरा दल ठहरा वहाँ दल के मुखिया का नाम बाबा का ही लिखा गया।

दो दिनों तक नेहरु जी जो महात्मा के अतिथि रहे, उसके बाद जब वे विदा हो गए तभी वह दल माननीय मुख्य मंन्त्री के नेतृत्व में उनके सेक्रेटरी और अन्य सहायकों के नाम और झण्डे के साथ श्रीरामपुर गाँव पहुँच सका। दैव योग से सुचेता कृपलानी जी से ही बाबा की पहले मुलाकात हुई जो अपने ठहरने के एक घास-फूस की झोपड़ी वाले, घर में ले गई जहाँ कृपलानी जी का भी आशीर्वाद बाबा को मिल गया। वहीं पर बाबा कालेलकर के बेटे भी ठहरे हुए थे, जो अपनी भावी पत्नी डाँ. सुशीला नायर के लिए जो बेशकीमती गहने, साड़ियाँ लाए थे, उन्हें सुचेता जी को दिखाने के लिए उनकी प्रतिक्षा कर रहे थे। बाबा को देखते उछल पड़े- अरे तूँ भी यहाँ है। चल मेरे साथ इन उपहारों को डाँ. नायर को सौंपने में मेरी मदद कर देना।''

मूढ़ी चाय जल पान कर हम जा ही रहे थे कि गुरुवर निर्मलकुमार बसु भी उधर ही आ गए। मुझे देख बोल उठे-'' अच्छा तो उस चाय बागानो के जंगली इलाके में भी मेरा सन्देश तुझे मिल गया। अच्छा हुआ, मगर तुम्हारे लिए एक अच्छा अवसर खिसक गया। कल या परसों आ गया होता, तो भारत के भावी प्रधानमंन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से तुझे मिलवा दिया होता। कोई बात नहीं। महात्मा गांधी से तो मिल सकेगा। वैसे इस समय का मिलन कुछ कष्टकारी होगा, क्योंकि महात्मा ने निर्णय किया है कि कल ही वे श्रीरामपुर गाँव छोड़ देंगे। पुलिस कप्तान सतीशदास गुप्त ने जो एक लकड़ी के पल्लों और टिन की छत का पहियों पर डगराते चलने वाला घर बनवाया है, उसमें भी रहना अस्वीकार कर दिया है। ''एक गाँव-एक रात''-का जो फार्मूला उन्होंने बनाया है, उसक अनुसार प्रतिदिन पूरे दिन भर वे इस गाँव से उस गाँव चक्कर लगाते हुए जिन परिवार के नवयुवकों का कत्ल हुआ है। जवान लड़कियाँ क्या, अभी जल्दी व्याही हुई सोभाग्यवती स्त्रियाँ जबरन अपहृत कर ली गई हैं, ऐसे ही किसी परिवार में वे रात विताएँगे। फिर दूसरे दिन इसी क्रम में किसी दूसरे गाँव जाएँगे। कहीं खान-पान का जुगाड़ हुआ भी, तो भी मातम मनाने वाले परिवार में ठहरने पर भी कुछ खाए-पियेंगे नहीं। अनेक मुस्लिम-प्रतिनिधि उन्हें ऐसा व्रत न लेने की गुजारिश करने आए पर वे माने नहीं हैं।

ऐसी कठिन स्थिति में संभव है तूँ न चाहे फिर भी पंडित नेहरू की आवभगत में जो मै उतना थका था उसके ऊपर भी मुझ पर जो घटना गुजरी है, जिसे बाहर चलकर तुझे बतलाऊँगा, उससे मेरा ब्लड-प्रेशर बढ़ गया है बेहद थक गया हूँ। अतः चल पहले मैं महात्मा जी से, अनुमति ले लूँ कि कल तूँ मेरी जगह काम करेगा।

''महात्मा जी को क्या देखा। मेरे तो युगों-युगों के पाप धुल गए। परमशान्त-धीर-गम्भीर महापुरूष की दिव्य कान्ति देख मैं भाव-विभोर हों निहारता ही रहा था। जन्म-जन्म के पुण्य प्रताप से दर्शन कर रहा था, युग-पुरुष का- कि कब कैसे प्रोफेसर बसु ने उन्हें राजी कर लिया, पता ही नहीं कर पाया।''- बाबा रातों को सोते समय जब अपना वर्णन सुनाते तो इस प्रकरण का एक बार ज़रूर दुहराते।

कुछ देर बाद प्रोफेसर बसु ने बाबा का हाथ पकड़ा और बाहर लिवा ले आए। ऐसी शान्त-गम्भीर-दशा महात्मा की तब है कि अभी थोड़ी देर पहले उनके साथ जो अशिष्ट-व्यवहार हुआ, उसे दूर खड़ा होने पर भी मैं नहीं सह पाया था। जानता है क्या हुआ?

पहले तो ढावा-कोमिल्ला-चट्टगाँव खुलना के जाने माने वकीलों-बैरिस्टरों का एक प्रतिनिधि मण्डल लिए मशहूर कानून विशेष कालीकिकरादत्त जी पधारे। नेहरू जी के आतिश्य से थके-माँदे गाँधी आज आराम करने दों''- की मेरी विनती उन्होंने नहीं मानी। अतः उन्हें मिलवाना ही पड़ा। उन कानूनचियों ने गाँधीजी को ऐसे-ऐसे कानूनी दाँव-पेंच मारे कि मैं क्या बतलाऊँ? कहते गए- ''जिन्ना की तरह आप भी तो वकालत करते रहे। फिर जिन्ना के सामने सरेन्डर क्यों कर गए। गवर्नर जनरल हावेल आप को 70 प्रतिशत चतुर-कौटिल्य 15 प्रतिशत महात्मा और 15 प्रतिशत धोखेबाज भड़ैत बतला-बतला कर जिन्ना और लियाकत अली की प्रशंसा करता रहा, तब भी आपने विरोध क्यों नहीं किया। पश्चिमोत्तर भारत में जिन्ना और लियाकत अली की कौन सी खानदानी वरासत है कि वे उस पर अपना कब्जा माँग रहे हैं।

बलूचिस्तान-पख्तूनिस्तान-पेशावर के पूरे क्षेत्र में खान अब्दुल गफ्फार खान के बड़े भाई डॉ0 बादशाह खान ने एलेक्शन जीता है। मुख्य मन्त्री बने हुए हैं, फिर भी आप उनके क्षेत्र को इन मुल्लाओं को सौंप देने पर सहमत हुए जा रहे हैं। पंजाब-उत्तर-पश्चिमी राजस्थान में सिखों-हिन्दुओं के बहुमत वाली सरकार का नेतृत्व करने वाले खिजिर खान साहब उस इलाके को मुस्लिम लीग के हवाले न करने की बार-बार गुजारिश कर रहे हैं। सीमान्त गांधी कहे जाने वाले खान अब्दुल गफ्फार खान ने तो आप से कुछ कठोर शब्दों में ही कहा ''अहिंसा के पुजारी! हम सभी आप से ही अहिंसा का पाठ पढ़ते रहे है और आप है कि हमे इन खूँखार भेड़ियों के सामने फेंक दे रहे हें।'' तब तो आप का दिल नहीं पसीजा कि इन महाचतुर राजनीतिज्ञों की कुटिल बलि चढ़ाने की उनकी चालो को काट फेंकते। परन्तु वह तो हिंसा होती न। जब पश्चिमोत्तर भारत में मुस्लिम आबादी अधिक है नहीं, तब जो वहाँ हिन्दू-सिख-पारसी हैं उन्हें काट फेंक या भगाकर और मुस्लिम बहुल इलाका बना देने के लिए संयुक्त-प्रान्त-बिहार-मध्य भारत से मुस्लिमों की भारी संख्या को पहुँचाकर ही तो वहाँ पश्चिमी पाकिस्तान बनेगा। पूर्वी पाकिस्तान बनने वाले इलाके में बसी हिन्दुओ की भारी तादात का कत्ल करके ही तो यहाँ मुस्लिम बहुल पाकिस्तान बनेगा। उसे बनाने के लिए जब हजारो हिन्दुओं का कत्लेआम हो चुका है तब आप को सूझी है। यहाँ आकर शान्ति स्थापित करवाने की ज़रूरत-ऐसा कहकर महात्मा का उत्तर सुने बिना ही वे सदल-बल वापस चले गए।

महात्मा के हृदय पर क्या बीती? यह तो मैं नहीं जानता किन्तु मेरा हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। परन्तु उससे भी बड़ा हादसा मुझ पर तब गुजरा जब ढेर सारी जवान-वृद्ध लड़कियां-

महिलाओं और जिन मर्दों की औरतें या बेटियाँ जबरन उठा ली गई थीं। ऐसे ढेर सारे युवको-अधेड़ों की जमात लिए एक वैष्णव साध्वी जी अपना चमचमाता हुआ त्रिशूल लिए आ पहुँची और महात्मा से मिलवा देने का हठ करने लगीं। मैंने महात्मा जी के थके होने की बिनती करता ही रहा किन्तु वे उसे न मानते हुए जबरन शिविर मे दाखिल होने लगी। सुरक्षाकर्मी अभी उन्हें सँभाल तो रहे थे कि महात्मा जी स्वयं बाहर निकल आए उन्हें अपने पास बुला लिया।

फिर तो मैं बाहरी फाटक पर आ खड़ा हुआ। दूर होने के कारण उनकी बातचीत मुझे ठीक से सुनाई नहीं दे रही थी, किन्तु अन्त तक पहुँचते-पहुँचते जब वैष्णवी बहुत ऊँची आवाज में चीखी तब मैने सुना-'' थूड़ी है तेरी ऐसी बुजदिल अहिंसा पर'' और देखा कि सचमुच ही उसने महात्मा के मुंह पर पच्च से थूक ही दिया है। फिर महात्मा तो चुपचाप कंधे पर रखे अपने अंगोछे से मुँह पोछते हुए अन्दर चले गए पर मैं वैष्णवी के पास तक बढ़ गया। मेरे काँपते हुए शरीर और लड़खड़ाती आवाज से अपने आप निकल रहा था-''आप अपने आप को वैष्णवी कहती है? यह है आप की वैष्णवी मर्यादा? आप शैव साध्वी या शाक्त भैरवी तो नहीं है, फिर यह तेज धार वाला त्रिशूल लिए क्यों फिरती हैं, इसके बाद संभवतः मैं गिर पड़ा था। तभी तो बाद में अपने को दासगुप्ता के टेन्ट में लेटा पाया जब जगा तो उन्होंने ही चाय पिलाकर मुझे मेरी कुटिया में पहुँचवाया। अब मैं कृपलानी जी के यहाँ इसी उद्देश्य से तो गया था कि मुझे एक दिन का विश्राम दिलवा दें। फलतः दूसरे दिन ही बाबा काम पर लग गए। हालाँकि उसकी चर्चा कर वे फफक कर रो पड़ते थे, कहते कि वह दिन देखना नहीं पड़ता।

नेहरू जी के रास्ते में पड़ने वाले एक नाले पर बाँस और काठ के पटरों से बना जो पुल बनाया गया था, कल हमारे आते समय भी साफ सुथरा था, लेकिन बड़े सबेरे-सबेरे ही जब उधर से होकर जाने के पहुँचे, सारे पढरों पर मनुष्यों का मल-मूत्र फैलाया हुआ था। दुर्गन्ध के मारे क्षण भर खड़ा होना भी मुश्किल था, किन्तु महात्मा जी वहीं खड़े हो गए और तसले तथा झाड़ू ले आने को कहा। सामान भी आ गया तथा कुछ मेहतर भी बुला लिए गए, मगर महात्मा स्वयं ही सफाई में लग गए। हिदायतें दीं कि नाले के पानी में ये गन्दी चीजें न गिरने दी जाँय।

आदमी की उत्तम देह से ही सबसे अधिक दुर्गन्ध वाला पदार्थ निकलता है। निकालने के पहले तक वह वह उसे पेट में लिए-लिए फिरता ही तो है, फिर निकालने के बाद उससे घृणा क्यों? फिर जीवन देने वाले पानी में उसे क्यों बहाना। उठा ले चलकर गढ्ढे खोद कर ढँक दो। आधे पुल की सफाई हुई ही थी कि दूसरे छोर पर गुह-मूत बिखेरता हुआ एक आदमी पकड़ लिया गया। कमर से घुटने तक पीताम्बरी-रामनवमी धोती लपेटे, नंगी पीठ-खुले पेट पर मोटा जनेऊ पहने, वैष्णवी छाप का त्रिपुण्ड लगाए हुए उस आदमी को सभी ब्राह्मण ही समझ बैठे थे, लेकिन पूछताछ से मालूम हुआ कि वह सफाई करने वाली मेहतर काम करती है। उसने बतलाया कि यहाँ की मुस्लिम लीगी नेताओं का कहना है कि बनने वाले पाकिस्तान के मेहतर इसी वेश-भूषा में रहेंगे अतः हमे अभी से इस वेश में रखकर गांधी जी जिस-जिस रास्तों से गुजरेंगे उन पर गुह-मूत बिसेरने को कहा है। ब्रह्मण तो नहीं हैं, मगर हम हैं हिन्दू ही । हिन्दू भी हमे कोई अच्छी निगाह से नहीं देखते फिर भी एक ब्राह्मण के रूप में हम यह काम नहीं करना चाहते। हमारा वश चले तो हमारी दूरी जाति ही यहाँ से भाग जाय।

''तो भाग क्यों नहीं गया साला। महात्मा के रास्ते में ऐसी गन्दगी फैलाने को यहाँ क्यों बना रहा? सभी हिन्दू तो भागे जा ही रहे है, तू क्यों?'' एक मुस्लिम पुलिस आफिसर ने कड़क कर पूछा।

''क्या करें साहब''- वह हाथ जोड़कर बोला''- सारे हिन्दुओं को तो वे भगा रहे हैं मगर हम मेहतरों, मरे पशुओं की खाल उतारने वाले मोचियों, कब्रें खोदने ओर दाहा-रमजान के जुलूसों की पालकियाँ ढोनेवाले, नदी-बन्दरगाहों पर कुलीगिरी करनेवाले मज़दूरों को पाकिस्तान बन जाने पर भी हिन्दुस्तान भागने न देंगे। चोरी छिपे भगे तो जैसे बड़ी जमतियों के अपनी जगह जमीन, बाग-बगीचा-कोठी-अटारी और नौजवान छोकरियाँ छोड़कर न भागने पर मार डाल रहे है, उसी तरह हमे भागतु हुआ पकड़ पाने पर हमें मार डालेंगे। कहते हैं कि पवित्र जमी पर पाकिस्तान क्या इसलिए थोड़े बनोगी कि राजशाही कौम के मुसलमान ये सब गन्दा काम करेंगे?''

''साला मेहतर कहीं का। गाल बजाकर लेक्चर दे रहा है?'' कहता हुआ पुलिस अफसर उसके कन्धे पर चढ़ बैठा तो महात्मा जी ने खुद बढ़ कर उसे छुड़ाया। बोले- मुसलमान ही नहीं, हिन्दू कौम भी तो आदमी की इज्जत करना नहीं जानती। गन्दगी हटाने का सबसे अच्छा काम जो करते थे-ब्रह्मण-उन्हें महाब्रह्मण कहा जाता था, उन्हे कहने लगे महपत्तर। उन्हें भी नीच ही समझते हैं। परिश्रमी काम करने वालों को पहले महात्तर कहते, यानी महामानव, अब कहने लगे मेहतर, मरे पशुओं की सद्गति बनाने वालों को मोक्षिक यानी मोक्ष देने वाला कहते थे, अब कहने लगे मोची। अब अगर यह मोची भी अगर है तो क्यों मारा-पीट जाय। ये कोई काम अपनी इच्छा से तो करते नहीं। इन्हें करने को मज़बमर किया जाता है। मारने की नहीं। इसे विश्राम देने की जरूरत है, साथ ही सुरक्षा की भी क्योंकि जिन्होंने इसे यह करने को मज़बूर किया है वे इस पर निगाह रखे हुए होंगे। इसने भेद खोल दिया है इसके लिए इसके परिवार तक को दण्डित कर सकते हैं। दासगुप्ता साहब। पूरा पता लगाकर व्यवस्था करवाइए। और फिलहाल इसे जल-जलपान करवाकर मेरी कुटियां में पहुँचा दीजिए।''

ऐसी घटनाओं की चर्चा के क्रम में वह उस बड़ी ही दर्दनाक आवाज में करते, जिसके बाद उन्होंने प्रोफेसर बसु से वहाँ से चले जाने की प्रार्थना की थी।

उस दिन की पूर्व रात को वे मेघना नदी की एक छोटी शाखा नदी के किनारे क एक छोटे गाँव कुण्डलकाँदी में ठहरे थे।

सबेरे-सबेरे लाल-लाल सूरज की किरणों के ठंढे प्रकाश में महात्मा आगे-आगे बढ़े जा रहे ही थे कि झाड़ियों के सहारे कपड़े को फैलाकर उस पर जो लिखा था, ठहरकर उसे पढ़ने लगे। फिर तो पीछे-पीछे चलने वाले भी आ जुटे और सभी पढ़ने लगे। बाबा ने भी पढ़ा-

''ढोंगी फकीर! तूँ कहता है न कि पाकिस्तान तेरी लाश पर बनेगा। मतलब कि जब तक तूँ जिन्दा रहेगा पाकिस्तान बनने नहीं देगा। क्यों नहीं बनने देगा? पाकिस्तान-माने-पाक-पवित्र जमीन। यानी जहाँ इस्लाम कबूल करने वालों का पवित्र राज्य दारूल इस्लाम हो। तो वह तो तेरे भारत में सदियों था। इस बंगाल में ही बख्तियार खिलजी से लेकर सिराजुद्दौला तक। मुलतान-लाहौर-दिल्ली, आगरा, रामपुर, लखनऊ, हैदराबाद, गोलकुण्डा, शोलापुर और तुम्हारी जन्मभूमि के पास के जूनागढ़ में क्या हिन्दुओं का नापाक राज्य था? अंग्रेज बस दो जगह पाकिस्तान बनाना चाहते हैं। तू भी गले की हड्डी बना हुआ है। मगर हम तो इनसे पाकिस्तान को लेकर ही रहेंगे। पाकिस्तान जब लाशों के बिछ जाने पर ही बनेगा तो हमने तेरे जैसे बूढ़े बेवकूफों की लाशें आगे बिछा दी हैं। तूँ चाहे तो गिन ले। उनमें तेरे कुछ गद्दार मुस्लिमों के नाम की लाशें भी रखी हैं जिन्हें जलाने की जगह दफनाया ही जाएगा। परम पवित्र मक्का में पैदा हुआ मौलाना आज़ाद, रफी अहमद किदवई, फखरूद्दीन अली अहमद के साथ-साथ हमने अपने इस बंगाल के उस गद्दार के नाम पर भी लाश बिछाई है जिसने मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पहले-पहले रखा था- यानी मियाँ फजलूल हक, प्रजाकृषक पार्टी बनाकर, सुहराववर्दी की मुसिलम लीग सरकार से हटकर जो अपने पुराने यार श्यामा प्रसाद मुखर्जी से मिलकर ''बृहत्तर बाङ्लादेश'' बनाने की फितरतें रच रहा है। आगे जो नौ लाशें बिछाई गई है, उनमें एक उसके नाम की भी है। तेरी सुविधा के लिए बाङ्ला का गुजराती-हिन्दी तर्जुमा भी आगे की झाड़ियों पर टंगा है। खुदा हाफिज़, अल्ला हो अकबर।

आगे कोई क्या पढ़ता? कफन में लपेटी नौ बूढ़े लोगों की लाशें उठवाते। उनकी अर्थी सजवाते और मेघना किनारे ले जाकर उनका दाह संस्कार करने में ही सारा दिन गुजर गया। थकान होने पर भी बड़ी रात तक नींद नहीं आई। जब आई तब ऐसी किं एक झोपड़ी में शीतल पार्टी की टंठी चटाई पर ऐसी आई कि काफी दिन चढ़ जाने के बाद ही खुली। झोपड़ी के मालिक मछुआरे वृद्ध ने चाय देते हुए समाचार दिया कि ब्रह्म नाम की उपाधि वाले कोई आप के मेहमान आए हुए हैं। आप की तरफ तो बताते हैं कि ब्राह्मण मरने के बाद ब्रह्म होते है मगर जिन्दा-जिन्दा हो ये ब्रह्म कैसे हुए हैं?'' ''जिन्दा क्या? मुर्दा क्या? ब्रह्म अन्ततः आदमी का भला ही करते हैं। समझ लो कि कुछ भला करने आए है इसी से अपने को ब्रह्म बतलाया है।'' कहते हुए बाबा चाय की कांसे की गिलास उठाए-उठाए ही उनसे मिलने चले गए।

ब्रह्म ने बतलाया कि बाबा को तुरन्त ही उनके साथ-साथ चल देना होगा। मेघना नदी से करीमगंज के पास के भैरव बाजार तक फेरी लगाने वाला स्टीमर पास के स्टीमर घाट पर खड़ा है। गांधी महात्मा अपनी टोली के साथ पास की एक मुस्लिम बस्ती में जा चुके हैं, जहाँ नोआखाली की हिंसा में भाग लेने वाले कुछ मुस्लिम नौजवान ने महात्मा के सामने अपने हथियार डाल देने के लिए एक सभा का आयोजन किया है।

इधर पता चला है कि नोआखाली की प्रतिक्रिया में बिहार के पटना में भी कुछ हिन्दू भटक गए है, जो मुसलमान नागरिकों पर प्रहार करने की योजना बना रहे है। अतः बहुत संभव है कि महात्मा गांधी भी यहाँ से शीघ्र ही पटना के लिए रवाना हो जाँय।''

मेघना नदी के फेरी घाट से भैरव बाजार तक स्टीमर की यात्रा लगभग दस घन्टों की थी। इसबीच जगते-सोते आराम करते ही ज्यादा समय बीता किन्तु ब्रह्म जी पूरे रास्ते कोई बात नहीं की। भैरव बाज़ार से छोटे फेरी लंच वालो जो जिन्दा नौका से जब कमलिनी नदी से कुशियारा नदी में करीमगंज की ओर मोटरबोट मुड़ी तब ब्रह्म जी ने अपनी इस अचानक यात्रा का मक़सद बतलाया। पहले मैं तुम्हें एक दुःख की समझा दूँ। वह यह कि यह जो एरिया हमारी मोटरबोट के साथ-साथ पीछे छूटा जा रहा है, इसे अच्छी तरह निहार लीजिए। क्योंकि बहुत संभव है कि आगे फिर कभी इधर आना न हो पाए। क्योंकि बरदलैजी तथा उनकी कोशिश में से नगा, कुकी, ग्मेश, ख़सिया जयंतिया मिशी-मिरी जातियों के तमाम नेताओं की कोशिशों के बाद भी शिलहट जिला जो पूरब की काशी कहलाता है, अब शायद हमारे भारत की सीमा में न सिमट पाए।

उस दिन बरदलै जी, बसुमतारी जी और महेन्द्रमोहन चौधरी जी गांधी से मिलने आए थे, उसका मूल मकसद था कि गांधीजी से पंडित नेहरू को यह कुबलवाना किसे जिन्ना-लियाक़त अली की चालबाजी से अंग्रेज गवर्नर जनरल द्वारा प्रस्तुत कैबिनेट मिशन का वह प्रस्ताव न माने जिसमे देश के जो तीन सेक्शन किए गए है- ए,बी,और सी। जिसमें उत्तर दक्षिण भारत को 'ए' सेक्शन में, पश्चिमोत्तर भारत को 'बी' सेक्शन में तथा पूर्वी एवं पूवोत्तर भारत को 'सी' सेक्शन में रखा गया हैं। परन्तु सारे पूर्वोत्तर भारत के हिन्दू-मुस्लिम ईसाई-बौद्ध तमाम लोगों से मिल-मिलकर उनकी सहमति जुटाने में इतनी देर हो गई कि जब तक आप को साथ लेकर हम पहुँचते तब तक नेहरू जी लौट तो चुके ही थे, उन्होंने स्वयं भी जो कैबिनेट-मिशन के प्रस्तावों को कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकार कर लिए जाने की गलती को सुधारने की जो चिन्ता जाहिर की थी, उस पर गांधी जी ने बहुत अधिक अभिरूचि नहीं दिखाई थी। दिखाते भी कैसे? जो कांग्रेस पग-पग पर उनसे मार्ग-निर्देश लेती चलती थी, उसने उनकी असहमति जानते हुए भी इतना बड़ा निर्णय जो ले लिया था।

परन्तु बरदलै जी के पहुँचने से गांधी जी काफी प्रसन्न हुए थे। क्योंकि बरदलै जी सरदार पटेल की गांधीजी के नाम लिखा जो

सील बन्द लिफाफा लिए पहुँचे थे, उसे खुलवाकर जब गांधी जी ने पढ़ा तो उनके चेहरे पर हँसी तैर गई। गांधी जी की सलाह मानने की गलती के लिए क्षमा माँगते हुए पटेल ने आग्रह किया था कृपाकर वे कोई ऐसा उपाय सुझाएँ जिससे बंगाल के साथ-साथ समुचे असम सहित पटकाई हिल्स (आजका नगालैंड) लुशाई हिल्स (आज का मिजोरम) खाक्षी-शारो-जयन्तिया हिल्स (आज का मेघालय) और नेफानार्थ फ्रान्टियर एरिया (आज का अरूणाचल) पाकिस्तान के हिस्से में जाने से बच जाए। बरदलै जी इससे बहुत चिन्तित हैं। उनकी भावना कट्टर हिन्दूवादिता की नहीं है, बल्कि उनका कहना है कि पहाड़ी जंगली जातियों को तो अंग्रेज मिशनरियों ने अंग्रेजी भाषा-भाषी और ईसाई धर्मावलम्बी बना ही डाला है। पाकिस्तान बनने पर ईसाई-मुस्लिम संघर्ष का जो वातावरण बनेगा उसमें द्वितीय विश्व युद्ध से भी अधिक नर संहार होगा। मैदानी भागों में हिन्दुओं के अलावे भी जो बौद्ध और प्रकृति उपासक जातियाँ हैं उनके लिए भी जीना दुर्भर हो जाएगा। अलावे इसके अभी जो बाङ्ला भाषा-भाषी हिन्दू भारी संख्या में भागकर असम के काछाड़ (शिलचर) धुबड़ी गोआलपाड़ा आदि जगहों में जमां हो रहे है, जहाँ के मूल निवासियों बोडो कछारी डिमासा-तेरां उत्तर जयन्तिया भागों की भाषाओं के अलावा चाय बागानों में काम करने पहुँचे उड़िया-सथाली भोजपुरी-मगाहों भाषा भाषियों की भारी संख्या पर भी भारी पड़कर वे लोअर प्राइमरी स्कूलों बाङ्ला भाषा माध्यम से पढ़ाई करवाने लगे हैं, इससे असम-प्रदेश के एक भाषा आन्दोलन में भी उलझ जाने का खतरा तो है शिलांग, मैमनसिं रंगपुर से जो हिन्दू भगा रहे हैं और मुस्लिम इलाकों में जनगणना करवाने की माँग कर रहे है, तो हिन्दू की संख्या कम होने पर इनके पाकिस्तान में चले जाने से फिर पूरे भारत के लिए भारी समस्या बन जाएगी।''

गांधी जी ने इस समस्या की गंम्भीरता को समझा और बरदलै जी को समझाया कि दिल्ली में जो बैठक हो रही है, उसमें भाग लेने तो आप को जाना ही पड़ेगा, नहीं तो पूरी कांग्रेस पार्टी द्वारा माने गए प्रस्ताव से मुकरने का दोषारोप लगेगा, परन्तु वहाँ जाकर फिर आप तुरन्त ही वाकआउट करते हुए बाहर आ जाइएगां। तब स्वाभाविक रूप से वाकआउट का कारण पूछा जाएगा। तब लिखित रूप से आप को अपनी तथ्यपरक आपत्ति जताने का मौका दिया ही जाएगा। उसमें आप इन सारे तथ्यों को प्रमाण सहित रखिएगा। मैं जवाहर लाल नेहरू और सरदार बल्लभ भाई पटेल दोनो के नाम पत्र दिए दे रहा हूँ। जितनी जल्दी हो आप दिल्ली रवाना हो जाइए।''

फिर तो हमने गोहाटी लौटने के बजाय ढाका से ही हवाई जहाज पकड़ा और दिल्ली चले गए। निर्धारित मीटिंग जब हुई तब पंडित जी और सरदार जी दोनो ही नेताओं ने बरदलै द्वारा बायकाठ करने को सही बतलाया और जब बरदलै जी ने प्रमाण सहित आपत्तियाँ दर्ज की, तब अन्ततः सेक्शन सी से असम को बाहर रखने की बात स्वीकार कर ली गई। परन्तु असम प्राविंस का शिलहट जिला चूँकि इस बीच बाहर से आई मुस्लिम जमात से बेहद भर गया है, अतः वहाँ रायशुमारी-एक प्रकार से रेलीजन-धर्म-के आधार पर जन गणना की बात भी मान ली गई है। इस तरह बहुत सहमति हैं कि यह शिलहट जिला भावी पाकिस्तान में चला ही जाए।

हाँ बोराक नदी की भीषण बाद और बदरपुर के आगे भाँगा से जो वह (1) कुशिदास और (2) सुरमा नदियों की शाखा में बँट जाती है, उसकी भयानक बाढ़ से उधर मुसलमान कम ही है। अतः शायद करीमगंज तहसील भारत वर्ष के हिस्से में आ जाए।''

उन्होंने अपनी बात तब पूरी की जब स्टीमर जो जिन्दा नौका करीमगंज के सदरघाट पर आ लगी। फिर वहाँ से करीमगंज स्टेशन से ट्रेन पकड़ वे शिलहट होते हुए शिलांग की ओर रवाना हो गए तब शाम ढल जाने पर बदरपुर शिलहट के लिए कोई ट्रेन न होने पर बाबा ने करीमगंज के मदन मोहन गंज बाजार के पुजारी पंडित जी के निवास स्थान पर ही रात्रि विश्राम किया। अतः नोआखाली यात्रा का विवरण हम दूसरे दिन ही सुन सके।

●

महात्मा गाँधी की दृष्टि में जीवन-प्रबंधन

योगेश उपाध्याय एवम् प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय***

संसार की प्रत्येक वस्तु प्रकृति के नियमानुसार संचालित एवं व्यवस्थित है। प्रकृति और समस्त प्राणी भी विभिन्न नियमों, कर्त्तव्यों के अनुसार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। प्रकृति का सर्वोत्कृष्ट जीव मनुष्य, जिसे सोचने-समझने का विशिष्ट गुण प्राप्त है; अपने इसी गुण के आधार पर ही अपनी जीवनचर्या को सुव्यवस्थित एवं संगठित रूप से सुखपूर्वक बनाने में प्रयासरत है। संसार में ऐसे कई प्राचीन एवं आधुनिक विद्वान, समाजसुधारक, राजनेता इत्यादि हुए जिन्होंने मानव को एक सुन्दर और स्वच्छ जीवनशैली अपनाने के लिए प्रेरित किया है। इसी परंपरा में 2 अक्टूबर को पोरबंदर गुजरात में जन्मे महान समाज सुधारक, सत्याग्रही, राजनेता और राष्ट्रपिता मोहनदास करमचंद गाँधी का सर्वोच्च स्थान है। महात्मा गाँधी ने स्वयं अपने जीवन से न केवल भारतवासियों को अपितु समस्त विश्व के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

संसार का प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को सुखी एवं व्यवस्थित रूप में जीने की इच्छा रखता है। इसके लिए कुछ सामान्य नियमों तथा कर्त्तव्यों का पालन करना अतीव आवश्यक है। महात्मा गाँधी की दृष्टि में संयमित और आत्मनिर्भर जीवन ही प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए। उन्होंने जीवन में सत्य, अहिंसा, आत्मशुद्धि, सदाचरण, नैतिकता इत्यादि विषयों पर अत्यधिक जोर दिया तथा इनका कड़ाई से पालन करने की सलाह दी है। गाँधी जी सर्वदा व्यक्ति को निष्काम कर्म में रत रहने हेतु प्रेरित करते थे। इसके लिए वे गीता के निम्नलिखित श्लोक को सुनाया करते थे-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥[1]

कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू फल की दृष्टि से कर्म मत कर और न ही ऐसा सोच कि फल की आशा के बिना मैं कर्म क्यों करूँ? फल की इच्छा छोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि, तू कर्म करना भी छोड़ दे।

गाँधी जी सत्य और अहिंसा के सच्चे पक्षधर थे। उनका कहना था कि- प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में मन, वचन एवं कर्म से सत्य का पालन करना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति को सत्य से समझौता नहीं करना चाहिए। वेदों तथा उपनिषदों में सत्य मार्ग पर चलने का उपदेश दिया गया है-

''सत्यं वद।

धर्मं चर।

स्वाध्यायान्माप्रमदः।''[2]

सत्य के मार्ग पर चलकर कोई व्यक्ति या राष्ट्र उन्नति प्राप्त कर सकता है। सत्य अखण्ड है, सर्वव्यापक है, परंतु वह अवर्णनीय है, क्योंकि सत्य ही परमेश्वर है अथवा परमेश्वर ही सत्य है। जीवन में कितनी भी कठिनाईयाँ आयें, लेकिन व्यक्ति को सत्य का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि विकट परिस्थितियों के रहते हुए भी अंत में सत्य की ही विजय होती है-

''सत्यमेव जयते।''[3]

गाँधीजी का कथन है- ''हम सब एक ही सत्य के अंश हैं। इसलिए हमारा संबंध प्रेम, सहयोग, उदारता और सहिष्णुता का हो सकता है, न कि द्वेष, झगड़े और मार-काट का।''[4]

सत्य की भाँति अहिंसा भी जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है- किसी को न मारना। परंतु इससे भी ऊपर यह शब्द अपने विस्तृत अर्थ में- प्रेम, दया तथा क्षमा को समेटे हुए है। मानव के लिए अहिंसा का मार्ग अत्यंत कठिन है क्योंकि वर्तमान आधुनिक जीवनशैली हमें हिंसात्मक कार्यों के प्रति प्रेरित करती है। व्यक्ति संयम से रहित होकर केवल स्वकल्याण हेतु हिंसा में रत है। किसी की हत्या तो हिंसा है ही परंतु कुविचार, उतावलापन, मिथ्या भाषण, द्वेष, ईर्ष्या और किसी के अहित की कामना भी हिंसा का ही रूप है। इसलिए तुलसीदास जी द्वारा लिखा गया एक दोहा जो कि मनुष्य को प्रत्येक जीव पर दयाभाव की ओर प्रेरित करता है गाँधी जी सुनाया करते थे-

दया धरम को मूल है, पापमूल अभिमान।

तुलसी दया न छोड़िए, जब लग घट में प्रान॥[5]

सत्य जीवन का लक्ष्य है तो अहिंसा जीवन का मार्ग। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं भिन्न नहीं। सत्य साध्य है तो अहिंसा साधन। महाभारत में कहा गया है-

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः।

अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते॥[6]

---

* शोध-छात्र, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** शताब्दी पीठाचार्य, भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अर्थात् अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है और अहिंसा ही परम सत्य है। अहिंसा से ही धर्म की प्रवृत्ति आगे बढ़ती है। इस तरह अहिंसा, तप और सत्य आपस में जुड़े हैं। वस्तुतः अहिंसा स्वयं में तप है। तप का अर्थ है अपने को हर विपरीत परिस्थिति में संयत और शांत रखना। गाँधी जी का कथन है कि- ''यदि हम अपने शरीर को सत्य के पालन और परोपकार के निमित्त अनुकूल बनाना चाहते हैं तो हमें पहले ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य आदि गुणों को विकसित करके अपनी आत्मिक उन्नति करनी चाहिए।''[7] वर्तमान समय में भारतीय समाज तेजी से पश्चिमी अंधानुकरण में संलग्न है जिससे वह अपनी संस्कृति और सभ्यता से दूर होता जा रहा है। महात्मा गाँधी ने पश्चिमी आधुनिकता को 'रोग' की संज्ञा दी है। भौतिक प्रगति जो कि आज आधुनिकता का मूल समझी जाती है, जीवन का अंतिम ध्येय नहीं हो सकती है। अधिक से अधिक वह केवल जीवन के उच्चतर लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन मात्र हो सकती है। वह कहते हैं-

''यह सभ्यता न तो नैतिकता और न ही धर्म पर ध्यान देती है। इसके समर्थक शांतिपूर्वक कह देते हैं कि धर्म सिखाना उनका काम नहीं है। कुछ तो उसे अंधविश्वास की उपज मानते हैं। अन्य धर्म का लबादा ओढ़कर नैतिकता पर भाषण देते हैं। किंतु बीस वर्षों के अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अनैतिकता बहुत बार नैतिकता के नाम पर सिखाई जाती है। आधुनिक सभ्यता शारीरिक आराम के साधन बढ़ाने का प्रयास मात्र करती है।''[8]

इस भयंकर विनाश से बचने के लिए आज सबसे बड़ी आवश्यकता है- आचरण शुद्धि। आज हम लोगों के आचरण में नैतिकता का धीरे-धीरे लोप होता जा रहा है। हमारा चरित्र पतित होता जा रहा है। माता-पिता के द्वारा चरित्र की जो विरासत हमें प्राप्त होती है वह सच्ची व आध्यात्मिक विरासत कहलाती है। इसे निरंतर बढ़ाने की बजाय हम लोग इसके ह्रास की ओर अग्रसर हैं। आज आवश्यकता है एक आदर्शवादी नैतिक चारित्रिक परंपरा की, जिसका पालन करके हम सभी आध्यात्मिक उन्नति कर सकें। उच्च आदर्श के प्रति गांधीजी के विचार हैं- ''मुझे यदि अपने आदर्श के अधिकाधिक समीप पहुँचने का अनवरत प्रयत्न करना है तो मुझे चाहिए कि संसार को अपनी निर्बलताएँ और असफलताएँ भी देखने दूँ। ताकि मैं दंभ से बच जाऊँ और शर्म के मारे भी इस आदर्श को प्राप्त करने की यथाशक्ति साधना करूँ।''[9]

आचरण की शुद्धि के लिए सर्वाधिक उपयोगी है- आत्मशुद्धि और संयम। हम बाह्य शुद्धि पर जितना ध्यान देते हैं उतना ही अगर आत्मशुद्धि की ओर हो तो आचरण को सुधरने में देर न लगे। आत्मशुद्धि से यहाँ तात्पर्य है- मन, वचन तथा काया को निर्विकार बनाना। राग-द्वेषादि से रहित होना। इस निर्विकारता के बल पर कोई भी व्यक्ति समाज में एक उच्च आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।

समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अधिकारों के साथ-साथ कुछ कर्त्तव्यों का पालन भी अवश्य पालनीय है। प्रत्येक व्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है- काम, क्रोध, मद, मोह, लोभादि विकारों से रहित होकर नीति-धर्म का पालन करते हुए समाज में एक-दूसरे से मिलजुलकर रहना। इस संसार में मनुष्य के लिए सर्वाधिक साधने योग्य यदि कोई वस्तु है तो वह मन है। मन के संयम से ही मनुष्य का जीवन सफल हो सकता है। कहा भी गया है-

''मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।''[10]

इसलिए प्रत्येक मनुष्य को जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मन को संयमित करना चाहिए। मन संकल्प-विकल्प वाला होने के कारण व्यक्ति को बुरे कार्यों में भटकाता रहता है अतः बुद्धि के द्वारा सदैव मन के भटकाव से बचना चाहिए।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥[11]

मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना करता है कि- हे ईश्वर! जिस प्रकार हृदय में प्रतिष्ठित गतिमान मेरा मन जो अत्यंत वेग वाला है, वह सब इन्द्रियों को अधर्म आचरण से हटा के सदा धर्म मार्ग में चलाया करे, आप ऐसी कृपा मुझ पर कीजिए। अतः गाँधी जी का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति मन को नियंत्रण में रखने का अनवरत प्रयास करता रहे।

मन की शुद्धि के लिए गाँधी जी ने आहार शुद्धि को महत्वपूर्ण कारक माना है। कहा भी गया है-

''जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन।''

एक बार कस्तूरबाबाई की तबीयत खराब होने पर गाँधी जी ने कहा- ''अगर तुम दाल और नमक छोड़ोगी, तो अच्छा ही होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ होगा।''[12]

उनके ऐसा करने से शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ हुआ। फिर धीरे-धीरे गाँधी जी स्वयं आहार शुद्धि और नियंत्रण पर विशेष ध्यान देने लगे। गाँधी जी ने संपूर्ण स्वतंत्रता संघर्षकाल में लोगों को उपवास के प्रति प्रेरित किया। गाँधी जी उपवास के सम्बन्ध में अपने वक्तव्यों में गीताजी का एक श्लोक सुनाया करते थे-

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥[12]

उपवासी के विषय (उपवास के दिनों) में शांत होते हैं, पर उसका रस नहीं जाता। रस तो ईश्वर दर्शन से ही, ईश्वर-प्रसाद से ही शांत होता है। आहार शुद्धि के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे व्यक्ति के विकारों में कमी आती है और उसका आचरण सुधरता जाता है।

गाँधी जी सर्वदा सभी लोगों से आपस में मिलजुलकर मैत्रीपूर्वक रहने की सलाह दिया करते थे। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को परिवार, समाज तथा राष्ट्र के लोगों के प्रति आदर भाव रखना चाहिए। अपने माता-पिता का सर्वदा आदर करना

चाहिए। कभी भी उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उनका कहना था कि हमारी संस्कृति ही हमें सिखाती है-

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।[14]

पश्चिमी सभ्यता के आ जाने से परिवार, समाज तथा राष्ट्र के आपसी सम्बन्धों में सौहार्द की कमी हो गई है। उनका कहना था कि हम केवल अपनी संस्कृति और सभ्यता की परंपरा का पालन करते हुए इस दुष्चक्र से निकल सकते हैं। वेद स्वयं परिवार के सदस्यों के प्रति ऐसा उपदेश देते हैं-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमना।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।[15]

''पुत्र पिता के अनुकूल ही कार्य करे, प्रतिकूल कार्य कदापि न करें। माता के साथ भी अच्छे मन वाला बना रहे, दूषित मनवाला नहीं अर्थात् माता-पिता दोनों के प्रति सदा प्रेम सद्भाव बनाये रखें। इस प्रकार पुत्री भी माता-पिता के अनुकूल कार्य करे और पत्नी भी अपने पति के प्रति आह्लादक तथा रुचिकर सुखमयी वाणी बोले कटु नहीं। इसी प्रकार पति भी पत्नी के प्रति मधुर वाणी बोले। भाई-भाई के प्रति सम्पत्तिनिमित्त से विद्वेष न करे, अपितु सर्वदा परस्पर प्रेम पूर्वक रहे। इस तरह परिवार के सभी सदस्य भी शुद्ध मन वाले बनकर परस्पर शुभाचरण रखते हुए भद्रवाणी ही बोलते रहें।''

गाँधी जी के जीवन में समय प्रबन्धन की महत्वपूर्ण भूमिका थी। वे प्रत्येक कार्य नियत समय पर ही किया करते थे क्योंकि उनका मानना था कि जीवन का प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। जो समय एक बार निकल जाता है वह कभी लौट कर नहीं आता। कारागार में रहते हुए भी उनकी दैनिक जीवनचर्या नियमित थी जिसका वे कठोरता से पालन करते थे। समय का समुचित उपयोग करते हुए व्यक्ति को अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए जो कि शिक्षा के बिना अधूरा है।

शिक्षा के ऊपर गाँधी जी ने सर्वोच्च बल दिया। वे मैकाले शिक्षा के विरोधी थे। उनका मानना था कि यह शिक्षा केवल व्यक्ति को मशीन बना सकती है, एक अच्छा नागरिक नहीं। हमें अपनी प्राचीन शिक्षा पद्धति को ही पुनः विकसित करने की महती आवश्यकता है। प्रत्येक छात्र को स्कूली शिक्षा के साथ-साथ एक उद्योग, कला इत्यादि की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाए जिससे वह आगे चलकर अपने जीवन में कभी भी उद्योग प्राप्ति से वंचित न रह जाए। भारतीय शिक्षा पद्धति से हम लोग अपनी संस्कृति से जुड़े रहकर सहज रूप से विद्यार्जन कर सकते हैं क्योंकि यह शिक्षा हमें केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं देती बल्कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति भी कराती है-

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।[16]

विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता आती है, पात्रता से धन आता है, धन से धर्म होता है और धर्म से सुख प्राप्त होता है।

प्रत्येक मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है- मानव मात्र की सेवा करना और उसकी स्थिति सुधारने में हाथ बँटाना। जब तक मनुष्य स्वार्थी है और दूसरों के सुख-दुःख से उसका कोई सरोकार नहीं है, तब तक वह जानवर की तरह है। हमारी तो परंपरा ही रही है-

अयं बंधुरयं नेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु बसुधैव कुटुम्बकम्।।[17]

''यह मेरा बंधु है, वह मेरा बंधु नहीं है ऐसा विचार या भेदभाव छोटी चेतना वाले व्यक्ति करते हैं जबकि उदार चरित्र के व्यक्ति सम्पूर्ण विश्व को ही परिवार मानते हैं।''

संसार में प्रत्येक व्यक्ति को अपना मानकर उसके सुख-दुःख में साथ रहें तथा कष्ट के समय में उसकी यथासाध्य सहायता करें। किसी भी व्यक्ति को अपने से दीन-हीन नहीं समझना चाहिए। गाँधी जी ने कहा है- ''यदि आप पीड़ितों और दलितों के प्रति मैत्री तथा भ्रातृत्व की भावना रखते हैं और दरिद्रनारायण की सेवा करते हैं तो मैं बिना संकोच कहूँगा कि आप दिनों-दिन ईश्वर के समीप पहुँच रहे हैं, शर्त इतनी ही है कि आप जो कुछ करें वह दिखावे या आत्मप्रकाशन के लिए न हो, बस सेवा-भाव और इंसानियत के नाते किया गया हो।''[18]

गाँधी जी सदा सभी को मिलजुलकर रहने के लिए कहते थे। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् जब हिन्दू-मुसलमान में बैर की भावना अधिक बढ़ गई तब उनका मन निराश हो गया। इसलिए वह बहुत पहले से ही अपने भाषणों में दोनों समुदायों को आपसी भेदभाव को भूलकर एकसाथ स्वतत्रंता प्राप्ति हेतु प्रोत्साहित करते थे। उनका मानना था कि हिन्दू-मुस्लिम एक-दूसरे से घृणा करके, एक-दूसरे का अविश्वास करके, एक-दूसरे से झगड़ा करते हैं और एक-दूसरे की हत्या तक कर देते हैं। एक-दूसरे से डरकर, एक-दूसरे को मारकर हम सभी इस पृथ्वी को, उसके नाम को और इस पवित्र देश को बदनाम कर रहे हैं, जिसका हम अन्न खाते हैं। गाँधी जी का कहना था कि हमारे संस्कारों में ही एक-साथ मिलजुलकर रहना, खाना-पीना इत्यादि व्यवहार निहित हैं। वैदिक काल से ही हम एक-साथ मिलजुलकर रहते आये हैं-

ॐ संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।[19]

हम साथ चलें, मिलकर चलें, मिलकर सोचें, मिलकर संकल्प करें।

जब सभी लोग जाति, धर्म, समुदाय, भाषा आदि भेदों को भूलकर एक साथ रहेंगे, एक-दूसरे का सम्मान करेंगे तथा एक-दूसरे

की यथासंभव सहायता करेंगे तब ही यह राष्ट्र अपनी खोई हुई गरिमा को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गाँधी जी ने अपने जीवन पर्यन्त जिन सिद्धांतों तथा नियमों का पालन करते हुए न केवल भारतीय समाज को अपितु संपूर्ण विश्व को जो आदर्श प्रस्तुत किया है, उसका पालन यदि सभी लोग करें तो यह संपूर्ण विश्व के लोग इस संसार में सुखपूर्वक जीवन जीते हुए अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। गाँधी जी न केवल राजनेता थे अपितु वह किसी भी उपदेश को देने के पहले स्वयं उनका पालन किया करते थे। स्वतंत्रता संग्राम के भीषण समय में भी उन्होंने अपने सिद्धांतों से समझौता न करके यह आदर्श प्रस्तुत किया कि कितनी भी विकट परिस्थितियाँ आयें परंतु व्यक्ति को सत्य का मार्ग कभी नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि अंत में सत्य की ही विजय होती है।

संदर्भ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक- 47
2. तैत्तरीय उपनिषद
3. मुण्डकोपनिषद्
4. सत्य, मंगल प्रभात, मो0क0 गाँधी, पृ0 7
5. 'तुलसीदास'
6. 'महाभारत', अनुशासन पर्व, अध्याय 115
7. सुजाता, 'गांधी की नैतिकता', प्रकाशन- सर्वसेवा संघ, राजघाट, वाराणसी-221001, पृ0 22
8. महात्मा गाँधी, 'हिंद स्वराज और इंडियन होमरूल', अहमदाबाद, नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, 1938, पृ0 32-33
9. सुजाता, 'गांधी की नैतिकता', प्रकाशन- सर्वसेवा संघ, राजघाट, वाराणसी-221001
10. 'अमृतबिन्दु उपनिषद' / 'ब्रह्मबिन्दूपनिषद्'
11. 'शिवसंकल्प सूक्त', यजुर्वेद 34वाँ अध्याय, मंत्र सं0 6
12. मो0क0 गाँधी, 'सत्य के प्रयोग', नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृ0 30
13. 'श्रीमद्भगवद्गीता', अध्याय 2, श्लोक संख्या- 59
14. 'तैत्तिरीयोपनिषद्' (शीक्षावल्ली), शाङ्करभाष्य (भाषानुवाद), गीता प्रेस, गोरखपुर (उ0प्र0), वर्ष 1999 ई0
15. 'अथर्ववेद' 3/30/2-3, सम्पादक- पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुबनगर (वेदनगर), बरेली, वर्ष 1999 ई0
16. 'हितोपदेश', चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, श्लोक संख्या- 6
17. 'महोपनिषद्', अध्याय- 4, श्लोक- 71
18. सुजाता, 'गांधी की नैतिकता', प्रकाशन- सर्वसेवा संघ, राजघाट, वाराणसी-221001, पृ0 57
19. 'ऋग्वेद' 10.191.2

●

जैन धर्म का अहिंसा सिद्धांत और महात्मा गांधी

*डॉ. विवेकानन्द जैन**

सत्य और अहिंसा के पुजारी, भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के विचार आज विश्वभर में बहुत ज्यादा प्रासंगिक हो गये हैं। सम्पूर्ण विश्व आज आतंकवाद और हिंसा से संघर्ष कर रहा है, ऐसे में विश्व शांति के लिये गांधी जी का अहिंसा सिद्धांत तथा सत्याग्रह सभी को महत्वपूर्ण लग रहे हैं। इसी कारण से गांधी जी के विचारों से प्रेरणा लेने के लिये आज अनेक देशों में महात्मा गांधी जी का साहित्य पढ़ा जाता है साथ ही अनेक महत्वपूर्ण स्थानों पर उनकी मूर्ति भी स्थापित की जा रही हैं। इसी क्रम में विगत दिनों लंदन में महात्मा गांधी जी की प्रतिमा का अनावरण किया गया। (चित्र 1)

गांधी जी ने अहिंसा पूर्वक सत्याग्रह की शुरुआत दक्षिण अफ्रीका में रहने बाले भारतीय गिरमिटियों पर होने बाले अन्याय, अमानवीय व्यवहार तथा भेदभावपूर्ण नीतियों के खिलाफ की थी। उन्हें इस अहिंसात्मक आंदोलन में विजय मिली जिसके परिणाम स्वरूप दक्षिण अफीका में रहने बाले भारतीयों को उनके अधिकार मिले, और गांधी जी को एक विश्व व्यापी पहिचान। दक्षिण अफ्रीका से भारत आने पर गांधी जी ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी अहिंसा पूर्वक गतिबिधियों को अपनाया जिनमें असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन प्रमुख हैं।[2]

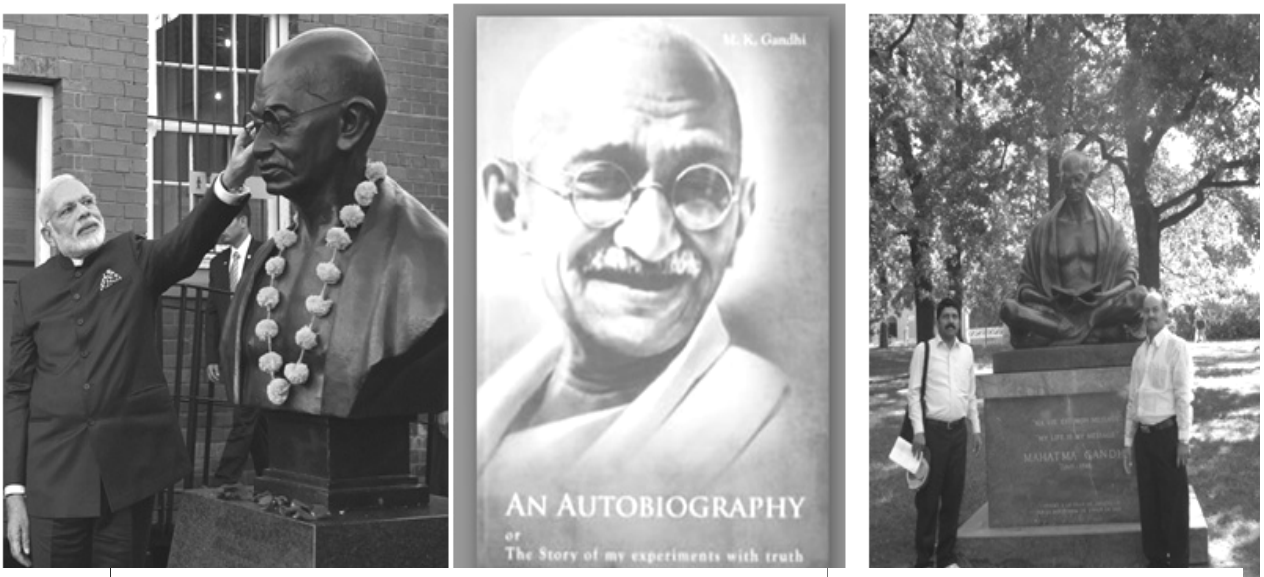

चित्र. 1. महात्मा गांधी जी की जीवनी एवं प्रमुख स्थानों पर प्रतिमायें

गांधी जी की अहिंसा व्यक्तिगत नहीं बल्कि सारे राष्ट्र को एक साथ लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किया गया एक विशाल अहिंसक आंदोलन था। ग़ांधी जी ने 'हिंद स्वराज' में अहिंसा की तुलना आत्मबल से की है। सत्याग्रह या आत्मबल को अंग्रेजी में 'पेसिव रेजिस्टेंस' कहा गया है अर्थात अधिकार पाने के लिये दुःख सहन करना, संघर्ष करना आदि। उन्होने लिखा है कि 'जो तलवार चलाते है, उनकी मौत तलवार से होती है। दुनिया में इतने लोग आज भी जिंदा हैं, यह बताता है कि दुनिया का आधार हथियार बल पर नहीं है बल्कि सत्य, दया या आत्मबल पर है।'[1] गांधी जी साध्य की प्राप्ति में उचित साधन के प्रयोग पर बल देते थे। बह अहिंसात्मक सत्याग्रह में विश्वास रखते थे।

जैन धर्म में अहिंसा

जैन धर्म में अहिंसा एक सामान्य श्रावक के लिये अणुव्रत धर्म है वहीं दूसरी ओर मुनियों / साधुओं के लिये महाव्रत है। मनुष्य दैनिक जीवनचर्या में सूक्ष्म हिंसा का भागीदार हो ही जाता है लेकिन साधू की चर्या अहिंसात्मक होती है। जैन आचार्यों, मुनियों तथा कुछ श्रावकों में ही पूर्ण आचरण की शुद्धिता पायी जाती है, जिनकी करनी तथा कथनी एक होती है। यदि हमें चारित्रिक विकास करना है तो निश्चित रूप से, मन वचन काय से एकरूपता लानी होगी।

किसी भी जीव को मन, वचन, काय से तथा कृत-कारित अनुमोदना से किसी भी परिस्थिति में दुःखित न करना ही अहिंसा

* उप ग्रंथालयी, केन्द्रीय ग्रंथालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

महाव्रत है। मन में दूसरे को पीड़ित करने की सोचना तथा किसी के द्वारा दूसरे को पीड़ित करने पर उसका समर्थन करना भी हिंसा है। अहिंसा ब्रत के पालन करने के लिये यह भी आवश्यक है कि आपका अहित करने वाले के प्रति भी आपके मन में क्षमाभाव हो।[3]

रत्नकरण्डक श्रावकाचार[4] में आचार्य समंतभद्र स्वामी ने अहिंसाणुव्रत के बारे में लिखा है कि मन से, वचन से तथा काय से जानबूझकर हिंसा न तो करना, न करवाना और न किये जाने का अनुमोदन/ समर्थन करना अहिंसाणुव्रत का परिपालन है।

अहिंसा जैन धर्म का आधार स्तम्भ है। जैन धर्म में प्राणी मात्र के कल्याण की भावना निहित है। जैन धर्म में मनुष्य, पशु-पक्षी, कीड़े–मकोड़े के अलावा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी जीव माना गया है। जैन धर्म के अनुसार इन जीवों को न मारना ही अहिंसा है। जैन दार्शिनिकों ने उस क्रिया को हिंसा कहा है जो प्रमाद अथवा कषायपूर्वक होती है। हिंसा दो प्रकार की होती है : भाव हिंसा और द्रव्य हिंसा। भाव हिंसा का सम्बंध कषाय से है। द्रव्य हिंसा भाव हिंसा से उत्पन्न होती है और भाव हिंसा को उत्पन्न भी करती है। एक व्यक्ति ऐसा है जो केवल वध की भावना करता है; दूसरा भावना के साथ वध करता है; और तीसरा व्यक्ति बिना भावना के ही वध कर देता है, अतः इन तीनों ही हिंसा में असमानता है।[5]

डा. मोहन लाल मेहता (श्रमण, फरवरी 1980)[6] ने लिखा है कि हिंसा अहिंसा के निम्न चार रूप बनते हैः

1. जो हिंसा भावरूप भी है और द्रव्यरूप भी, ऐसी हिंसा को हम पूर्ण हिंसा कहेंगे।
2. जो हिंसा केवल भावरूप है, ऐसी हिंसा किसी अंश में अपूर्ण होती है।इसे अपूर्ण अहिंसा भी कह सकते हैं।
3. जो हिंसा केवल द्रव्यरूप है, ऐसी हिंसा को अपूर्ण अहिंसा अथवा अपूर्ण हिंसा कहा जा सकता है। इसमें केवल प्राणवध होता है।
4. जहां न भावरूप हिंसा है न द्रव्यरूप हिंसा, ऐसी स्थति का नाम पूर्ण अहिंसा है। इसमें न प्रमत्त प्रवृत्ति होती है न प्राण वध।

हमारे खान पान का असर जीवन और व्यवहार पर बहुत ज्यादा पड़ता है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से एक शाकाहारी प्राणी है लेकिन आधुनिक जीवन शैली ने आदमी को सर्वहारी बना दिया है। अतः आत्म चिंतन तथा स्व मूल्यांकन की आवश्यकता है इससे अनेक समस्याओं का स्वतः समाधान हो जायेगा। एक सामान्य श्रावक से अहिंसा अणुव्रत पालन करने के लिये कवि श्री बाबूलाल जैन 'सुधेश' ने अपनी पुस्तक स्वतंत्र रचनावली[7] में लिखा हैः

नहीं सतायें किसी जीव को, चाहे कुंजर कीरि हो
हरे वेदना सब जीवों की, समझें निज सम पीर हो।
रहे दया का भाव सदा ही, तब हम प्रभू के पास रे
दर्शन ज्ञान चरित उन्नत कर पाओ मोक्ष निवास रे।
अणुव्रत पालन करो बंधुओ, सत श्रद्धा के साथ रे
दर्शन ज्ञान चरित उन्नत कर पाओ मोक्ष निवास रे।

अहिंसा को आचरणीय कहा गया है क्योंकि संसार के सभी प्राणी जीना चाहते हैं, कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता। जिस प्रकार सभी को सुख प्रिय है और दुख प्रिय नहीं है इसलिये किसी को भी हिंसा नहीं करनी चाहिये। सभी धर्मों में अहिंसा का महत्व बताया गया है लेकिन फिर भी सारे विश्व में धर्म के नाम पर ही दंगा, फसाद और हिंसक गतिविधियां होती हैं। इसके पीछे का प्रमुख कारण धार्मिक कट्टरता, धार्मिक उन्माद, सहिष्णुता तथा भाईचारे की कमी है। अतः धार्मिक सहिष्णुता एवं वार्तालाप के द्वारा शांति और सद्भाव का वातावरण बनाने का प्रयास करना चाहिये।

जैन धर्म के सिद्धांतः अनेकांतवाद तथा स्यादवाद हमें सर्व धर्म समभाव की सीख देते हैं वहीं भगवान महावीर का सिद्धांत 'जिओ और जीने दो' सब जीवों के कल्याण की राह दिखाता है। जैन धर्म का 'परस्परोपग्रहो जीवानाम' का सिद्धांत सभी जीवों पर उपकार करते हुये, भलाई का कार्य करते हुये जीवन जीने की प्रेरणा देता है। आज विश्व को भगवान महावीर के सिद्धांतों को अपनाने की आवश्यकता है क्योंकि विश्व कल्याण के लिये, विश्व शांति के लिये अहिंसा ही एक मात्र समाधान है।

गांधी जी पर जैन धर्म के सिद्धांतों का प्रभाव

गांधी जी जब अध्ययन के लिये विदेश जा रहे थे तभी उनकी मां जो कि बहुत धार्मिक थीं उन्हें एक जैन साधू के पास ले गयीं और उनके समक्ष गांधी जी से प्रतिज्ञा करायी कि विदेश जाकर बह मांस तथा मदिरा का सेवन नहीं करेंगे साथ ही परस्त्रीगमन भी नहीं करेंगे। बचपन में ली गई इस प्रतिज्ञा का गांधी जी ने आजीवन पालन किया।

बचपन में ही गांधी जी ने 'श्रवण पित्र भक्ति' नाटक पढ़ा, जिसके द्वारा उन्होने माता पिता की सेवा का पाठ सीखा। बाद में सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र नाटक देखकर सत्य पर चलने की सीख ली। विदेश से लौटने के बाद गांधी जी का सम्पर्क शतावधानी व्यक्ति श्री राजचंद्र जी से हुआ और उन्होंने गांधी जी को सिर्फ जैन धर्म के नहीं बल्कि सभी धर्मों के ग्रंथ पढ़ने की सलाह दी जिससे गांधी जी में सर्वधर्म समभाव तथा अनेकांतवाद की भावना विकसित हुई।[8]

महात्मा गांधी ने आजीवन शाकाहार अपनाया। एक बार उनके बेटे मणिलाल को कालाज्वर नामक बीमारी हो गई, और

डाक्टर ने मांसाहार की सलाह दी। फिर भी गांधी जी ने उसे मांसाहार का सेवन नहीं कराया बल्कि जल चिकित्सा से उसका इलाज किया, और वह स्वस्थ्य हो गये। गांधी जी ने लिखा कि 'ईश्वर ने मेरी लाज रखी और आज भी मैं यही मानता हूं।'

गांधी साहित्य : महात्मा गांधी जी से सम्बंधित सम्पूर्ण साहित्य आज ऑनलाइन उपलब्ध है। इसे **गांधी हेरीटेज पोर्टल**[9] पर देखा जा सकता है। यह गांधी जी के बारे में जानने के लिये बहुत ही उपयोगी वेवसाइट है। इसी तरह जैन धर्म के साहित्य के लिये **जैन ई लाइब्रेरी**[10] की वेवसाइट बहुत ही उपयोगी है। (चित्र 2)

गांधीवादी तरीके से देश और समाज की सेवा में रत हैं। इस पुरस्कार की राशि एक करोड़ रुपये है।

यह पुरस्कार जूलियस न्यरेरे (तंजानिया) नेल्शन मंडेला तथा डेसमंड टूटू (दक्षिण अफ्रीका), बाबा आमटे, चंडी प्रसाद (भारत) जॉन ह्यूम (यू.के.) कोरेटा स्कॉट किंग (यू.एस.ए.) आदि को व्यक्तिगत रूप से मिला बहीं रामकृष्ण मिशन, भारतीय विद्या भवन, इसरो, सुलभ इंटर्नेशनल, एकल अभियान ट्रस्ट, आदि को संस्थान के रूप में मिला।[11]

चित्र. 2. गांधी हेरीटेज पोर्टल : www. gandhiheritageportal.org

मालवांय जा क प्रांत सम्मान : प. मदन माहन मालवांय जी को महात्मा गांधी बहुत सम्मान देते थे। उन्होने कहा था कि 'मैं मालवीय जी से बड़ा देशभक्त किसी को नहीं मानता। मैं सदैव उनकी पूजा करता हूं। जीवित भारतीयों में मुझे उनसे ज्यादा भारत की सेवा करने वाला भी कोई दिखाई नहीं देता।' मालवीय जी के आमंत्रण पर वह काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय तथा बाद में दीक्षांत समारोह में भाग लेने काशी आये तथा संबोधन भी दिया।

गांधी जी पर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार : इण्टरनेशनल गांधी पीस प्राइज

भारत सरकार ने गांधी जी की 125 वीं जन्म जयंति पर 1995 में एक अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्रारम्भ किया। यह पुरस्कार उन व्यक्तियों या संस्थाओं को दिया जाता है जो अहिंसात्मक या अन्य

गाधा जा एक ावचारधारा क रूप म आज भा जावत हैं, अमर हैं। विश्व के अनेक व्यक्तियों को गांधी जी जैसा अहिंसात्मक आचरण करने के कारण गांधी संबोधन भी प्राप्त हुआ जैसे – डा. नेल्शन मंडेला को अफ्रीकन गांधी, श्री मार्टिन लूथर किंग को अमेरीकन गांधी तथा खान अब्दुल गफ्फार खान को सीमांत गांधी कहा जाता है।

निष्कर्ष

गांधी जी ने कहा था कि प्रकृति सभी मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है मगर उनके लालच की नहीं। मनुष्य ने प्रकृति का अतिदोहन किया और उसी के परिणाम स्वरूप आज अनेक समस्यायें सामने आ रहीं हैं उसमें से ग्लोबल वार्मिंग भी एक है।

मनुष्य को अपने जीवन में सत्य और अहिंसा का पालन करते हुये सात्विकता पूर्ण आचरण करना चाहिये। इसके अलावा खान पान में पूर्ण शाकाहार का पालन करना चाहिये। इस तरह से जीवन में श्रेष्ठता तथा सम्पन्नता आयेगी। प्रकृति का संरक्षण होगा। यह मानव के साथ साथ सभी जीवों के हित में है इसमें किसी का भी अहित नहीं है, इसीलिये यह एक आधुनिक श्रेष्ठ जीवन शैली है। इसे अपनाकर मानव अपनी श्रेष्ठता सावित कर सकता है। ग़ांधी जी विषम परिस्थितियों में भी अपने सिद्धांतों पर हमेशा अडिग रहते थे और कभी भी नियमों से समझौता नहीं करते थे। उन्होने आजीवन सत्य और अहिंसा का पालन किया। यह उनकी जीवन शैली के अंग थे। इसीलिये महात्मा गांधी का जीवन आज भी हम सभी के लिए प्रेरणादायी है, और भविष्य में भी रहेगा।

संदर्भ

1. गांधी, मोहनदास करमचंद्र (2016) हिंद स्वराज, नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 102-103.
2. रवींद्र कुमार (2011) महात्मा गांधी और अहिंसा, नई दिल्ली : कल्पाज पब्लिकेशंस.
3. जैन, शेखर चंद्र (2009) जैन धर्म जानिए, जयपुर : ज्ञान प्रकाशन. पृ. 13.
4. आचार्य समंतभद्र (2017) रत्नकरण्डक श्रावकाचार, सागर : जैन विद्यापीठ.
5. सिंह, महेंद्रनाथ (2004) बौद्ध तथा जैन धर्म, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृ. 159-160.
6. मेहता, मोहन लाल (1999) जैन धर्म-दर्शन, बंगलौरः सेठ मूथा छगनमल मेमोरियल फाउण्डेशन. पृ. 629-631.
7. जैन, बाबूलाल (2004) स्वतंत्र रचनावली, टीकमगढ़ : देवीदास जैन शोध एवं अध्ययन केंद्र. पृ. 17.
8. गांधी, मोहनदास करमचंद (1957) सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अहमदावाद : नवजीवन प्रकाशन. पृ. 230-233.
9. गांधी हेरीटेज पोर्टल: www.gandhiheritageportal.org
10. जैन डिजिटल ई-लाइब्रेरी: www.jainelibrary.com
11. गांधी पीस प्राइज: https://en.wikipedia.org/wiki/Gandhi_Peace_Prize

●

मार्क्स बनाम गाँधी : इक्कीसवीं सदी के विशेष संदर्भ में

डॉ. सत्यपाल शर्मा[*]

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जहाँ दुनिया में मार्क्सवादी विचारों की धूम मच रही थी, वहीं भारत महात्मा गाँधी के रास्ते पर चलकर 'गाँधीवाद' के रूप में दुनिया को एक नयी राह दिखा रहा था। सन् 1917 में क्षेत्रफल के लिहाज से दुनिया के सबसे बड़े देश सोवियत संघ में लेनिन के नेतृत्व में मार्क्स से प्रभावित साम्यवादी क्रान्ति घटित हुई तो सन् 1949 में जनसंख्या के लिहाज से दुनिया के सबसे बड़े देश चीन में माउत्से तुंग के नेतृत्व में साम्यवादी क्रान्ति घटित हुई। बीसवीं शताब्दी के प्रथम डेढ़ दशकों में भारत में महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका में प्रतिरोध का नया तरीका इजाद कर रहे थे। सन् 1915 में भारत आगमन के बाद और सन् 1920 के अखिल भारतीय असहयोग आंदोलन के पूर्व गाँधी जी चम्पारण, खेड़ा और बारदोली में स्थानीय स्तर पर सत्याग्रह का अभिनव प्रयोग कर रहे थे। ध्यातव्य है कि यह वही समय है जब सोवियत क्रान्ति के दौर में मार्क्स दुनिया का मसीहा नजर आ रहा था। दमन और शोषण के चक्र में पिस रही दुनिया की जनता के सम्मुख मार्क्सवादी रक्तरंजित क्रान्ति के सिवा त्राण का दूसरा मार्ग न सूझ रहा था, ऐसे महत्वपूर्ण समय में महात्मा गाँधी ने भारत ही नहीं दुनिया की जनता के सम्मुख एक दूसरा विकल्प प्रस्तुत किया।

इसमें संदेह नहीं कि मार्क्स और गाँधी के सिद्धान्तों में मूलभूत फर्क है, पर यह मानना उचित नहीं कि दोनों एक दूसरे के पूर्ण विरोधी हैं। इसे 'साध्य और साधन' के आधार पर ठीक से देखा जा सकता है। साध्य के स्तर पर मार्क्स और गाँधी में बहुत भेद नहीं है, बल्कि कह सकते हैं कि 'साध्य' के स्तर पर दोनों में अद्भुत समानता है पर 'साधन' के स्तर पर दोनों में पूर्णतः असमानता है। साधनों की असमानता ने मार्क्स और गाँधी के बीच इतनी दूरी पैदा कर दी कि उनके सिद्धान्तों में निहित 'साध्य की लगभग समानता' दुनिया की दृष्टि से ओझल हो गयी। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के भारत के महानायक महात्मा गाँधी पर जब हम इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पुनर्विचार कर रहे हैं तो आज बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का भारत का महानायक इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत का ही नहीं अपितु विश्व का महानायक परिलक्षित हो रहा है।

वस्तुतः बीसवीं शताब्दी में मार्क्सवाद के प्रति दुनिया का जो आकर्षण था, वह इक्कीसवीं शताब्दी में समाप्त हो चुका है। इसके विपरीत बीसवीं शताब्दी में गाँधीवाद के प्रति दुनिया का जो संशय था, वह इक्कीसवीं शताब्दी में समाप्त हो चुका है। दुनिया के दो सबसे बड़े देशों की साम्यवादी क्रान्ति के बीच गाँधी के रास्ते पर चलकर सन् 1947 में आजादी हासिलकर भारत ने दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में गाँधीवाद को सफल कर दिखाया। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दो-दो विश्वयुद्ध झेल चुकी दुनिया को, सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्र में संघ की स्थापना के बाद, गाँधीवादी रास्ते पर चलकर सन् 1947 में भारत की आजादी ने कदाचित सर्वाधिक प्रभावित किया। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शीतयुद्ध और संभावित तृतीय विश्वयुद्ध के खतरों ने दुनिया में गाँधीवाद को और प्रासंगिक बनाया।

यहाँ उद्देश्य मार्क्स और गाँधी की तुलना या मार्क्स से गाँधी को श्रेष्ठ दिखाना नहीं है। असल में मार्क्स और गाँधी दोनों ही दुनिया के श्रेष्ठतम महानायक रहे हैं। यह भविष्यवाणी नहीं पर संयोगजनित अनुमान है कि जिस तरह उन्नीसवीं सदी के विश्व के महानायक मार्क्स का बीसवीं सदी की दुनिया पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, संभवतः उसी तरह बीसवीं सदी के विश्व के महानायक गाँधी का इक्कीसवीं सदी की दुनिया पर संभवतः सर्वाधिक प्रभाव पड़ेगा। उन्नीसवीं सदी में मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रचार और बीसवीं शताब्दी में मार्क्सवादी सिद्धान्तों की दुनिया के देशों में प्रायोगिक व्यावहारिक सफलता के साथ ही मार्क्सवादी 'सिद्धान्त और व्यवहार' की असंगतियाँ उजागर होने लगी थीं। व्यावहारिक राजनीतिक-आर्थिक क्षेत्र में मार्क्सवादी सिद्धान्त और व्यवहार की असंगतियाँ इतनी बढ़ीं कि अन्ततः बीसवीं सदी के अन्त तक उसका शिकार साम्यवादी क्षत्रप सोवियत संघ को भी होना पड़ा। सन् 1991 में सोवियत संघ ने न सिर्फ साम्यवाद का दामन छोड़ लोकतंत्र का दामन थामा बल्कि उसे 15 देशों में विखंडित भी होना पड़ा। चीन में आज भी राजनीतिक रूप से साम्यवादी तंत्र मौजूद है पर आर्थिक रूप से वह भी दावा नहीं कर सकता कि वहाँ साम्यवाद पूर्णतः सफल है। लोकतांत्रिक पूँजीवाद ने चीन में भी सेंधमारी कर गहरी पैठ बना ली है।

इसमें संदेह नहीं कि मार्क्स मनुष्य की शक्ल में दुनिया के शोषितों का उद्धार करने वाला अवतारी पुरुष/ पैगम्बर प्रतीत होता है। यहाँ यह न समझा जाय कि अवतार/पैगम्बर में इन पंक्तियों के लेखक का विश्वास है। यहाँ मार्क्स को अवतार/पैगम्बर मानना उसी अर्थ में है जैसे दुनिया राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद पैगम्बर को मानती है। शोषित-पीड़ित, अभावग्रस्त, गरीब जनता की पीड़ा को दूर करने के लिए अनेक मिथकीय/ऐतिहासिक चरित्रों ने धरती पर कदम रखा। पर ये चरित्र मध्यकाल से पूर्व के हैं। आधुनिक काल

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

में कार्ल मार्क्स दुनिया का पहला मानवता का बड़ा पैगम्बर बनकर आता है।

जब एक तरफ दुनिया में 'स्वतंत्रता' सबसे बड़ा मूल्य थी, जॉन स्टुअर्ट मिल और रूसो जैसे स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक दार्शनिकों के विचारों की दुनिया में धूम मची हुई थी। ग्रेट ब्रिटेन सन् 1688 में राजशाही को छोड़कर स्वतंत्रता आधारित लोकतांत्रिक शासन पद्धति अपनाकर गौरवपूर्ण क्रान्ति कर चुका था। सन् 1775 में अमेकिरा ने मैग्नाकार्टा का सार्वजनीन वैश्विक मानवाधिकारों का घोषणापत्र जारी और स्वीकार करते हुए स्वयं को बाहरियों से स्वतंत्र किया। रूसो के दार्शनिकों विचारों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए सन् 1789 में फ्रांस में राज्यक्रान्ति के फलस्वरूप स्वतंत्रता आधारित लोकतंत्र की स्थापना हुई। इसी स्वतंत्रता और विज्ञान से उद्भूत औद्योगीकरण का फायदा उठाते हुए यूरोप के अनेक देशों ने एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अधिकांश देशों को अपना आर्थिक उपनिवेश बनाते हुए राजनीतिक साम्राज्यवाद स्थापित किया। स्वतंत्रता, लोकतंत्र के साथ विकसित राष्ट्रवाद ने साम्राज्यवादी देशों में वीभत्स रूप धारण किया। इसके बरक्स औपनिवेशित देशों के भीतर साम्राज्यवादी देशों के प्रति प्रतिरोध की भावना ने उनके भीतर स्वतंत्रता की भावना बढ़ाया। यह विलक्षण सच्चाई है कि स्वतंत्रता की जिस कामना ने यूरोप के राष्ट्रों को लोकतंत्र के साथ साम्राज्यवादी रास्ते पर अग्रसर किया उसी स्वतंत्रता की कामना ने एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों के भीतर साम्राज्यवाद के खिलाफ खड़ा किया जिसकी परिणति मुक्ति आंदोलन और लोकतंत्र के रूप में हुई।

ऐसे समय में जब 'स्वतंत्रता' दुनिया का सबसे बड़ा लक्ष्य था। कार्ल मार्क्स ने उस स्वतंत्रता को कटघरे में खड़ा करते हुए कहा कि 'समानता के अभाव में स्वतंत्रता' धोखा है। 'स्वतंत्रता' के पीछे आँख मूँदकर भाग रही जनता की आँख खोलते हुए मार्क्स ने प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल के वैचारिक द्वन्द्ववाद को भौतिक द्वन्द्ववाद में बदलते हुए, मानव के सामाजिक इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या करते हुए वर्ग-संघर्ष की अवधारणा प्रस्तुत की। औद्योगीकरण के फलस्वरूप बढ़ते पूँजीवाद के आसन्न संकट का पर्दाफाश करते हुए उन्होंने पूँजीवाद के चेहरे से नकाब उतारा और दुनिया के मजदूरों को एक होने का आह्वान किया। पूँजीवादी व्यवस्था के शोषणतंत्र को उजागर करते हुए उन्होंने 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त के द्वारा पूँजीवादी शोषण के मूल में निहित प्रक्रिया को पहचाना। 'श्रम की महत्ता' प्रतिपादित करते हुए उन्होंने सर्वहारा से एकजुट होकर क्रान्ति का आह्वान किया। मार्क्स ने मानव जीवन, समाज, इतिहास, दर्शन, राजनीति, अर्थतंत्र का इतना तार्किक और यथार्थ पक्ष प्रस्तुत किया कि दुनिया को एक बारगी मार्क्स पर यकीन न करना मुश्किल था। दुनिया की बड़ी जनता ने यह महसूस किया कि वास्तव में 'समानता मनुष्य का सबसे बड़ा मूल्य और लक्ष्य होना चाहिए।

दुनिया के देशों में जनता के भीतर अनेक प्रकार की असमानताएँ प्राचीन काल से रही हैं। वर्ण, रंग, नस्ल, प्रजाति, क्षेत्र, भाषा, लिंग, आयु, धर्म, जाति, धन जैसे अनेक भेदकारी तत्व जनता के भीतर विद्यमान रहे हैं। अलग-अलग देशों में अलग-अलग समय पर इन भेदों के खिलाफ आवाज उठती रही है, संघर्ष होता रहा है, अनेक महापुरुष/पैगम्बर इनके खिलाफ लड़ते रहे हैं। पर, मार्क्स से इन सबका भेद इस अर्थ में है कि मार्क्स ने मानवजाति के भीतर निहित तमाम विभेदकारी तत्वों में से उस मूलतत्व को पहचानने की कोशिश की जिसको समाप्त करने से बाकी भेद स्वतः समाप्त हो जायेंगे। मार्क्स ने सभी विभेदकारी तत्वों पर विचार के उपरान्त यह पाया कि मानव के भीतर असमानता का सबसे बड़ा कारण या मूल कारण आर्थिक असमानता है। मार्क्स के अनुसार आर्थिक असमानता दूर होने से शेष असमानताएँ स्वतः समाप्त हो जायेंगी। अतः मार्क्स ने जिस साम्यवाद की कल्पना की वह वस्तुतः आर्थिक साम्यवाद की कल्पना है।

सन् 1915 में महात्मा गाँधी के भारत में आगमन से पहले के भारत की स्थिति पर विचार करें तो पायेंगे कि भारत उन्नीसवीं सदी के मध्य में ब्रिटेन का आधिकारिक गुलाम बन चुका था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा भारत आर्थिक साम्राज्यवाद का शिकार पहले ही हो चुका था। सन् 1857 के आंदोलन के बाद सन् 1858 में ब्रिटेन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को अपने नियंत्रण में लिया और सन् 1861 के चार्टर द्वारा ब्रिटेन ने भारत को अपना उपनिवेश घोषित किया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में नवजागरण की चेतना से युक्त सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन जोरों पर थे। राजनीतिक क्षेत्र में स्वाधीनता आंदोलन की कहीं कोई गूँज उन्नीसवीं सदी के अन्त तक नहीं सुनाई देती। यह जरूर है कि हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु युग में सामाजिक-सांस्कृतिक सुधारवादी चेतना के साथ साम्राज्यवाद विरोधी चेतना भी साफ-साफ दिखाई देती है।

सन् 1885 में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापनाा एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय परिघटना है पर उसका स्पष्ट उद्देश्य भारत की आजादी नहीं था। सन् 1905 में अंग्रेजों द्वारा बंगाल का विभाजन किये जाने से देश की जनता के भीतर अंग्रेजों के प्रति प्रबल विरोध का भाव जगा। सन् 1905 के बाद और सन् 1915 में गाँधी के भारत आगमन से पूर्व देश में स्वदेशी आंदोलन, बहिष्कार आन्दोलन और खिलाफत आंदोलन ने अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों में चेतना प्रसरित कर दी थी। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक भारतीय चेतना के वाहक बड़े राजनेता के रूप में लोकप्रिय हो चुके थे। कह सकते हैं कि अंग्रेजों के खिलाफ भावी आंदोलन की पृष्ठभूमि अच्छे से तैयार हो चुकी थी। ऐसे समय में ही देश में महात्मा गाँधी का आगमन होता है। दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गाँधी जी अंग्रेजों के रंगभेद के खिलाफ संघर्ष कर चुके थे। सत्याग्रह के नवीन तरीकों के चलते वे भारत में भी चर्चित हो चुके थे।

भारत में होमरूल लीग और कांग्रेस से जुड़ने के साथ महात्मा गाँधी ने अखिल भारतीय स्तर पर महान्दोलन छेड़ने से पूर्व चम्पारण, खेड़ा और बारदोली सत्याग्रह द्वारा अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों का प्रतीकात्मक विरोध दर्ज किया। 'सत्य और अहिंसा' को गाँधीजी ने न सिर्फ अपने जीवन का आदर्श दर्शन बनाया बल्कि उस राह पर चलते हुए भावी भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का भी दर्शन बना दिया। सन् 1920 में जब अखिल भारतीय स्तर पर उन्होंने असहयोग आन्दोलन चलाया तो आन्दोलन से पूर्व उसकी नीतियाँ तय की गईं। आंदोलन को सत्य के साथ-साथ अहिंसात्मक रास्ते पर चलना था, पर जब चौरीचौरा कांड के द्वारा आंदोलन ने हिंसक रूप धारण किया तो गाँधी के सामने साध्य और साधन में एक को चुनने की मजबूरी आ खड़ी हुई। यह गाँधीजी के राजनीतिक सैद्धान्तिक जीवन की संभवतः सबसे बड़ी परीक्षा थी। गाँधी जी ने इस मोड़ पर जो निर्णय लिया, वही उनके समूचे भावी राजनीतिक जीवन का निर्णायक बन गया। गाँधी जी ने आंदोलन को हिंसात्मक रूप ग्रहण करते देख उसे वापस ले लिया।

गाँधीजी के इस निर्णय से कांग्रेस के नेता ही नहीं बल्कि देश की जनता भी हतप्रभ थी। बहुसंख्यक नेता आंदोलन को चलाने के पक्ष में थे पर गाँधी जी ने अपने अहिंसा के सिद्धांत से समझौता नहीं किया। गाँधी जी के जीवन-दर्शन का यह विचार कि श्रेष्ठतम साध्य भी यदि गलत साधनों से मिलता हो तो वह साध्य स्वीकार नहीं। साध्य की पवित्रता के साथ साधन की पवित्रता भी उतनी ही आवश्यक है। बल्कि यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि साध्य और साधन में गाँधी जी को एक चुनना पड़े तो वे साधन को चुनते थे। ऐसे किसी भी साध्य को वे छोड़ सकते थे जो पवित्र साधनों से प्राप्त करना संभव न हो या जिसे पाने के लिए अपवित्र साधनों का प्रयोग किया गया हो। अपने इसी नूतन प्रयोग के द्वारा गाँधी ने राम और कृष्ण के देश में सदियों से प्रचलित और स्वीकार 'साध्य और साधन' के अंतःसंबंध को नवीन रूप प्रदान किया। हम जानते हैं कि रामायण के राम और महाभारत के कृष्ण भी क्रमशः रावण और कौरवों से संभावित युद्ध (हिंसा) को टालने का यथासंभव प्रयास करते हैं, पर जब साध्य असफल होता दिखता है तो वे अन्ततः युद्ध (हिंसात्मक साधन) का सहारा लेते हैं। इसके विपरीत गाँधी जी ने बड़े राष्ट्रीय लक्ष्य (साध्य) को भी छोड़ दिया पर हिंसात्मक साधनों का सहारा नहीं लिया बल्कि आजीवन उसके विरोध में खड़े रहे।

साध्य और साधन की पारंपरिक भारतीय अवधारणा और नीति को गाँधी जी ने पलट दिया। भारतीय जीवन दर्शन में साध्य साधन से सदैव ज्यादा महत्वपूर्ण रहा है। यह जरूर है कि साध्य के साथ साधन की पवित्रता का भी यथासंभव ध्यान रखा जाता था। परन्तु गाँधी जी के वैयक्तिक जीवन दर्शन में ही नहीं बल्कि सार्वजनिक राजनीतिक दर्शन में भी 'साधन' साध्य से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। अपवित्र साधन के रूप में हिंसा का विरोध और पवित्र साधन के रूप में अहिंसा का मरते दम तक पालन करने के सिद्धान्त ने गाँधी को भारत में ही नहीं, दुनिया में बीसवीं सदी का अनूठा महापुरुष बना दिया। असहयोग आंदोलन स्थगित होने के बाद भारत में मिश्रित प्रतिक्रियाएँ हुईं। असमंजस का माहौल बना रहा। जनता में हताशा, निराशा, कुण्ठा पैदा हुई तो दूसरी तरफ आंदोलनकारियों के उग्र धड़े का प्रसार हुआ। 1920 और 1930 के दशक के बीच भारतीय राजनीति भविष्य की अपनी राह खोजती नजर आती है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि सन् 1919 में जलियावाला बाग जैसा जघन्य नरसंहार हो चुका था। इसके बावजूद गाँधी जी की अहिंसा के प्रति अडिग आस्था थी। तीसरे दशक में लाला लाजपतराय की लाठी चार्ज से मृत्यु, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, खुदीराम बोस, भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारियों के दमन के बावजूद गाँधी जी अपने सिद्धान्त से नहीं डिगे। चौथे दशक में सविनय अवज्ञा आंदोलन और पाँचवें दशक में भारत छोड़ो आंदोलन से लेकर देशविभाजन और आजादी के बाद भी मरते दम तक वे अपने सिद्धांतों पर अंतिम साँस तक अड़े रहे।

गाँधीवादी जीवन-दर्शन, उनके जीवन का लक्ष्य और सत्याग्रह केवल देश की आजादी तक सीमित नहीं था। उपरोक्त तथ्य गाँधी जीवन और दर्शन का केवल एक पहलू है। गाँधी जीवन और दर्शन का दूसरा पहलू पहले पहलू से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। भारत आगमन के साथ ही गाँधी जी ने यह महसूस कर लिया था भारतीय समाज अनेक संकीर्णताओं का शिकार है। अशिक्षा, गरीबी के साथ तमाम सामाजिक-धार्मिक कुप्रथाओं ने मानव समाज को अनेक भेदों में बाँट रखा है। गाँधी जी स्वतंत्रता के साथ-साथ समानता को मानव समाज का अनिवार्य तत्व मानते थे। उन्होंने जितना प्रयास स्वतंत्रता के लिए किया उससे कम प्रयास समानता के लिए नहीं किया। देश के भीतर निहित जाति प्रथा से उपजी अस्पृश्यता को दूर करने के लिए गाँधी जी ने अथक प्रयास किया। कुएँ के पानी से लेकर मंदिर प्रवेश तक उन्होंने आन्दोलन चलाए। अस्पृश्यता को उन्होंने भारतीय समाज का अभिशाप माना। गाँधीजी आरंभ में 'यंग इंडिया' नामक पत्र निकालते थे। इसका गुजराती संस्करण 'नवजीवन' के नाम से प्रकाशित होता था। इसके बाद 'हिंदी नवजीवन' का प्रारंभ किया गया। कालांतर में ''यंग इंडिया, नवजीवन और हिन्दी नवजीवन तीनों के नाम हरिजन रख दिए गये। यह अछूतोद्धार और अस्पृश्यता विरोधी नीति का परिणाम था।''[1]

भारतीय जनता के भीतर समानता स्थापित करने के लिए गाँधी जी ने हर स्तर पर प्रयास किया। धर्म के आधार पर हिन्दू-मुस्लिम में बँटी जनता को उन्होंने सदैव मिलाने का प्रयास किया। भीमराव अम्बेडकर ने पृथक निर्वाचन की माँग की तो पूना पैक्ट के माध्यम से उन्हें मिलाया। भाषा-विवाद बढ़ा तो उन्होंने हिन्दी-उर्दू की जगह हिन्दुस्तानी की वकालत की। आर्थिक क्षेत्र में गाँधी जी पूँजीवाद के समर्थक नहीं थे। वे ट्रस्टीशिप के समर्थक थे। ऐसी आर्थिक व्यवस्था जिसमें राज्य संपत्ति का मालिक नहीं बल्कि न्यासी अर्थात् रखवाला होगा। गाँधीजी वैयक्तिक संपत्ति के खिलाफ थे।

राज्य की संपत्ति पर वे जनता का अधिकार मानते थे। उन्होंने जिस आदर्श 'रामराज्य' की कल्पना की उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं था। यह आदर्श राज्य मनुष्य के उत्तम और आदर्श चारित्रक गुणों के विकास से ही संभव है। इसलिए गाँधीजी हृदय परिवर्तन के सिद्धांत में विश्वास रखते थे। वास्तविक अर्थों में गाँधी जी मानवता के हितचिंतक पुजारी थे। उनकी मानवता भारतीय जनता तक सीमित नहीं थी। उनकी मानवता के केन्द्र में समूचे विश्व की जनता शामिल थी। इसीलिए अंग्रेजों के दमन के बावजूद वे उनसे घृणा नहीं करते थे बल्कि अत्याचारी के खिलाफ भी अहिंसात्मक बने रहे। सचमुच बीसवीं सदी में गाँधीजी का यह सिद्धांत और रास्ता भारत ही नहीं बल्कि दुनिया के लिए चौंकाने वाला था।

ऐसा नहीं कि गाँधी जी के सिद्धान्तों को लोगों ने आसानी से स्वीकार कर लिया। जनता का बड़ा हिंसा गाँधीवादी तरीकों से संतुष्ट नहीं था। अपने जीवन काल में अनेक स्तरों पर अनेक रूप में गाँधी जी को अपने सिद्धान्तों ओर विचारों का विरोध झेलना पड़ा। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान उनकी खिल्ली भी उड़ायी गयी। उनकी अहिंसा को कायरों का हथियार माना गया। विरोधियों के वार से भी गाँधी जी डिगे नहीं। सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलते हुए गाँधीजी ने बीसवीं सदी की दुनिया की सबसे बड़ी हुकूमत को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। दुनिया के इतिहास में गाँधीवादी तरीके से लड़ी गयी भारत की आजादी की लड़ाई अनूठी मिसाल बन गई। सन् 1947 से पहले गाँधीजी को दुनिया विस्फारित नजरों से देख रही थी। भारत की आजादी के बाद वही दुनिया गाँधी जी के प्रति श्रद्धावनत हो गयी। यह प्रक्रिया अभी भी जारी है।

गाँधी जी नहीं रहे पर विश्व जानता है कि गाँधी जी मरे नहीं हैं। वे उस हर भारतीय मन या विश्वमन में जिन्दा हैं जो आज भी मानवता का कायल है। जो मानव समाज को भौतिक उन्नति, आधुनिकता, प्रगतिशीलता के साथ आत्मिक रूप से सुखी देखना चाहता है, उसके रूप में गाँधी जिन्दा हैं। जो छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए अपवित्र साधनों का इस्तेमाल नहीं करता, उसके रूप में गाँधी जिन्दा हैं। इसमें संदेह नहीं कि आने वाले समय में विश्व के सम्मुख गाँधीजी की अनिवार्यता और प्रासंगिकता दिनोदिन बढ़ती जायेगी।

दुनिया की नजर में मार्क्स और गाँधी में भला क्या समता हो सकती है? पर विचारपूर्वक देखें तो हमें दोनों महात्माओं में अनूठी एकता के दर्शन होते हैं। इसका संकेत प्रखर राष्ट्रवादी कवि रामधारी सिंह दिनकर ने भी किया है। उनके शब्दों में- ''गाँधी और मार्क्स के बीच जो एक प्रकार की खाई खोदी जा रही है, वह उचित नहीं है; क्योंकि जो आदमी मार्क्स के यहाँ से घबराकर भागेगा, वह गाँधीजी के यहाँ भी त्राण नहीं पा सकता। जिसे यह भय है कि मार्क्स उसकी दौलत को छीनकर सर्वहारा में बाँट देगा, वह जब गाँधी जी के पास जायेगा, तब गाँधीजी भी उससे यही कहेंगे कि जिन चीजों की तुम्हें नितान्त आवश्यकता नहीं है, वे चीजें तुम्हारी हो ही नहीं सकतीं। तुम्हारा धर्म है कि तुम स्वेच्छा से इन फाजिल चीजों को समाज के स्वामित्व में दे दो।''[2]

इस तरह हम देखते हैं कि दुनिया में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में मार्क्स और गाँधी के रूप में दो विश्वनायक अपने-अपने तरीके से दुनिया को भविष्य की राह दिखाते हैं। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी का विश्व दोनों रास्तों पर चलकर देख चुका है। दोनों विश्वनायकों के विशिष्ट रास्तों पर चलकर दुनिया ने प्रभूत अनुभव हासिल कर लिया है। मार्क्स और गाँधी के तौर-तरीकों पर सवाल भी खड़े किये गये हैं और दोनों को एक-दूसरे के बरक्स खड़ा कर खाईं भी पैदा की गयी है। इक्कीसवीं सदी का विश्व और जनता अधिक जागरूक है। उसे अपने भले-बुरे की पहचान पहले के मनुष्य से ज्यादा है। अतः वह बेहतर तय कर सकती है कि उसका भविष्य का रास्ता क्या हो और उस तक कैसे पहुँचा जाय। मार्क्स और गाँधीजी ही नहीं दुनिया के ऐसे अनेक महापुरुष इसमें हमारी मदद कर सकते हैं।

मेरा मानना है कि इक्कीसवीं सदी के मनुष्य का आदर्श 'मार्क्सवादी लक्ष्य को गाँधीवादी तरीके से पाने का प्रयास' हो सकता है। दिनकर ने बहुत पहले लिखा था- ''जो लोग मार्क्सवादी प्रयोगों से थक गये हैं, उन्हें निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि गाँधीजी इसी प्रयोग के दूषण को दूर करने को आये हैं। मार्क्स ने मानव-समाज का लक्ष्य बदल दिया। गाँधीजी मनुष्य को उस लक्ष्य तक जाने की निर्मल राह बतायेंगे।''[3] यह अत्युक्ति नहीं है। हमें वास्तव में गाँधी को याद करना है तो उनके ऐतिहासिक योगदान को याद करने के साथ इस पर विचार जरूर करना चाहिए कि बदलते वैश्विक संदर्भों में गाँधीजी विश्व के लिए कैसे पथप्रदर्शक हो सकते हैं। भारत ही नहीं विश्व की समूची मानवता का कल्याण गांधीवादी रास्ते पर चलकर ही हो सकता है। दुनिया यह जितना जल्दी समझ ले उसी में उसका हित निहित है।

संदर्भ सूची

1. पत्रकारिता का इतिहास, पंचम खंड, उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, 2005
2. अर्ध नारीश्वर, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, पृ0 99
3. वही, पृ0 101

●

गाँधी, हिन्दी पत्रकारिता और स्वाधीनता आंदोलन

*सौरभ सिंह विक्रम**

भारत की आजादी की लड़ाई में महात्मा गाँधी के योगदान से हम अच्छी तरह परिचित हैं। आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता के महत्व से वे भली-भाँति परिचित थे। पत्रकारिता की शक्ति से वे अच्छी तरह वाकिफ़ थे। इसलिए उन्होंने कहा था-''ऐसी कोई भी लड़ाई जिसका आधार आत्मबल हो, अखबार की सहायता के बिना नहीं चलाई जा सकती।''[1] हम जानते हैं कि गाँधी जी ने आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता को हथियार की तरह इस्तेमाल किया।

गाँधी जी एक सम्पूर्ण पत्रकार थे। पत्रकारिता के सन्दर्भ में उनकी निश्चित धारणा थी। अपनी आत्मकथा में पत्रकारिता के उद्देश्यों को व्यक्त करते हुए गाँधी जी ने लिखा-''किसी समाचार-पत्र का पहला उद्देश्य सार्वजनिक संवेदना को समझना तथा उसे अभिव्यक्ति प्रदान करना, दूसरा उद्देश्य लोगों में वांछनीय भावनाएँ जागृत करना तथा तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों का निडर होकर पर्दाफाश करना होता है।''[2] गाँधी जी ने पत्रकारिता के उपरोक्त उद्देश्यों का जीवन-पर्यंत पालन किया। गाँधी जी जानते थे कि पत्रकारिता के साथ कुछ बुराइयाँ जुड़ जाती हैं इसके बावजूद पत्रकारिता जनमत तैयार करने का एक साधन होती है। पत्रकारिता के इस्तेमाल के संदर्भ में वह स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं-''पत्रकारिता में मेरा क्षेत्र मात्र यहाँ तक सीमित है कि मैंने पत्रकारिता का व्यवसाय अपने जीवन के उद्देश्य को पूरा करने में एक सहायक के रूप में चुना है।..... अपनी निष्ठा के प्रति ईमानदारी बरतते हुए मैं दुर्भावना या क्रोध में कुछ भी नहीं लिख सकता। मैं निरर्थक नहीं लिख सकता। मैं केवल भावनाओं को भड़काने के लिए भी नहीं लिख सकता। लिखने के लिए विषयों तथा शब्दावली को चुनने में मैं हफ्तों तक जो संयम बरतता हूँ, पाठक उसकी कल्पना नहीं कर सकता। मेरे लिए यह प्रशिक्षण हैं।''[3]

गाँधी जी ने डरबन, दक्षिण अफ्रिका में 4 जून 1903 से इण्डियन ओपिनियन नाम से पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र की भाषा अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती और तमिल होती थी। परोक्ष रूप से गाँधी जी इसके संपादक थे। इण्डियन ओपिनियन में अफ्रीका तथा दूसरे देशों में बसे प्रवासी भारतीयों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया और उनमें राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना जागृत की। इस पत्र के माध्यम से गाँधी जी ने भारतीय संस्कृति और परंपरा के महत्व को भी उजागर किया। इस पत्र की लोकप्रियता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि उस समय इसके पाठकों की संख्या लगभग बीस हजार थी। दक्षिण अफ्रीका में गोरों के रंगभेद के खिलाफ़ संघर्ष में गाँधी जी ने पत्रकारिता का सकारात्मक इस्तेमाल किया।

सन् 1915 में भारत आगमन के बाद गाँधी जी ने अंग्रेजों के दमन और शोषण के खिलाफ संघर्ष और सत्याग्रह का जो रास्ता चुना उसमें भी इन्होंने पत्रकारिता का बखूबी इस्तेमाल किया। जलियावाला बाग काण्ड के बाद अंग्रेजों का दमन और तीव्र हुआ। इससे पूर्व भारतीयों को कमजोर करने के लिए अंग्रेजों ने सन् 1905 में संयुक्त बंगाल के विभाजन की घोषणा की थी। देश के भीतर अंग्रेजों के विरुद्ध तेजी से आक्रोश फैला। इस दौर में अनेक पत्र प्रकाशित हुए जिन्होंने भारतीयों के आक्रोश को मुखर वाणी प्रदान की। 'युगान्तर' (बंग्ला) ने पूर्ण स्वतंत्रता का नारा दिया। महर्षि अरविन्द ने 'वन्देमातरम' के माध्यम से अंग्रेजों को यह बताने की कोशिश की कि भारत, भारतीयों के लिए है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने भारतीय जनता की नब्ज को पकड़ते हुए यह नारा दिया कि, 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और हम इसे लेकर रहेंगे। गाँधी जी की ही तरह गाँधी से पूर्व लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भी पत्रकारिता की शक्ति को बखूबी समझते थे। सन् 1930 में नागपुर से 'हिन्दी-केसरी' का प्रकाशन शुरू हुआ था, माधवराव सप्रे इसके संपादक थे। 'केसरी' में तिलक के प्रकाशित लेखों का हिन्दी अनुवाद 'हिन्दी केसरी' में प्रकाशित होता था। सन् 1913 में कानपुर से 'प्रताप' का प्रकाशन शुरू हुआ। यह एक साप्ताहिक पत्र था। इसके संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी थे। प्रताप के प्रवेशांक में गणेश शंकर विद्यार्थी ने लिखा था-''समस्त मानव जाति का कल्याण हमारा परम उद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत बड़ा और बहुत जरूरी साधन हम भारत वर्ष की उन्नति समझते हैं।''[4]

गाँधी जी के भारत आगमन से पूर्व की पत्रकारिता को हम तिलक युगीन पत्रकारिता के रूप में जानते हैं। तिलक युगीन पत्रकारिता का मूल उद्देश्य जनता के भीतर राष्ट्र के प्रति प्रेम और गौरव का भाव जगाना था। प्रताप के प्रथम पृष्ठ पर निम्नलिखित पंक्तियाँ अनिवार्य रूप से प्रकाशित होती थीं-

''जिनको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, नरपशु निरा और मृतक समान है।''[5]

सन् 1919 में दशरथ प्रसाद द्विवेदी के संपादन में गोरखपुर से स्वदेश का प्रकाशन आरम्भ हुआ। उत्तर भारत में राष्ट्रीय-चेतना

* सहायक आचार्य (संविदा), महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

को प्रसारित करने में इस पत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वदेश के मुख-पृष्ठ पर निम्न पंक्तियाँ छपती थीं-

''जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं

वह हृदय नहीं पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।''[6]

स्वदेश उग्र राष्ट्रीय-चेतना और विचारों से ओत-प्रोत था। इसके लेखक पण्डित पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र और इसके संपादक दशरथ प्रसाद द्विवेदी को अनेक बार जेल की यात्राएँ करनी पड़ी। 'अभ्युदय' इस दौर का एक महत्वपूर्ण पत्र था जिसे पण्डित मदन मोहन मालवीय प्रयाग से निकालते थे। 'कर्मयोगी' भी इस युग का महत्वपूर्ण राजनीतिक पत्र था।

गाँधी जी से पूर्व हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता अपने स्वर्णिम दौर में थी। सरस्वती, सुदर्शन, समालोचक आदि इस दौर की प्रमुख पत्रिकायें थीं। सरस्वती इस दौर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पत्रिका थी। इस पत्रिका का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा ने 1899 में किया था। सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी इसके सम्पादक बने। इस पत्रिका ने हिन्दी भाषा के साथ-साथ हिन्दी साहित्य के बहुमुखी विकास में ऐतिहासिक योगदान दिया। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, समालोचना आदि इस युग की महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिकाये हैं। हिन्दी पत्रकारिता के विकास में गाँधी युग का महत्वपूर्ण योगदान है। सन् 1919 के रोलट ऐक्ट को देश की जनता ने काले-कानून के रूप में ग्रहण किया। इसकी अवज्ञा के लिए लोगों से सत्याग्रह की प्रतिज्ञा करायी गयी। सन् 1920 ई0 के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का महत्व समझा गया।

सन् 1920 में असहयोग आन्दोलन के रूप में गाँधी जी ने देश में पहला अखिल भारतीय राष्ट्रीय-आंदोलन खड़ा किया। असहयोग आंदोलन से पूर्व देश में गाँधी तथा दूसरे नेताओं के नेतृत्व में अनेक आंदोलन हुए। लेकिन उनमें से कोई भी आंदोलन राष्ट्रीय स्तर का नहीं था। राष्ट्रीय स्तर पर आंदोलन को खड़ा करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक संपर्क भाषा की जरूरत महसूस की गयी। ऐसी संपर्क भाषा जो कि भारतीय हो। असहयोग आंदोलन से पूर्व देश में स्वदेशी, बहिष्कार और खिलाफत आंदोलन हो चुका था। इन आंदोलनों ने अंग्रेजों के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा के प्रति भी देशवासियों के मन के भीतर विरोध का भाव जगाया। राष्ट्रीय स्तर पर एक संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस होने पर उसी भाषा को स्वीकार किया जा सकता था जो देश की बड़ी जनसंख्या द्वारा बोली जाती हो। निःसंदेह हिन्दी उस समय देश की सबसे बड़ी जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी। हिंदी के अतिरिक्त बांग्ला भाषियों की संख्या दूसरे और उर्दू भाषियों की संख्या तीसरे स्थान पर थी। हिन्दी के सौभाग्य से बंग्लाभाषी नेताओं और साहित्यकारों ने संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का समर्थन कर दिया।

केशवचन्द्र सेन, बंकिमचंद्र और रविन्द्रनाथ टैगोर के द्वारा हिंदी का समर्थन करने के बाद हिंदी के राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग किये जाने की अड़चनें दूर हो गयी थीं। गुजरात के दयानंद सरस्वती, पंजाब के लाला लाजपत राय और महाराष्ट्र के लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के द्वारा हिंदी का समर्थन और प्रयोग करने के बाद हिन्दी अखिल भारतीय स्तर पर गाँधी जी से पूर्व प्रयोग की जाने लगी थी। गांधी जी ने भी हिंदी के महत्त्व और उसकी आवश्यकता को पहचानकर हिंदी का समर्थन किया। गांधी जी द्वारा हिन्दी का समर्थन करने और राष्ट्रीय स्तर पर गांधी जी की लोकप्रियता बढ़ने के साथ-साथ हिंदी के प्रति देशवासियों का लगाव और समर्थन तेजी से बढ़ा। हिन्दी राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की चेतना को अभिव्यक्त करने वाली मुख्य भाषा बनी। धीरे-धीरे वह देश की जुबान पर चढ़ते-चढ़ते जनता के दिलों में भी जगह बनाने में कामयाब हुई। राष्ट्रीय स्वाधीनता को मुखर वाणी प्रदान करने के कारण वह धीरे-धीरे गैर हिंदी प्रदेशों में भी लोकप्रिय होती गयी। राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना की वाहक होने के कारण धीरे-धीरे वह राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार की जाने लगी।

हिंदी की ताकत को समझकर गांधी जी ने अपने विचारों को जनता के एक बड़े हिस्से तक पहुँचाने के लिए अपनी मातृभाषा गुजराती और शिक्षा की भाषा अंग्रेजी को छोड़कर हिन्दी का सहारा लिया। हम जानते हें कि स्वाधीनता आंदोलन के दौरान देश के सुदूर क्षेत्रों के बहुत से लोगों ने केवल गांधी जी को सुनने व समझने के लिए हिंदी भाषा को सीखा। हिंदी भाषा को सीखना उस समय राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य था। हिंदी के प्रयोग के द्वारा गैर हिंदी प्रदेश की जनता ने भारत की राष्ट्रीय एकता के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। इसमें संदेह नहीं कि हिंदी ने देश की बहुभाषी जनता को स्वाधीनता आंदोलन के दौरान एक सूत्र में पिरोकर राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाया। गांधी जी ने भारत में भाषाई एकता स्थापित करने के लिए हिंदी की जगह हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया। हिन्दुस्तानी उस भाषा को कह सकते हैं जिसमें हिन्दी और उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता हो और जो देश की बहुसंख्यक आम जनता के द्वारा प्रयोग में लायी जाती हो। दरअसल गाँधी जी द्वारा प्रयुक्त हिन्दुस्तानी हिन्दी भाषा का ही दूसरा रूप थी। अन्तर यह था कि हिन्दुस्तानी में उर्दू के प्रति कोई बैर-भाव नहीं था।

वस्तुतः गाँधी जी से पूर्व और गाँधी जी के भारत आगमन के समय हिन्दी और उर्दू का भाषा-विवाद कमोबेश चल रहा था। देश की जनता को बाँटने के लिए अंग्रेज भी इस भाषा-विवाद को हवा दे रहे थे। हिन्दी को हिन्दुओं की और उर्दू को मुसलमानों की भाषा प्रचारित किया जा रहा था। हिन्दू और इस्लाम धर्म के कट्टर समर्थकों का भी इससे हित सध रहा था, परन्तु गाँधी जी यह जानते थे कि हिन्दी उर्दू भाषा विवाद का यह धार्मिक आधार देश की एकता और अखण्डता के लिए भयंकर खतरा है। इससे स्वाधीनता आंदोलन की गति अवरुद्ध हो जाती इसलिए गांधी जी ने हिन्दुस्तानी

के माध्यम से बीच का रास्ता अपनाकर एक तरफ अंग्रेजों की चाल को सफल होने से रोकने का प्रयास किया। तो दूसरी तरफ धार्मिक कट्टर अनुयायियों के मंसूबों पर भी पानी फेरने का प्रयास किया। गाँधी जी के द्वारा समर्थित हिन्दुस्तानी का तत्कालीन समय में अनेक लोगों ने विरोध किया पर गाँधी जी इससे विचलित नहीं हुए। गाँधी जी के लिए हिन्दी और उर्दू विवाद केवल भाषाई विवाद नहीं था। धार्मिक स्वरूप ग्रहण करने के कारण वह भारत के भविष्य और भारत की एकता से जुड़ा सवाल था।

गांधी जी ने रौलट एक्ट के विरोध में रजिस्ट्रेशन के बिना ही 7 अप्रैल सन् 1919 को बम्बई से 'सत्याग्रह' नामक साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। गाँधी जी होमरूल लीग से जुड़े थे। होम रूल लीग ने अपने पत्र 'यंग इण्डिया' के सम्पादन का दायित्व गाँधी जी को सौंपा। जल्दी ही इसका गुजराती संस्करण नवजीवन जुलाई 1919 से प्रकाशित होने लगा। 5 जुलाई 1919 के नवजीवन के अंक में गाँधी जी ने लिखा-''जब तक मुझे यंग इण्डिया की ओर से सामग्री और नीति की देखरेख की अनुमति मिली हुई है तब तक मैं इसके माध्यम से देश के सामने एक ऐसे कार्य की योजना प्रस्तुत करना चाहता हूँ जिसे मैं (बुनियादी) महत्व की चीज समझता हूँ। .... जब सरकार कोई ऐसा कदम उठाना चाहेगी जो वास्तव में देश के लिए आमतौर पर अहितकर होगा तो यह पत्र उसके मार्ग में अस्थायी तौर पर बाधाएँ भी पहुँचायेगा।''[7] आरम्भ में ये पत्र मासिक थे बाद में इन्हें साप्ताहिक कर दिया गया। बाद में हिन्दी भाषा में 'हिन्दी नव-जीवन' का आरम्भ किया गया। आगे चलकर 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' और हिन्दी नवजीवन तीनों को मिलाकर एक कर दिया गया और उसका नाम हरिजन रख दिया गया।

'हरिजन' हिन्दी, अंग्रेजी और गुजराती तीनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। 'हरिजन' के पीछे गाँधी जी की सामाजिक दृष्टि थी। एक तरफ गाँधी जी अंग्रेजों के शोषण का विरोध करते हुए साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ खड़े थे वहीं दूसरी तरफ भारतीय समाज में व्याप्त सामंती कुरीतियों के भी खिलाफ थे। वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करते हुए भी वे अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों के सख्त खिलाफ थे। गांधी जी यह जानते थे कि सामंती कुरीतियों और अनेक विसंगतियों की शिकार भारतीय जनता के बीच एका स्थापित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। साम्राज्यवादी ताकतों से लोहा लेने के लिए उन्हें विशाल जन-समर्थन की जरूरत थी। सदियों से उपेक्षित और दलित बड़े समुदाय के समर्थन के लिए यह जरूरी था कि उसके साथ हो रहे अमानवीय अत्याचारों को रोका जाए और दलित, शोषित, पीड़ित, वंचित समुदाय को भी मानवीय गरिमा के साथ जीने का अवसर प्रदान किया जाय। हम जानते हैं कि गाँधी जी अपने वैयक्तिक जीवन में सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ थे। सार्वजनिक जीवन में अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों के खिलाफ उन्होंने आंदोलन चलाया।

उपरोक्त पत्रों के द्वारा गांधी जी एक सजग पत्रकार के रूप में भारतीय जनता में लोकप्रिय हुए। पत्रकारिता के द्वारा एक तरफ इन्होंने असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो जैसे आन्दोलनों को सक्रियता प्रदान की तो दूसरी तरफ सामाजिक विसंगतियों, कुरीतियों और रूढ़ परम्पराओं के खिलाफ भी गांधी जी ने आवाज उठायी। गांधी जी के साथ दूसरे तमाम लोगों ने भी स्वाधीनता आंदोलन के दौरान पत्रकारिता को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने देश एवं माखनलाल चतुर्वेदी ने कर्मवीर नामक पत्रिका का सम्पादन किया। 5 सितम्बर 1920 को काशी से आज नामक प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक का प्रकाशन पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर के सम्पादन में शुरू हुआ। 'आज' पत्र के प्रथम संपादकीय में विष्णु पराड़कर ने लिखा-''हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए सब प्रकार से स्वातंत्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य है कि हम अपने देश का गौरव बढ़ाएँ, अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें, उन्हें ऐसा बनाएँ कि उन्हें भारतीय होने का अभिमान हो, संकोच नहीं।''[8]

गांधी युग में अनेक भूमिगत प्रकाशनों का भी आरंभ हुआ। ब्रिटिश हुकूमत ने पत्रकारिता को मनोनुकूल नियंत्रित करने के लिए अनेक तरह के प्रतिबंध लगाए तो स्वाधीन चेतनाकामी पत्रकारों ने भूमिगत प्रकाशन का रास्ता अख़्तियार किया। बाबू विष्णुराव पराड़कर एवं आचार्य नरेन्द्रदेव ने भूमिगत पत्रकारिता को महत्वपूर्ण बना दिया। उन्होंने 'रणभेरी', 'शंखनाद', 'बवंडर', 'ज्वालामुखी', 'बोल दे धावा' को साइक्लोस्टाइल में छापकर देश की जनता के भीतर वितरित किया। गांधी युग में साहित्यिक पत्रकारिता का भी खूब विकास हुआ। गांधी युग की साहित्यिक पत्रिकाओं में चाँद, मतवाला, माधुरी, सुधा, हंस, जागरण, वीणा, विशाल-भारत आदि मुख्य हैं। गांधी युगीन हिंदी पत्रकारिता अनेक रूप और तेवर के साथ भारतीय पत्रकारिता को एक नयी ऊँचाई प्रदान करती है।

गाँधी युगीन हिन्दी पत्रकारिता शांति और क्रांति के दो छोरों के बीच विकसित हुई। एक तरफ गाँधी जी से प्रभाव ग्रहण करती हुई, उनके सिद्धान्तों और आदर्शों पर चलती हुई सत्याग्रह और अहिंसक आंदोलन पर जोर देती हुई आगे बढ़ रही थी तो दूसरी तरफ भारतीय राजनीति में गरम दल के उभार, स्वराज पार्टी की स्थापना, लाठीचार्ज में लाला लाजपत राय की मृत्यु, चंद्रशेखर के आत्मबलिदान, भगत सिंह राजगुरु और रामप्रसाद बिस्मिल को फाँसी जैसी घटनाओं से उबलती हुई जनता की ध्वनि को वाणी प्रदान करने के लिए हिन्दी पत्रकारिता ने अत्यंत उग्र और तल्ख तेवर अपनाए। गाँधी युग की हिन्दी पत्रकारिता उपरोक्त विरोधों के बावजूद राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय चेतना और जनता के स्वाधीनता की आकांक्षा को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर रही थी। गाँधी युगीन पत्रकारिता का उद्देश्य स्वतंत्र भारत का निर्माण करना था।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के बाद महात्मा गाँधी भारत के राष्ट्रीय-आंदोलन के पर्याय बन चुके थे। देश की जनता ने महात्मा गाँधी को हाथों हाथ लिया और उन्हें सर आँखों पर बिठा लिया। देश की जनता गाँधी जी पर आँख मूँदकर विश्वास करने लगी। तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता ने गाँधी जी की इस लोकप्रियता को भाँप लिया था। सन् 1924 में 'मतवाला' ने लिखा-''यदि आप स्वतंत्रता के अभिलाषी हैं, अपने देश में स्वराज्य की प्रतिष्ठा चाहते हैं, तो तन, मन और धन से अपने नेता महात्मा गाँधी के आदेशों का पालन करना आरंभ कर दीजिए।''[9] इतना ही नहीं, इससे भी आगे बढ़कर पत्र ने लिखा-''गाँधीविहीन स्वराज यदि स्वर्ग से भी सुन्दर हो तो वह नरक के समान त्याज्य है।''[10] देखने में यह अतिशयोक्ति लग सकती है पर इतिहास ने यह साबित किया कि गाँधी जी के संदर्भ में सन् 1924 में कही गयी यह बात धीरे-धीरे कालान्तर में देश की बड़ी आबादी महसूस करने लगी थी। काल के निर्मम प्रहार ने आजादी के बाद गाँधी जी को देश से छीनकर वास्तव में देश की जनता को जो दुख पहुँचाया वह नरक से कम नहीं था। देश के साथ-साथ देश की हिन्दी पत्रकारिता भी गाँधी जी की सदैव ऋणी रहेगी।

संदर्भ सूची

1. पत्रकारिता का इतिहास-पंचम खण्ड, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, 2005, पृ0 17
2. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास-जे नटराजन, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2002, पृ0 20
3. वही, पृ0 207
4. पत्रकारिता का इतिहास-पंचम खण्ड, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, 2005, पृ0 16
5. वही, पृ0 16
6. वही, पृ0 16
7. वही, पृ0 37
8. हिन्दी पत्रकारिता : आधुनिक संदर्भ, देव प्रकाश मिश्र, स्वराज प्रकाशन दिल्ली 2007, पृ0 29
9. पत्रकारिता का इतिहास-पंचम खण्ड, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, 2005, पृ0 36
10. वही

●

गाँधी का बदहाल टालस्टाय फार्म

नीरज धनकड़[*]

सन् 2019 में जहाँ भारत ही नहीं दुनिया में महात्मा गाँधी की 150वीं वर्षगांठ धूमधाम से मनाने की खबरें आ रही हैं, वहीं एक खबर चौंकाने वाली है। पिछले दिनों खबर आई कि दक्षिण अफ्रीका में गाँधीजी का बनाया हुआ टालस्टाय फार्म खस्ता हाल में पहुँच गया है। अनेक बार हुई चोरियों के कारण टालस्टाय फार्म बदहाल हो गया है। टालस्टॉय फार्म को संग्रहालय में तब्दील करने का प्रोजेक्ट भी अधर में लटक गया है। विदित है कि यह वही दक्षिण अफ्रीका है जो महात्मा गाँधी की आरंभिक कर्मस्थली था, जहाँ गाँधी ने रंगभेद के खिलाफ आरंभिक प्रतिरोध और सत्याग्रह किया था। भारत की तरह दक्षिण अफ्रीका भी अंग्रेजों का गुलाम था और अंग्रेजों के शोषण और दमन का शिकार था।

महात्मा गाँधी और उनके मित्र हेरमान कालेनबाख ने सन् 1910 में दक्षिण अफ्रीका में 'टालस्टाय फार्म' की स्थापना की थी। यह जमीन कालेनबाख ने गाँधीजी को दी थी। इस फार्म में गाँधीजी छः साल से सोलह साल तक के बच्चों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देते थे। यह प्रयोग बहुत सफल नहीं हुआ जिसे सन् 1913 में बन्द कर दिया गया। जब गाँधीजी दक्षिण अफ्रिका में अंग्रेजों के भेदभाव वाले कानून के विरोध में प्रदर्शन कर रहे थे, उस समय इस फार्म में अनेक परिवार शरण लेते थे। यह वह जगह है जहाँ दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों को एक समय जबरदस्ती रखा गया था। आज दक्षिण अफ्रीका में बड़ी संख्या में भारतीय रहते हैं लेकिन टालस्टाय फार्म खस्ताहाल है। हालत ऐसी हो गयी कि सन् 1980 में इस फार्म की इमारत को ढहा दिया गया। टालस्टाय फार्म में अनेक तरह की योजनाएँ आरंभ करने की कोशिशें हुईं पर वे सफल नहीं हुईं। दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मिशन, गाँधी शताब्दी समिति और महात्मा गाँधी रिमेंबरेंस कमेटी, जोहान्सवर्ग में कला और संस्कृति विभाग मिलकर 'टालस्टाय फार्म' के भविष्य को लेकर मंथन कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि 'टालस्टाय फार्म' की स्थापना का वर्ष सन् 1910 टालस्टाय के जीवन का अंतिम वर्ष भी है। 20 नवंबर सन् 1910 को टालस्टाय ने इस दुनिया में अंतिम साँस ली। सोवियत संघ के लियो टालस्टाय की स्मृति में दक्षिण अफ्रीका में एक भारतीय द्वारा 'टालस्टाय फार्म' की स्थापना से यह स्पष्ट है कि अपने अन्तिम समय तक टालस्टाय विश्व प्रसिद्ध शख्सियत बन चुके थे। विश्व प्रसिद्ध शख्सियत ही नहीं बल्कि एक प्रेरक व्यक्तित्व की उनकी पहचान बन चुकी थी। माना जाता है कि महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन पर जिन लोगों का सर्वाधिक प्रभाव है, लियो टालस्टाय उनमें प्रमुख हैं।

टालस्टाय का पूरा नाम काउन्ट लियो टालस्टाय है। वे उन्नीसवीं सदी के रूस के ही नहीं बल्कि दुनिया के सर्वाधिक चर्चित उपन्यासकारों में एक थे। उनका जन्म 9 सितम्बर 1828 को हुआ था। टालस्टाय उस समय पैदा हुए जब रूस को छोड़कर शेष यूरोप में सामंतवाद अपनी अन्तिम साँसें ले रहा था। पूरे यूरोप में पूँजीवाद का न सिर्फ उद्भव हो रहा था बल्कि वह औद्योगीकरण के साथ तेजी से विकसित हो रहा था। एक नये तरह की आधुनिक भौतिक चेतना का प्रसार दुनिया में हो रहा था। दुनिया नये मालों के साथ बाजार में तब्दील हो रही थी। रूस तब भी पुराने सामंतवादी ढाँचे में रह रहा था। कृषि के संदर्भ में वह परंपरावादी था। रूस का जार शासन कृषि संबंधी अपनी नीति को बदल नहीं पा रहा था। उस समय जार साम्राज्य के ही शासक परिवार में जन्मे लियो टालस्टाय रूसी समाज और दुनिया के सम्मुख नयी अवधारणाएँ लेकर आए।

यूरोप के देश पूँजीवादी रास्ते से विकास के नये सोपान तय कर रहे थे, इसके विपरीत रूस काफी पिछड़ा हुआ था। दुनिया में हिंसक विचारधारा तेजी से फैल रही थी लेकिन टालस्टाय ने हिंसक रास्ते का सदैव विरोध किया। वे अहिंसा को जीवन का सर्वोच्च मूल्य मानते थे। अहिंसा के समर्थन में वे आजीवन खड़े रहे। उन्होंने अपने जीवन के द्वारा भी अपने सिद्धान्तों की पुष्टि की। रूस के राजपरिवार में जन्मे टालस्टाय ने पूरी जिन्दगी जिस सरलता और सादगी से गुजारी उससे साबित होता है वे पहले संत थे, राजनीतिज्ञ या साहित्यकार बाद में। टालस्टाय आधुनिक काल के संभवतः पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने जन्म से प्राप्त अपनी सारी सुख-सुविधा को त्यागकर गरीबों, शोषितों और वंचितों के लिए कार्य करना शुरू किया। महात्मा गाँधी ने टालस्टाय को आधुनिक युग का सबसे बड़ा ऋषि बताया है। महात्मा गाँधी के अनुसार अहिंसा को समझने के लिए हमें टालस्टाय के जीवन को समझना होगा।

टालस्टाय अमीर वर्ग के मनुष्य थे। उन्होंने सम्पन्न वर्ग के सभी सुखों को भोगा था। दुनिया के सुखों को भोगने के बाद उन्हें यह महसूस हुआ कि इसमें कुछ नहीं है तो उन्होंने उससे मुँह मोड़ लिया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि संभवतः गाँधीजी अंग्रेजों के विरुद्ध अहिंसा को उस निश्चय के साथ न अपना पाते यदि

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

टालस्टाय की सादगी उनके समक्ष न होती। गाँधी जी ने टालस्टाय की अहिंसा के बारे में लिखा है-''अहिंसा के मायने हैं प्रेम का समुद्र। अहिंसा के मायने हैं वैर भाव का सर्वथा त्याग। अहिंसा में दीनता, भीरुता न हो, डर-डर के भागना भी न हो। अहिंसा में दृढ़ता, वीरता, निश्छलता होनी चाहिए।''[1] गाँधीजी ने इसके द्वारा टालस्टाय के सिद्धान्तों के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया।

टालस्टाय के अनुसार जो अपने को आदर्श तक पहुँचा हुआ समझता है, समझो वह नष्टप्राय है। यहीं से हमारी अधोगति शुरू होती है। जैसे-जैसे हम आदर्श के समीप पहुँचते हैं, आदर्श दूर भागता जाता है कि अभी एक और मंजिल बाकी है। आदर्श की राह में कोई भी जल्दी से मंजिल नहीं पा सकता। ऐसा मानने में कोई हीनता या निराशा नहीं बल्कि विनम्रता है। टालस्टाय ने जीवन में जो बात मान ली, उसका पालन करने में जीवन समर्पित कर दिया। वे उससे कभी डिगे नहीं। उनकी सादगी अद्भुत थी। सादगी बाहरी (भौतिक) और भीतरी (वैचारिक) दोनों स्तर पर थी।

टालस्टाय जीवन भर अहिंसा के मार्ग पर चलते रहे, अपने साहित्यिक कर्म और उपन्यासों के द्वारा अहिंसा का समर्थन और प्रसार करते रहे पर रूस में वे उसे असली जामा नहीं पहना सके। हम जानते हैं कि उनके गुजरने के सात वर्ष के भीतर ही यानी सन् 1917 में रूस में हिंसक बोल्शेविक क्रान्ति घटित हुई। पर, यह सुखद है कि टालस्टाय से अहिंसा की प्रेरणा ग्रहण कर महात्मा गाँधी ने उसे भारत में सफल पर दिया। गाँधीजी जीवन पर्यंत सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का पालन करते रहे। अपने सिद्धांतों के प्रति अडिग रहते हुए अन्ततः गाँधीजी उस ब्रिटिश सामान्य से भारत को आजाद कराने में सफल रहे जिसके बारे में कहा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य में सूरज नहीं डूबता है।

यह देखना दिलचस्प होगा कि टालस्टाय और महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन और पद्धति में अद्‌भुत समानताएँ हैं। टालस्टाय लेखक हैं, गाँधीजी भी लेखक हैं। 'वार एण्ड पीस' तथा 'अन्ना केरेनिना' टालस्टाय की सर्वकालिक महान रचनाएँ हैं। महात्मा गाँधी ने 'हिन्द स्वराज' पुस्तक लिखी और उसे टालस्टाय को भेजा था। इस पुस्तक के कायल टालस्टाय भी थे। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में टालस्टाय ने बिलकुल सादा जीवन अपना लिया था। खेती करना, किसानों जैसे कपड़े पहनना, नंगे पाँव चलना उनके जीवन का अंग हो गया। धूम्रपान, शिकार और मांसाहार, उन्होंने सब छोड़ दिया था। सन् 1891 में उन्होंने अपनी संपत्ति का ज्यादातर हिस्सा पत्नी और बच्चों में बाँट दिया और स्वयं ग्रामीण जीवन से जुड़ गये। अन्तिम समय में वे दुनियाभर के धर्मों को मानने वालों के साथ संगति भी करने लगे। उन्होंने अपनी वैचारिकी के अनुसार चर्च की व्यवस्था पर जबरदस्त प्रहार किया। उनके अनुसार- ''चर्च का इतिहास क्रूरतापूर्ण और भयावह है और वह ईसा के सिद्धांतों के खिलाफ है।''[2] यह बात अन्ततः दुनिया के हर धर्म के बारे में कमोबेश कही जा सकती है। हर धर्म के रक्षकों ने अपने-अपने ढंग से धर्म के नाम पर दमन का सहारा लिया है। यूरोप और वहाँ प्रचलित ईसाई धर्म भी इससे बच न सका था।

टालस्टाय ने राजनीतिक व्यवस्था और सरकारों के खिलाफ भी मुखर होकर बोला। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा कि-''एक इंसान का दूसरे के लिए सबसे बड़ा उपहार है 'शान्ति' और फिर भी यूरोप के ईसाई देशों ने अपने मातहत लगभग तीन करोड़ लोगों के भाग्य का फैसला हथियारों से किया है।''[3] हिंसा की इस प्रक्रिया का विरोध तालस्टाय ने ईसा के सिद्धांतों के आधार पर ही किया। उनके अनुसार 'अगर तुम ईसाई हो तो अपने पड़ोसी से झगड़ो मत और न ही हिंसा का सहारा लो; किसी और को पीड़ा देने से अच्छा है खुद पीड़ित हो जाओ और बिना किसी प्रतिरोध के हिंसा का सामना करो।''[4] हम देखते हैं कि टालस्टाय के ये विचार मानो महात्मा गाँधी में साक्षात मूर्त रूप गहण करते हैं।

जैसे टालस्टाय ने अपनी जायदाद का बड़ा हिस्सा बाँट लिया था, उसी तरह गाँधी जी ने भी सभी उपहार, गहने और पैसे लोगों में बाँट दिया जो दक्षिण अफ्रीका में आंदोलन के दौरान लोगों ने उन्हें प्रेम स्वरूप दिये थे। गाँधीजी के सत्याग्रह का आधार शांति और सविनय अवज्ञा ही था। गोपाल कृष्ण गोखले महात्मा गाँधी के राजनीतिक गुरू थे। टालस्टाय को गाँधी का आध्यात्मिक गुरू माना जा सकता है। विचारों की समानता ने दुनिया के दो महानतम महापुरुषों को एक-दूसरे के समीप ला खड़ा किया। गाँधी जी और टालस्टाय के बीच रिश्ते का आरंभ टालस्टाय की किताब 'ईश्वर की सत्ता तुम्हारे अंदर ही है' से हुआ। इस पुस्तक से प्रभावित होकर गाँधी जी ने एक अक्टूबर 1909 को टालस्टाय को पहला पत्र लिखा। इस पत्र में गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका के ट्रांसवाल में स्वयं द्वारा चलाये गये सविनय अवज्ञा आंदोलन का जिक्र किया। इस आंदोलन को ''सिविल डिस ओ बीएंस मूवमेंट' कहा जाता था। निस्संदेह गाँधीजी का यह आंदोलन टालस्टाय की विचारधारा से प्रभावित था।

गाँधीजी के उपरोक्त पत्र का उल्लेख टालस्टाय ने अपनी डायरी में करते हुए लिखा–''आज मुझे एक हिंदू द्वारा लिखा हुआ दिलचस्प पत्र मिला है।''[5] गाँधीजी के पत्र के जवाब में टालस्टाय ने गाँधी जी को लिखा- ''मुझे अभी आपके द्वारा भेजा गया दिलचस्प पत्र मिला है और इसे पढ़कर मुझे अत्यंत खुशी हुई, ईश्वर हमारे उन सब भाइयों की मदद करें जो ट्रांसवाल में संघर्ष कर रहे हैं। 'सौम्यता' का 'कठोरता' से संघर्ष, 'प्रेम' का 'हिंसा' से संघर्ष हम सभी यहाँ पर भी महसूस कर रहे हैं.... मैं, आप सभी का अभिवादन करता हूँ।''[6] टालस्टाय द्वारा गाँधी के प्रयासों की सराहना से निश्चित रूप से गाँधीजी को बहुत बल मिला होगा। इसके बाद दोनों के बीच पत्रों का सिलसिला चलता रहा।

गाँधीजी ने 4 अप्रैल 2010 को टालस्टाय को दूसरा पत्र भेजा। इसके साथ गाँधीजी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' भी टालस्टाय को भेजी। गाँधी जी ने टालस्टाय से आग्रह किया कि

अगर टालस्टाय का स्वास्थ्य ठीक हो तो वे किताब के बारे में अपने विचारों से गाँधी को अवगत कराएँ। हम जानते हैं कि यह समय टालस्टाय के जीवन का आखिरी हिस्सा था। उस समय टालस्टाय का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। उस समय टालस्टाय से मिलने बहुत लोग आते थे। टालस्टाय नियमित रूप से डायरी लिखते थे। 10 अप्रैल1910 की तारीख में टालस्टाय की डायरी में उपरोक्त संदर्भ इस रूप में दर्ज है-''आज मुझसे दो जापानी मिलने आये जो यूरेपियन सभ्यता पर कसीदे पढ़े जा रहे थे और वहीं मुझे एक हिंदू का पत्र और उसकी किताब मिली जो यूरोप की सभ्यता में कमियों को साफ-साफ उजागर करते हैं।''[7] 11 अप्रैल, 2010 को उनकी डायरी में यह भी उल्लिखित है- ''आज मैंने गाँधी की जीवनी पढ़ी और मुझे लगता है कि मुझे उनको इस बारे में लिखना चाहिए।''[8] जिस जीवनी का जिक्र टालस्टाय ने किया है वह जेजे डोक के द्वारा लिखी गई थी।

टालस्टाय ने 24 अप्रैल 2010 को गाँधीजी के पत्र के जवाब में लिखा-''मुझे आपका पत्र और किताब मिली... सत्याग्रह सिर्फ हिंदुस्तान के लिए नहीं, वरन् संपूर्ण विश्व के लिए इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण है।''[9] इससे गाँधी और टालस्टाय की वैचारिक नजदीकी सिद्ध होती हैं। टालस्टाय का गाँधी पर प्रभाव पड़ रहा था और टालस्टाय गाँधीजी को वैचारिक रूप से प्रेरणा प्रदान कर रहे थे। टालस्टाय के जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर गाँधीजी ने अपने साथी कालेनबाख के सहयोग से दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में 'टालस्टाय फार्म' की स्थापना की। गाँधीजी ने इसकी सूचना टालस्टाय को 15 अगस्त 2010 को लिखे गये पत्र के माध्यम से दी।

गाँधीजी के प्रयासों और पत्रों ने टालस्टाय के मन में उनके प्रति रुचि बढ़ा दी थी। वस्तुतः गाँधीजी टालस्टाय के विचारों को मूर्त रूप प्रदान कर रहे थे। टालस्टाय की डायरी में गाँधी का नाम अनेक बार आने लगा था। टालस्टाय ट्रांसवाल में गाँधीजी के संघर्ष में काफी दिलचस्पी ले रहे थे। एक तरफ गाँधी का उद्भव हो रहा था तो दुर्भाग्य से उसी समय टालस्टाय अपने जीवन के अवसान पर थे। टालस्टाय ने गाँधीजी को अंतिम खत 20 सितम्बर 1910 को लिखा। यह टालस्टाय द्वारा गाँधीजी को लिखा गया संभवतः सबसे बड़ा पत्र था।

टालस्टाय द्वारा गाँधीजी को लिखा गया अन्तिम पत्र बेहद मार्मिक है। उन्होंने लिखा-''अब जब मौत को मैं अपने बिल्कुल नजदीक देख रहा हूँ तो मैं कहना चाहता हूँ जो मेरे जेहन में साफ-साफ नजर आता है और जो आज सबसे ज्यादा जरूरी है, और वह है-'निष्क्रिय प्रतिरोध'। इसे आप 'सत्याग्रह' भी कह सकते हैं। जोकि कुछ और नहीं बल्कि प्रेम का पाठ है.... प्रेम इंसान के जीवन का एकमात्र और सर्वोच्च नियम है और यह बात हर इंसान की आत्मा भी जानती है, और अगर इंसान किसी गलत अवधारणा को न माने, तो शायद वह इसे समझ सकता है। इस प्रेम की उद्घोषणा सभी संतों ने की है फिर वह चाहे भारतीय हो, चीनी हो, यहूदी हो, यूनानी हो या रोमन हो। जब प्रेम में बल का प्रवेश हो जाता है तो फिर वह जीवन का नियम नहीं रह पाता और हिंसा का रूप धारण कर लेता है और ताकतवर की शक्ति बन जाता है।''[10] गहरे जीवन अनुभव से निकला यह सत्य टालस्टाय अपने जीवन के अंतिम दिनों में गाँधी को दे रहे थे। कहना न होगा कि गाँधी जी पर इसका गहरा असर पड़ा होगा।

सन् 1915 में भारत आगमन के बाद जिस गाँधी को हम देखते हैं उसके व्यक्तित्व की निर्मिति दक्षिण अफ्रीका में हो चुकी थी। गाँधीजी के व्यक्तित्व की निर्मिति और स्वरूप में टालस्टाय की भूमिका अहम थी। गाँधी जी ने जीवन पर्यंत वैयक्तिक और सार्वजनिक जीवन में सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया। भारत और दुनिया गाँधी के रूप में हमेशा टालस्टाय की ऋणी रहेगी। एक अफसोस रह जाता है कि यदि टालस्टाय और गाँधी जी की संगति कुछ और वर्षों हुई होती दुनिया के लिए और अच्छा रहता। जहाँ तक भारत और रूस की बात है, रूस और पूर्व में सोवियत संघ भारत का स्वाभाविक दोस्त रहा है। सोवियत संघ ने हमेशा वैश्विक मंच पर भारत का साथ दिया है। भारत के विकास और आंतरिक मसलों पर भी उसने हमेशा भारत का सहयोग किया है।

भारत और सोवियत संघ के प्रगाढ़ ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक संबंधों के पीछे कहीं न कहीं वैचारिक और सांस्कृतिक कारण मौजूद हैं। भारत के लिए भी सोवियत संघ प्रिय देश रहा है। भारतीय जनता सोवियत संघ की जनता से अंतर्क्रिया करती रही है। राहुल सांकृत्यायन ने 'वोल्गा से गंगा' लिखकर भारत और सोवियत संघ के प्रगाढ़ रिश्तों की एक कड़ी टालस्टाय और गाँधी के रूप में भी जुड़ती है। यह कड़ी एक मजबूत कड़ी है। इक्कीसवीं सदी के विश्व को इतिहास से सीखना हो तो टालस्टाय और गाँधी के रूप में हमें दो विश्व महापुरुष दिखाई देते हैं। भाषा और भौगोलिक दूरी के बावजूद दोनों का वैचारिक एका, सिद्धान्तों के प्रति अडिग विश्वास, एक दूसरे को प्रोत्साहन और समर्थन इक्कीसवीं सदी की स्वार्थ-संघर्षरत दुनिया को नयी राह दिखाने में समर्थ है।

संकेत विवरण

1. https://hindi.speakingfree.in
2. https://satyagrah.scroll.in/article103381/mahatma-gandhi-leo-gtalstoy
3. Ibid
4. Ibid
5. Ibid
6. Ibid
7. Ibid
8. Ibid
9. Ibid
10. Ibid

21 वीं सदी और गांधी की प्रासंगिकता

*डॉ. हेमेन्द्र कुमार सिंह**

मानव इतिहास में समय-समय पर कल्याण पथ पर अग्रसर करने वाले प्रकाश स्तम्भ स्वरूप महापुरुषों की लम्बी श्रृंखला है। मानव समाज प्रकृति प्रदत्त समस्याओं से कभी घिरता रहा है और कभी अपने शक्तिशाली अहंकारी तथा अत्याचारी सदस्यों के दबाव से पीड़ित। ऐसी परिस्थिति में विश्व के विभिन्न भागों में महान विभूतियां अवतरित होती रही हैं जो अपने सद्विचारों और सत्कर्मों के आधार पर पीड़ित मानवता को सत्य का मार्ग अपनाते हुये संघर्ष करने की शिक्षा देती रही है, जिससे समाज सुख समृद्धि और शान्ति की ओर बढ़े। काल के प्रवाह में वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के कारण भौतिक विकास होने पर समुदायों में स्वार्थों की टकराहट होने लगती है तथा आदर्श की भावना क्षीण होकर धार्मिक आस्थाओं, सामाजिक, व्यवसायिक, आर्थिक, राजनीतिक स्वरूपों में नये मानकों की स्थापना के लिये संघर्ष होता है और निराशा व्याप्त हो जाती है। तदन्तर ईश्वर द्वारा अपने अंश का पृथ्वी पर अवतार अथवा अपना दूत भेजना जिनके सद्विचार सत्कर्म, त्याग और प्रेरणा के बल पर सुव्यवस्था की पुनर्स्थापना होती है। महात्मा गांधी की विशेषता मानव समाज के सम्पूर्ण जीवन के सम्बन्ध में सभी पहलुओं पर चिन्तन करने और आदर्श पथ पर अग्रसर करने में है, जिसके लिये उन्होंने सत्य अहिंसा प्रेम का मार्ग अपनाया और कहा कि उनका जीवनचरित ही उनका सन्देश है।[1]

भारत के इतिहास का वर्तमान युग गांधी-युग के नाम से पुकारा जाता है। गांधी जी के आगमन के उपरान्त भारतीय राष्ट्रीय संग्राम की धारा का अनुसरण करने से स्पष्ट प्रगट होता है कि भारतीय राजनीति में गांधी जी का पदार्पण एक मंगल प्रभात का उषाकाल था। भारत के राजनैतिक आकाश में गांधी जी एक नूतन तथा अद्भुत पथ प्रदर्शक, निर्मल, निश्चल तथा सबल ध्रुवतारे के रूप में उदित हुये। इस प्रशान्त तथा विमल नक्षत्र के प्रकाश में भारत वसुन्धरा का अन्धकाराच्छन्न कोना-कोना चमक उठा। अंधियारे में भटकते देशवासियों को अपना मार्ग प्रशस्त और स्पष्ट दिखाई देने लगा। दक्षिण अफ्रीका से लौटे हुये इस जादूगर के नये-नये आचार-विचारों पर विमोहित हो सारा देश उनके पीछे चल पड़ा, असीम विश्वास और अडिग श्रद्धा के साथ। इस जादूगर के मोहिनी मंत्र की ''विभूति'' थी- सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह।[2]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति का प्रतिमान बनकर आज जब दुनियां 21 वीं सदी में तेजी से आगे बढ़ रही है, तब गांधी और प्रासंगिक होते जा रहे हैं। यह प्रगति हमे समृद्धि, सुख और विकास के अनगिनत सपनों से जोड़ रही है, तो दूसरी ओर विनाश के घने सायों की आशंकायें ही नहीं सिर उठा रही बल्कि बेलगाम ध्वसांत्मकता की प्रवृत्तियों का भयावह खतरा आगाह भी कर रहा है।

ओबामा से मनमोहन तक ने पिछले दिनों उभरते परमाणु आतंकवाद के खतरों की चर्चा की है। यह खतरा दुनियां की सबसे बड़ी तबाही की तारीखें लिख सकता है। इसे रोकने में कपटपूर्ण कूटनीति में लिपटे शान्ति प्रयास नहीं अपितु हृदय को साफ कर महात्मा गांधी का पन्थानुकरण ही कारगर औषधि का काम कर सकता है। भारत सरकार की पहल पर चौदह वर्ष पूर्व गांधी जयंती को विश्व शान्ति दिवस का दर्जा यू0एन0ओ0 द्वारा दिया जाना इस बात का प्रतीक है कि सारी दुनियां में इन चिन्ताओं से जुड़े मंथन में दृष्टि कहीं न कहीं गांधी की ओर उठ रही है। अतः गाधी जयंती को विश्व शान्ति दिवस घोषित करने के अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों की पहल के क्रम में श्रीमती सोनिया गांधी का यह कथन बेहद प्रासंगिक है कि महात्मा गांधी अतीत ही नहीं, भविष्य भी हैं।[3]

गांधी की अहिंसा एवं सत्याग्रह दृष्टि अणुशक्ति जैसा प्रभाव रखती है। वह दुनिया भर में शान्तिपूर्ण राजनीतिक कार्यशैली के रूप में स्वीकार्य बनी हुई है। यह सही है कि जहाँ तक उसके प्रयोगों में गाधी दृष्टि के अनुरूप शुद्धता का क्षरण हुआ है, वहाँ तक सत्याग्रह की प्रभावोंत्पादकता भी घटी है। यदि इसका गांधी की कसौटियों पर शुद्धतम प्रयोग हो तो प्रभावकारिता असीम हो सकती है। गांधी ने व्यक्ति की आत्मचेतना और आत्मबल को जागृत एवं उत्तेजित कर साहस, संकल्प और निर्भयता की शक्ति को प्रमोदित किया तथा उसके सहारे दुनिया के सबसे बड़े साम्राज्य के विरूद्ध भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में भारत के गाँव-गिराव तक के आम आदमी को इस विश्वास के साथ खड़ा कर दिया कि एक अदना आदमी भी अन्याय की बड़ी से बड़ी सत्ता से टकरा सकता है और उसे झुका सकता है, वह उनके अहिंसा के प्रयोगों की अप्रतिम क्रांति थी। वह विश्वास आज भी दुनिया में शान्ति की लोकशक्ति का सबसे बड़ा सम्बल हो सकता है।

आज हम हिंसा के अलावा कोई अन्य मार्ग चुनते ही नहीं हैं। सज्जन निष्क्रिय है, दुर्जन सक्रिय हैं। चारों ओर पावर है, मनी पावर, मसल पावर, माफिया पावर, मीडिया पावर। इन चारों पावरों के बीच गांधी परमार्थ कैसे साबुत बचे, यह विचारणीय है। दुनिया तेजी से हिंसा के रास्ते पर जा रही है। यह हिंसा घर-बाहर व्यक्ति सभी में है। हमारे पास अणुशास्त्र है, विकल्प ज्यादा नहीं है अब या

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, जगतपुर पी0जी0 कॉलेज, जगतपुर, वाराणसी

तो अहिंसक समाज रचना बनेगा या मानव जाति ही नष्ट हो जायेगी। विज्ञान ने मनुष्य के सामने यक्ष प्रश्न उपस्थित कर दिया है। अणुशास्त्रों के अनुसंधान के बाद हिंसा और अहिंसा समानान्तर एक साथ खड़ी हो गई है। गांधी जी की मृत्यु के बाद अनेक संदेश आये उसे जनरल मक आर्थर का संदेश था कि ''किसी न किसी दिन दुनिया को गांधी की बात सुननी ही पड़ेगी उसके बिना चारा नहीं, कारण अणुबमों के आविष्कार के बाद एक विशिष्ट परिस्थिति निर्मित हो गई है। नेल्सन मंडेला का कथन कि ''मैं गांधी को बहुत पसंद नहीं करता था लेकिन जब मेरे सामने दक्षिण अफ्रीका की आजादी की बात आई तो मेरे पास गांधी के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था। इसलिए अब सामाजिक और आर्थिक आजादी के सवाल अहिंसा की शक्ति से सुलझाये जा सकते हैं तब विश्व को एक मार्ग मिल जायेगा। सार्वजनिक जीवन में चरित्र की रक्षा करने के सम्बन्ध में उदासीनता ही नहीं अपितु चरित्र आदि विषयों की अवहेलना करने की जो प्रवृत्ति चारों ओर दिख रही है, उस पृष्ठभूमि में प्रखर पावित्र्य के तेज से चमचमाता उनका जीवन अधिक उभरा हुआ दिखेगा तथा अपने मन को आकृष्ट करता हुआ हमारे अंतकरण में भी अपने जीवन को शुचितापूर्ण एवं मंगलमय बनाने की प्रेरणा और विश्वास का निर्माण कर सकेगा।[4]

भारतीय इतिहास में शांति और अहिंसा का प्रतिपादन सभी ऋषियों, संतों, मनीषियों ने किया, किन्तु हिंसा की चुनौती इतिहास में पहली बार महात्मा गांधी ने स्वीकार की। उन्होंने कहा कि हिंसा मानव समाज के प्रति द्रोह है। हमें जीवन के हर क्षेत्र में अहिंसा चाहिए, अहिंसा के अभाव में हम साथ-साथ नहीं रह सकते। हजारों बार की असफलता के बाद भी साधारण मनुष्य अहिंसा कायम करके रहेगा, क्योंकि उसे एक-दूसरे के साथ जीना है। अणु बम की अत्यन्त करुण कहानी से गांधी जी ने यही सिखावन दी कि इस तरह हिंसा से हिंसा को नहीं मिटाया जा सकता। मनुष्य जाति अहिंसा के मारफत ही हिंसा के गड्ढे से निकल सकती है और यहीं से होता है नये युग का सूत्रपात। निहत्थे गांधी की अहिंसा का कमाल था कि वे जिधर चलते थे, सारा देश उधर ही चल पड़ता था। कविवर सोहन लाल द्विवेदी ने लिखा है-

'चल पड़े जिधर दो डग मग में चल पड़े कोटि पग उसी ओर

पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि गड़ गये कोटि दृग उसी ओर।'

गांधी जी ने धर्म संकीर्णता के स्थान पर सर्वधर्म समभाव के लिये प्रयत्न किया, इसका भी दूरगामी प्रभाव पड़ा। यदि वोट की राजनीति करने वाले धार्मिक संकीर्णता को पानी न देते तो आज देश का नक्शा ही कुछ और होता। गांधी जी युग पुरुष थे। इनका प्रभाव न केवल भारत तक सीमित रहा, अपितु अन्य देशों पर भी पड़ा। आज पूरा संसार वर्गविहीन समाज की स्थापना की ओर अग्रसर है और सभी धर्म की संकीर्णता के दायरे से निकलकर मानव धर्म के विस्तृत दायरे में प्रवेश करने के लिये आतुर है।[5]

गांधी जी भारतीय दर्शन, विशेषकर गीता दर्शन से प्रभावित थे। ये मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा, तीनों के विकास पर समान बल देते थे। गांधी जी ने भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार की उन्नति के लिये जिस एकादश व्रत के पालन की शिक्षा दी है और सत्य एवं अहिंसा पर आधारित जो शिक्षा योजना प्रस्तुत की है वह भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि पर ही तैयार की है, वह हर दृष्टि से भारतीय दर्शन पर आधारित है।[6]

गांधी जी राष्ट्रनिर्माता, सुधारक और राजनीतिक होने के साथ ही, वे जगत के त्राता और मानव मात्र के सेवक तथा कल्याणकर्त्ता भी थे। इसी रूप में विश्व के इतिहास में उनका मूल्यांकन किया जायेगा। वे यदि भारत के बापू थे, जगत के मसीहा भी थे। इस सत्य को सभी स्वीकार करते हैं। वाशिंगटन में बनाया जाने वाला 'गांधी स्मारक' जिसके प्रस्ताव पर 28 सितम्बर 1949 को अमेरिका के सभापति दूमन ने हस्ताक्षर किये, इसका प्रमाण है। न्यूयार्क में गांधी जयंती के अवसर पर 2 अक्टूबर 1949 को लुई फिशर ने कहा था कि- 'गांधी जी का इतिहास में इतना बड़ा स्थान है कि उसके सामने उनका भारत त्राता और राष्ट्रनिर्माता होना एक छोटी सी बात रह जाती है।'[7]

सन् 1930 में महात्मा गांधी और अलबर्ट आइंस्टीन ने ऐसे संगठन की कल्पना की थी, जो विश्व शान्ति की स्थापना में सक्रिय योगदान करें। 1960 में विश्व धर्म शांति सम्मेलन की नींव पड़ी। गांधी जी की जन्म शताब्दी के समय 1968-69 के बाद होने वाले इसके अधिवेशनों में भाग लेने वालों ने संयुक्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि हम बौद्ध, ईसाई, कन्फ्यूशियन, हिन्दू जैन, यहूदी, मुसलमान, सिख, पारसी, शन्तोधर्मी मानते हैं कि हम भले ही किसी भी धर्म में आस्था रखते हों, पर सारी मानवता के साथ हमारी एकरूपता है और उसकी जो भी समस्याएँ हैं, वे सब हमारी समस्याएँ हैं। हम सभी देशों के धार्मिक नेताओं से अपील करते हैं कि पहले वे इस बात के लिए अथक प्रयत्न करें कि सभी सामाजिक संघर्षों में कमी आये और उनके बाद ऐसा प्रयास हो, जिससे युद्ध का कोई शान्तिपूर्ण समाधान निकल आये। युद्ध के मूल को दूर किये बिना हिंसा का उत्तर देकर समस्या नहीं सुलझायी जा सकती।

21वीं सदी में गांधी विचार की प्रासंगिकता उजागर करने वाला बिस सिद्धान्त दिल्ली विश्वविद्यालयय के वैज्ञानिकों ने प्रतिपादित किया है, जिसके अनुसार भूकम्प प्राकृतिक आपदाओं आदि का कारण हिंसा, क्रूरता, कत्लखाना और युद्ध है। इन कारणों का निराकरण कर धरती को बचाना एवं सबको सुखी बनाना है तो अहिंसा को अपनाना ही होगा। इसीलिए कहा जाता है कि गांधी पिछली शताब्दी में जितने प्रासंगिक थे, उससे अधिक आज प्रासंगिक है और आने वाले कल में उनकी प्रासंगिकता बनी ही रहेगी क्योंकि विभिन्न धर्म परम्पराओं और शान्ति के मध्य अपनी रचनाधर्मिता की पहचान बनाये रखने वाला गांधी-विचार सभी को एक-दूसरे के

निकट लाता है और सामुदायिक जीवन का उन्नत बनाता है। सत्य जीवन का लक्ष्य, संयम जीवन की पद्धति, सेवा जीवन का कार्य मानने वाले गांधी विचार का परिचय कविवर नीरज की पंक्तियों में इस प्रकार है –

'जाति-पांति से बड़ा धर्म है, धर्म ध्यान से बड़ा कर्म है।

कर्मकाण्ड में बड़ा मर्म है। मगर सभी से बड़ा यहाँ पर यह छोटा इंसान है और अगर यह प्यार करे तो धरती स्वर्ग समान है।'

सन्दर्भ

1. हिन्दी दैनिक, गाण्डीव समाचार पत्र, वाराणसी, 30 जनवरी 2019, पृ0सं0 4
2. भगवती प्रसाद चौधरी, महात्मा गांधी और भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 1999, पृ0सं0 25
3. हिन्दी दैनिक, हिन्दुस्तार समाचार पत्र, वाराणसी, (गांधी जयंती विशेषांक),2 अक्टूबर 2009, पृ0सं0
4. ना0ह0 पालकर, डॉ0 हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन, राजेन्द्र नगर (पूर्व), लखनऊ, जनवरी 1997, पृ0सं0 9
5. प्रो0 रमन बिहारी लाल, विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, 2017, पृ0सं0 398
6. प्रो0 रमन बिहारी लाल, विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, 2017, पृ0सं0 399
7. भगवती प्रसाद चौधरी, महात्मा गांधी और भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 1999, पृ0 308

●

गांधी महात्मभिः आत्मकथारूपेण सत्यान्वेषणम्

*डॉ. प्रियङ्कर अग्रवाल**

इतः प्राक् चतुःपञ्चचत्सरेभ्यः केषाञ्चित्परमात्मानां मदीयसहोद्यमिनामिष्टानुरोधेन स्वीयामात्मकथामुपनिबद्धुं प्रतिज्ञामकरवम् । उपक्रान्तलेखनेन च प्रथमपुटं परिसमाप्य यावदावर्तितं पत्रं तावन्मोहमयीनगरे हस्ताहस्तिमहाक्षोभसमुद्भवात्कार्यमेतद्विघ्निमभूत् । तदनन्तरवृत्तघटनाभिश्चपर्यन्ते 'यरवडा' कारागहवासो मया लब्धः। तत्र मे सहबन्दिनामेकमः श्रीजयरामदासार्यः सर्वथा कार्यान्तरं परित्यज्यात्मकथाप्रबन्धः परिसमापनीय इति मामबोधयत् । तदा कश्चिदभ्यासक्रमः पूर्वमेव मया निश्चित्याङ्गीकृतः। स यावन्न परिसमाप्यते तावदन्यत्र मनो न हि व्यापारयिष्यामीत्यभिधाय तं व्यसर्जयम् । यद्यहं कल्पावधिपर्यन्तं 'यरवडा' लयमेवाध्यासिष्ये तदावश्यमेवात्मकथां समापयिष्यम् । परन्तु तदुपक्रमादेकसंवत्सरात्प्रागेव मां बन्धनादमूमुचन् । तत्रभवद्भिः श्रीमदानन्दस्वामिभिः पुनरस्य कृते प्रबोधितोऽस्मि। अतो दक्षिणाफ्रिकादेशसम्बन्धिसत्याग्रहेतिहास्य पूर्वमेव मया प्रणीतत्वादिदानीं स्वजीवनचरितय 'नवजीवन' वृत्तपत्रिकायां लेखनमङ्गीकर्तुमिच्छामि। स्वामिनस्तु पुस्तकरूपेण पृथक् प्रकाशनार्थ ग्रथितव्यमित्यभिलषन्ते। परन्तु न तावदेवं कर्तुं शक्यतेऽवसरालाभात् । प्रतिसप्ताहमेकप्रकरणक्रमेण लेखनं सुकरम्। 'नवजीवन'स्यार्थे प्रतिसप्ताहमवश्यमेव खलु यत्किञ्चिलेखितव्यम्। तदेतदात्मकथैवास्तु। इत्यावेदिताः स्वामिनस्तथेति प्रत्यपद्यन्त। अतोऽहमेवं तल्लेखनपरिश्रमे प्रवृत्तोऽस्मि।।

परन्तु भवगद्भक्तः कश्चिन्मे सखा कदाचित्सोमवासरे मौनव्रतस्थ मामुपसृत्यास्मिन्प्रसङ्गे स्वमनोगतान् संशयानित्त्थमभिव्याञ्जयन् । यथा-

कुतोऽस्मिन्साहसे प्रवृत्तो भवान् । ईदृक्प्रबन्धस्य पाश्चात्यदेशमग्रे खलु प्रथा दृश्यते। पाश्चात्यसंस्कृत्या परिवृत्तिमप्राप्तः स्वकथोपनिबद्धः पौरस्त्यो जनः कोऽपि मे न विदितः। अपि च किं किमात्र लेखनीयम् । यदेवाद्य सिद्धान्ततया परिगृहीतं तदेव श्वः परित्यक्तमिति। यदेवाद्य कर्तव्यतया समुद्दिष्टं तदेव परेद्युरन्यथानुष्ठितमिति। नन्वेवं भवद्वाक्यमेव प्रमाणीकृत्य व्यवहरतो जनान्बहूनिदं मार्गादभ्यशयेत् । तस्मादात्मकथालेखनं वरं विलम्बयितुम्। अथवात्यन्तमेव तत्परित्यागोऽपि युज्यत इति।।

सैष तर्को मन्मनिस लग्नोऽभूत् । किन्तु नेदं ममोद्देश्यं यन्मदीयमितिवृत्तं प्रकाशनीयमिति। सत्यमन्विच्छता यानि मयानुष्ठितानि बहूनि साधनानि तत्कथा परं वर्णनीयेत्येव ममाशयः। मम जीवितस्येदृक्साधनानुष्ठानरूपाभिन्नत्वात्तदाख्यानं च जीवनचरित्रस्वरूपमेवापद्यत इत्येतदपरिहार्यम् । प्रतिपुटमेतत्साधनविषयामात्रापियादनेनापि ग्रन्थस्य चारितार्थ्यं सिध्यति। नास्मात्परं किंचिदवेक्ष्यते। एतत्साधनवृत्तान्तः पाठकानां न लाभप्रदो न स्यादिति प्रत्येमि। ये मया राजकीयविषयेषु कृताः प्रयत्नास्ते खलु न केवलमस्मिन् भरतखण्डे सर्वतः प्रथामागताः परमन्यत्रापि नागरिक प्रपञ्चस्य सामान्यः सुविदिता एव भवन्ति। न पुनरेते बहुमन्तुमर्हाः। एतैर्मे सम्पादितस्य 'महात्मे'तिबिरुदस्य सम्भावनाप्यल्पीयस्येव। अनेकशस्तेन मे मनसि परं यातनाः समुत्पन्नाः न खलु स्मराम्येकमपि तादृशं क्षणं यत्र मया बिरुदप्राप्तिहेतुकोऽभिमानः कदाप्याकलितः। किन्तु राजकीयक्षेत्रे कार्यनिर्वाहदक्षतोपलम्भकानि स्वमात्रविदितान्याध्यात्मिकसाधनानि वर्णयितव्यानीति मे कुतूहलमस्ति। वस्तुतस्तेषामाध्यात्मिकत्वे सति नम्रता परं वर्धत एव। न च स्वप्रशंसायाः कचिदास्पदं लभ्येत। यथा यथा स्वपूर्ववृत्तमभिसमालोच्य विचारः क्रियते तथा तथा मम न्यूनताः स्पष्टमुपलक्ष्यन्ते।

मम जन्म

गान्धिवंशीया बनियाख्यवैश्यवर्णाः तेऽमी पुरा स्तोकानापणान्प्रतिष्ठाप्य वाणिज्यं कुर्वते स्मेति प्रतिभाति। किन्त्वस्मत्तातमारभ्यते त्रिपौरुषपर्यन्तं काठियावाडदेशस्य कतिपयसंस्थानेषु प्रधानसचिवा बभूवुः। ओतागान्ध्यपराख्येनोत्तमचन्दगान्धिनाखण्डित-वादिना भाव्यम् । तस्यास्य पोरबन्दरसंस्थाने प्रधानपदमारूढस्य क्वचित्कूटनीतिवशात्तत्संस्थानं परित्यज्य जूनागढसंस्थान आश्रयः समन्वेषणीयोऽभूत् । तदा तत्रत्यनवाबप्रभेरयं सत्यहस्तेन सभाजनं चकार। तत्प्रेक्षकेण केनचित्पुरुषेण तावदविनीतवर्तनस्य हेतु पृष्टः स प्रत्याह इतः पूर्वमेव मम दक्षिणो हस्तः पोरबन्दरसंस्थानस्य यशवर्ती भवतीति।।

मम पिता कुटुम्बवत्सलः सत्यप्रियः शूर उदारश्च। परन्तु क्रोधनः । मनाग्विषया सक्त इत्यपि वक्तव्यम् । स किल व्यतिक्रान्तचत्वारिंशद्वत्सरोऽपि चतुर्थी भार्यामुपायस्त। किन्त्वमुत्कोचादिलोभात्परवशो नाभूत् । यथा स्वकुटुम्बे तथा बहिरप्ययं निष्पक्षपातीति प्रथां सम्पादितवान् । अस्य राजनिष्ठा सर्वलोकविदिताभवत् । कदाचिदस्यं निजस्वामिनो राजकोटप्रभोष्ठाकूराह्वस्य कृतापमानं 'असिस्टेण्ट पोलिटिकल

* (अतिथि प्राध्यापक) धर्मशास्त्र-मीमांसा विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञानसंकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

एजेण्ट' इति व्यपदिश्यमान राजकीयप्रतिनिधिं प्रत्यवतस्थे। क्रुद्धेन तेन प्रतिनिधिना क्षमामभ्यर्थयस्वेति कबागान्धिः समादिष्टोऽपि न तथाकर्तुं प्रत्यपद्यत। ततस्तेन कतिपयहोराकालपर्यन्तमसाववष्टभ्य स्थापितोऽभवत् । परन्तु वज्रकठोरमनस्कतामस्यावबुध्य स राजकीयप्रतिनिधिर्विमुच्यतामयमित्यादिदेश।।

मम मातुर्विषये कदाप्यविस्मरणीयतया यन्मे मनसि निरूढस्थितं तत्खलु सा पतिव्रता स्त्रीति। सेयं धर्मभीरुः। प्रतिदिनमापूजापाठावसानं भोजनचिन्तामपि न कलयति स्म। हवेल्याख्यवैष्णवदेवालयगमनं तस्याः प्रात्याह्निककर्तव्येष्वेकतममासीत् । स्मारं स्मारमपि तस्याश्चतुर्मास्यव्रताचरणलोपः कदाचित्कोऽपि मम स्मृतिपथं नायाति। अत्यन्तकृच्छ्रव्रतान्यपि सा सर्वात्मना समापयते स्म। आरब्धव्रतं व्याधिवशान्न कदापि पर्यत्यजत् । एकदा चान्द्रायणव्रतमाचरन्त्या रोगपीडितयाप्यपरित्यज्य व्रतं यथावत्समापितं मम स्मृतिमुपैति। द्वित्रिदिनानि यावदुपवासो नाम तस्या ईषत्करः। चातुर्मास्ये प्रतिदिनमेकमुक्तं तयाभ्यस्तमासीत् । इयताप्यपरितृष्य चातुर्मास्ये क्वचिदेकाह्निकमुपवासं कुर्वती। व्रतं समापयत् । अपरस्मिंश्चातुर्मास्ये सूर्यनारायणदर्शने विना नाहारं स्वीकारिष्य इति व्रतमग्रहीत् । तदास्माभिर्बालकैर्बहिः स्थित्वा गगनैकदृष्टिभिः सूर्यदर्शनं मात्रे निवेदयितुमवसरः प्रतीक्ष्यते स्म। वर्षाकालमध्ये सूर्यदर्शनमतीवविरलमिति सर्वेषामपि विदितमेव। बहुषु दिवसेषु सहसा प्रत्यक्षीभवति सूर्ये यथा वयं 'अम्ब अम्ब सूर्यो दृश्यते' इति ससम्भ्रममवोचाम यथा च न यावदम्बा स्वयं द्रष्टुं बहिरुपधावति तावत्सूर्यस्तिरोहितोऽभूत् यथा चानेन तस्यास्तस्मिन्दिने भोजनाभावः प्राप्तस्तथा सर्वं स्मरामि। ईदृक् सम्भवेष्वस्मन्माताम्लानमुखी 'न कापि चिन्ता। ममाद्य भोजनं देवाय न रोचते' इति वदन्ती स्वकार्यमनुष्ठातुं प्रतिनिर्वर्तते स्म।।

सा व्यवहारकुशला। राजस्थानसम्बन्धिनामखिलवृत्तान्तानामप्यभिज्ञाभवत् अस्या बुद्धिकौशलमवरोधजनस्य सुविदितमासीत् । अहमनेकशो बाल्ये वयसि जनन्या सह राजमन्दिरं गत्वा तत्र मदम्बाठाकुरप्रभुजनन्योः संवृत्तं कथालापं श्रुतवानित्यद्यापि स्मरामि।।

अनयोर्मातापित्रोर्गर्भादहं संवत् 1835 भाद्रपदबहुलाद्वादश्यां (तथा च श्रीशालिवाहनशकस्य द्विनवत्युत्तरसप्तशताधिकैकससहस्रतमे शुक्लनाम्नि संवत्सरे भाद्रपदकृष्ण द्वादशीतिथौ) अधुना पोरबन्दरेतिप्रसिद्धे सुदामापुर्यां जन्माग्रहीषम्।।

पोरबन्दरपुरे मया बाल्यमतिवाहितम् । कामप्येकां पाठशालां प्रति मया गम्यते स्मेति ज्ञप्तिरस्ति। गणितकोष्टकानां घट्टीकरणं मम क्लेशावहं संवृत्तम् । अपि च सहपाठिभिः सहास्मदुपाध्यायनिन्दामशिक्षिषि। इदमुक्त्वा नान्यत् किञ्चिदपि स्मरामि। एतेन तदानी मे बुद्ध्या मन्दया भवितव्यं ज्ञापकशक्त्या चापक्वया भाव्यमिति तर्कये।।

बाल्यम् —

यदा मे पिता राजास्थानिकन्यायसभासदस्यत्वमिच्छू राजकोटं प्रति प्रस्थितस्तदा मया सप्तवर्षदेशीयेन भाव्यम्। तत्राहं प्राथमिकशालां प्रवेशितोऽभवम् । तदात्वे पाठयितृणामुपाध्यायानां नामानि सभ्यगहं स्मरामि। यथा पोरबन्दरपुरे तथैवात्रापि मम पाठलेखनादिषु न कोऽपि विशेषो दृष्टः। नचाहमितरापेक्षया बुद्धिमत्तर इति गणनीयोऽभवम् । एनां शालामतिक्रम्य नगराबाह्यवर्तिन्यां पाठशालायां दिनकतिपयान्यावदध्यगीषि। तदनु द्वादशेवर्षे हाईस्कूलाख्यमुच्चविद्यालयमहं प्रविष्टः। अस्मिन्नल्पीयसि कालेऽस्मदुपाध्यायान् वा सहपाठिनो वा नाहमनृतं कदाप्यचकथम् । अतीव लज्जालुतया परगोष्ठीं पर्यहार्यम् । मदीयपुस्तकपाठा एव मे सहायाः। घण्टावादनसमये पाठशालोपस्थानं शालाविरामे च गृहाभिमुखीभवनं-एवं हि मेऽभ्यासः। अन्यैः सह कथालापनिस्सहेन गृहं प्रति त्वरितगतिना गम्यते स्म मा कोऽपि दृष्ट्वां मां परिहसीदिति।

एतस्मिन्नेव समये संवृत्तं घटनाद्वयमन्यदपि मे मनसि लग्नं भवति। शालापुस्तकानि मुक्त्वा पुस्तकान्तरपठनं मम नेष्टमासीत् । उपाध्यायादाक्षेपवचनं वा मया तत्प्रतारणं वा न मे रोचते स्म। अतो मया दैनन्दिनीयपाठाः शिक्षणीया एवापतिताः। तथाप्येवं शिक्षमाणस्य मानसं सर्वदा पाठैकव्यग्रमासीदिति वक्तुं न शक्यते। एवं मयि पाठ्यपुस्तकेऽपि निरवधाने सति पुस्तकान्तरं मया न हि पठ्यते स्मेति किंतु वक्तव्यम् । किन्तु मम पित्रा क्रीतस्थापितस्य श्रवणपितृभक्त्याख्यनाटकग्रन्थस्योपरि कथमपि मे दृष्टिरपतत् । तमेनं तत्परतयाहमपाठिषम् । तत्कालमेव ग्रामाद्ग्रामं पर्यटन्तः पुत्तलिकाप्रदर्शनोपजीविनः केचिद स्मद्ग्राममुपागमन् । तत्प्रदर्शितपुत्तलिकासु यात्रामुद्दिश्य स्कन्धावलम्बिवीवधेन स्वमातापितरौ वहमानस्य श्रवणस्य प्रतिकृतिरेका व्यलोकि। एतत्पुस्तकं पुत्तलिका चेति द्वयं मिलित्वा श्रवणकथां मे मनसः कदाप्यप्रमार्जनीयामकरोत। श्रवणस्य पितृभक्तिदर्शरूपेण त्वया स्थापनीयेत्यात्मनात्मानमबोधयम्। श्रवणस्य मरणेन सन्तप्यमानयोस्तत्पित्रोर्विलापोऽद्यापि मे मनसि शोश्रूयत इव। मदर्थे पित्रा वितीर्णया रागमालिकया तमहमालापयम् । स रागो मे हृदयं व्यलीनयदिव।।

नाटकान्तरसम्बन्धिन्यपरा तत्सदृशी घटनैका संवृत्ता। एतत्कालमेव कयापि नाटकमण्डल्या प्रयुक्तं नाटकमवलोकयितुं पितुरनुज्ञामध्यगच्छम्। तन्नाटकं हरिश्चन्द्रचरितात्मकमासीत्। तदेतल्लोचनसेचकनं मम मानसमकर्षत् । किन्त्वनुज्ञां कतिकृत्वः प्राप्य गन्तुं शक्येत। तथाप्येतन्निमित्तं व्यसनं नैव माममुञ्चत् । निस्संख्यवारिमिदं नाटकं मया स्वयं मनसा प्रयुक्त स्यात्। हरिश्चन्द्रेणेव सर्वैरपि कस्मात्सत्यवद्भिर्न भवितव्यम् । इत्येष प्रश्नो दिवानिशं मे मनसि पुस्फोर्यते। स्म। सत्यानुसरणं सत्यस्यार्थे हरिश्चन्द्रवन्निर्विकल्पेन मनसा क्लेशानामनुभवः। इत्येष आदर्श एक एव मे मनस्याविरभूत्। हरिश्चन्द्रकथायामक्षरशः

सत्यत्वप्रतीतिर्मयासीत्। सर्वस्यास्य स्मरणमनेकशो मे नेत्रभ्यामश्रूणि निरसारयत्। कथाहरिश्चन्द्रः कश्चिचद्वस्तुतो न जीवन् स्थित इत्यधुना मम लौकिकज्ञानमाख्याति। किन्तु हरिश्चन्द्रश्रवणावुभावपि मम हृदये नित्यसंनिहितौ स्तः। अद्यापि तन्नाटकपाठेन पूर्ववन्मे हृदयं विलीयत इत्यहं जाने।।

धर्माणां परिचयः —

मदीयविदेशगमनाद्वितीयवत्सरान्ते ब्रह्मविद्यासमाजप्रविष्टयोर्द्वयोः सहोदरयोः परिचयो मे जातः। तौ द्वावप्यनूढौ श्रीमद्भगवद्गीतामधिकृत्य मया तौ प्रस्तावमकुरुताम् । सरएडविनआर्नोल्डमहाशयेन विरचितं भाषान्तरं ताभ्यामपाठि। तौ सहैव मूलपठनाय मामाहूयताम् । किन्तु मया संस्कृते वा गुजरातीभाषायां वा गीताग्रन्थस्याधीतत्वादहं लज्जितोऽभवम् । ततो मयैवमभ्यधायि मया भवगद्गीता न कदाप्यपाठि। किन्तु भवद्भयां तत्पठितुं सज्जोऽस्मि स्थितः। सुतरामनभिज्ञोऽहं संस्कृतस्य तथापि यत्रानुवादो मूलार्थं व्यभिचरेत् तत्स्थलप्रदर्शनं हि मया शक्यते कर्तुमिति प्रत्येमि- इति। ताभ्यां सह भगवद्गीतामध्येतुं प्रावर्तिषि। द्वितीयाध्यायस्य—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[1]

इतीमे श्लोका मम हृदयमगाहन्त। अद्यापि खलु ते मदीय श्रोत्रयोर्दन्ध्वन्यन्ते। भगवद्गीतानामायममूल्यो ग्रन्थ इति तदाहमचिन्तम् । अत्र मान्यता क्रमशो मे वृद्धिमागता। सत्योपलब्धये सर्वोत्तमोऽयं ग्रन्थ इत्यद्याहं मन्ये। मम निराशस्थित्यवसरे ग्रन्थेनानेनामूल्यं साहाय्यमकारि। अस्याहमाङ्ग्लभाषानुवादान् प्रायेण सर्वानप्यपठिषम् । तेष्वोर्नाल्डमहाशयस्य भाषन्तरमनुत्तमं मे प्रतिभाति। तत्र मूलग्रन्थगताशयानां न हि लेशतोऽपि व्यतिक्रमो दृश्यते। अनुवादोऽप्ययमनुवादवन्न दृश्यते। सखिभ्यां सह पठितापि भगवद्गीता मया सम्यगधीतेति वक्तुं न पारये। ततः कतिपयवत्सरानन्तरमेव प्रत्यहमियं मया पठितुमारब्धा।।

एतत्कालमेव क्वचन शाकाहारभोजनगृहे माञ्चेस्टरस्थलीयस्य कस्यचित्क्रैस्तसाधोर्दर्शनं मे जातम् । स च क्रैस्तधर्मानधिकृत्य मया सह कथालापमारब्धवान् । राजकोटे मदनुभवांस्तस्मै न्यवेदयम् । स एतदाकर्ण्य नितरामदूयत। स एवं मामकथयत् - अयमस्मि शाकाहारी। मद्यं मया न सेव्यते। नूनं बहवः क्रैस्तमतीया मांसं मद्यं च सेवन्ते। किन्तु तयोरेकतरमवश्यमेव स्वीकर्तव्यमिति नास्ति धर्मतो नियमः। अधीयतां भवता क्रैस्तवेदः। सेयं मे विज्ञापना' इति।। तद्वाक्यं मयाङ्गीकृतम् । स 'बाइबल' पुस्तकमादाय मह्यमदात् । इदं च क्वचित्स्मर्यते यदसौ स्वतः पुस्तकानि व्यक्रीणीत तस्माच्च चित्रानुक्रमणिकादिविषयोपेतमेकं पुस्तकमहमक्रैषमिति। तदेतदहं पठितुमुपाक्रमे। किन्तु तस्य पूर्वभागस्यान्तं पठनं ममाशक्यमासीत् । तत्र सृष्ट्रिक्रमा (जेनेसिस) ध्यायमधीत्य पुरस्तात्पठितुमुद्यतं मां निरपायिनी निद्रा समावृणोति स्म। तथापि पठनश्लाघाकाङ्क्षिणात्यन्तनिरुत्साहेनाप्यर्थाव-बोधशून्येनापि बहु परिश्रम्य परे केचिदध्याया मयापाठिषत। 'नम्बर्स' इत्येतदाख्यमध्यायं पठतो ममातिमात्रं जिहासा समुत्पन्ना।।

उत्तरभागस्वत्वन्यविधः समलक्ष्यत। तत्रापि 'धि सर्मन ऑफ धि माउण्ट' इत्येष उपदेशो हृदयङ्गम आसीत् । तमेनं भगवद्गीतयोपमाय न्यरूपयम् । ''एतदहं वः कथयामि यत् हिंसाकारिणं मा प्रत्यवतिष्ठध्वम् । यदि वो दक्षिणकपोले कश्चित्प्रहारं दद्यात्तदा तस्यापरमपि कपोलं दर्शयत। यदि कश्चित कञ्चुकमाच्छिद्यापहरेत्तदा तस्य युष्मदीयमुत्तरीयं च प्रयच्छत'' इत्येतत्पठित्वा परं प्राहृष्यम् । 'आशीर्वादकृतं जनं परमया भक्त्या नमन् भद्रकृत् । सन्तापं जनयिष्णवे च परया प्रीत्यामृतान्नं दददित्येषा शामलभट्टीया चतुष्पदी स्मृतिपथमगात् ।।'' मदीया बालबुद्धिर्भवगद्गीता बुद्धचरितं कैस्तवचनानीत्येतेषां त्रयाणामप्येकतत्त्वप्रतिपादकत्वं ग्रहीतुमयतिष्ठ। त्याग एव सर्वोत्तमो धर्म इत्येतन्मम मनः सुतरामप्रीणयत् ।।

एतन्मध्ये नास्तिकतापरिचयस्य क्वचित्सम्पादनं कथं वा परिहरणीयम् । ब्रॅडलॉ महाशयस्य नामधेयं तदीयनास्तिकता च भारतीयस्य सर्वस्यापि विज्ञातचरो विषयः। एतद्विचार सम्बद्धमेकं पुस्तकमहमपठिषम् । तस्य नाम नाद्य स्मरामि। एतेन मे मनसि न कोऽपि जनितः परिणामः। यदहं तदानीं नास्तक्यमरुभूमिमतिक्रम्य स्थितः तदात्वे मिसिस्वेण्टमहाभागा परं प्रामुख्यमभजत। तया हि नास्तिकमतं परित्यज्य परिगृहीतमास्तिक्यम् । अत एव नास्तिकवादे मदीयमौदासीन्यं पूर्वापेक्षया बलीयः संवृत्तम् । 'कुतोऽहं ब्रह्मविद्याभिमानिनी जाता' इत्येत दाख्यस्तदीयः प्रबन्धः पूर्वमेव मयाध्यगायि।

एतत्कालमेव ब्रॅडलॉमहाशयः पञ्चत्वं गतः। स च वोकिंगश्मशानभूगर्भे समाधीयत। अहं च तत्र तदानीं गतोऽभवम् । लण्डननगरवर्ती भारतीयो जनः सर्वोऽपि तत्रागत इत्यहं प्रत्येमि। कतिपये मतोपदेशकाश्च स्वादरप्रदर्शनार्थं तत्र सन्निहिता आसन् । परावर्तमाना व्यमयोध्वनिकेतने धूमशकटीप्रतीक्षाः स्थिताः। तत्समाजवर्ती नास्तिकानामग्रेसर एकः केनचिन्मतोपदेशकेन विवदितुं प्रावर्तत।।

'स्वामिन् ननु भवानीश्वरस्यास्तित्वं प्रतिपादयति।'

'तथा हि' इत्येवं स साधुर्मृदूक्त्या प्रत्यवादीत्। स नास्तिकः स्वात्मविश्वासनिमित्तमन्दस्मितशोभी तं पुनरपृच्छत् - 'भुवः परिधिरष्टाविंशतिसहस्र-पाषाणानि। नन्विदं भवताङ्गीक्रियते' इति।।

[1] **श्रीमद्भगवद्गीता– 2/62–63.**

'अवश्यमेव।'

'तथा सति भवदीयस्येश्वरस्य किं परिमाणम् । स च कुत्र स्थितः कथ्यताम् ।'

'तत्त्वतो गृह्यमाणः स आवयोरुभयोरपि हृदये प्रतिवसति।'

'हन्त भोः पश्यत पश्यत। न खल्वहं बालडिम्भो मन्तव्यः' इति वदंत्स वीरयोधो विजयोत्साहेन विलसन्तीं दृष्टिमस्मासु व्यकिरत् ।

मतोपदेशको नम्रतापूर्वकं मौनमालम्बत। अनेन संवादेन नास्तिकवादे मम भूतपूर्वोऽनादरः सुतरामवर्धत।।

निर्बलानां बलं रामः —

यद्यपि हिन्दुधर्माणामैहिकानामितरधर्माणां च ज्ञानं क्वचिन्मया संपादितं तथाप्येतावदेव मामापद्भ्यो न तारयितुमलमिति मया बोद्धव्यमासीत् । कृच्छ्रपतितो हि मनुष्यः किमात्मनो रक्षकमिति नैव जानाति। तात्त्विकं तु ज्ञानं तस्य पूर्वमेव न विद्यते। नास्तिकस्तावदेव रक्षितश्चेदकस्मादहमुत्तीर्ण इति ब्रवीति। आस्तिकस्तु सदृशप्रसङ्गे भगवता रक्षितोऽस्मीति कथयति। एतच्च स्वधर्माध्ययनसंयमप्रभावेन हृदयान्तरीश्वराभिव्यक्तेः फलमिति निर्णयति। एवं निर्णेतुमयमधिकारी न भवतीति वक्तुं न शक्यते। किन्तु निस्तारसमये स्वरक्षकं किमात्मसंयम उतान्यद्वेति नायमवगच्छति। यस्य तु स्वसंयमेऽभिमानस्तस्य संयमो लोष्टनिर्विशेषं विध्वंसते। अनुभवोऽयमीदृशाभिमानिनः कस्य वा न जातः। इत्थमापत्काले धर्मज्ञानं (न तु तत्सम्बन्ध्यनुभवः) केवलं निस्सारमुपलक्ष्यते।।

केवलं धर्मज्ञानं निरर्थकमित्यनुभवो मया प्रथमं विदेशे प्रातः। ततः पूर्वं विपद्भ्यः कथमहं रक्षित इति न जानामि। तदानीं ह्यायमतीवं बाल्ये वयसि स्थितः। अद्य पुनर्न केवलमहं विंशति वर्षदेशीयोऽभवमपि तु गृहस्थाश्रमस्यानुभवोऽपि प्रायः सम्पादितोऽभूत्।।

यथाहमिदानीं स्मरामि तथा मम विदेशवासस्यान्तिमे वर्षे नवत्युत्तराष्टशताधिकैक सहस्रतमे क्रैस्तशकाब्दे पोर्टस्मिथनगरे शाकाहारिणां कूट एकोऽमिलत। तत्राहं ममैको भारतीयः सुहृच्चामन्त्रितौ। तत्रावामुभावप्यगच्छाव। 'पोर्टस्मिथ' नाम बहुभिर्नाविकैरध्युषितं समुद्रतीरोपनिविष्टं नगरम् । तत्र नीतिभ्रष्टानां स्त्रीणां गृहाणि बहूनि विद्यन्ते। ता एताः स्त्रियो न वेश्या न च गृहिण्यः। एवंविधे क्वचिद्गृहे वयं वसतिमग्राह्यामहि। गृहमेतदीदृशमिति स्वागतमण्डली न किलाभ्यजानात् । दिनद्वयस्थायिनामस्मादशामागन्तुकानां पोर्टस्मिथ सदृशे पत्तने किं गृहं वासतेयं किं नेति दुरवधार्यमासीत्।।

अथ रात्रिरागता। सभाकृत्यं समाप्य गृहमागच्छाव। भुक्तोत्तरं छंदक्रीडार्थमुपाविशाव। गृहस्वामिन्यपि क्रीडायाममिलत। विदेशे कुलीनगृहेष्वपि सम्प्रदायतः स्त्रीजनः पुरुषगोष्ठीं प्रविश्य क्रीडते। क्रीडनावसरे निर्दोषकथाविनोदश्च प्रचलति। किन्त्वस्मिन्गृहे गृह।

दक्षिणाफ्रिकाप्रस्थानसज्जीकरणम् —

मया तदाधिककार्युपसर्पणं सर्वथा दोष एव। परन्तु तदीयाग्रहक्रोधगर्वानपेक्ष्य मदीयोऽपराधस्तावदत्यल्प आसीत् । न खल्वयं बहिर्निष्कालनमारसीत्। पञ्चनिमिषाधिः कालस्तदीयो मया न क्षपितः। तथापि मद्वचनोपन्यास एव तस्य दुस्सहोऽभवत् । गम्यतामिति सभ्यरीत्या वक्तव्यमुचितमासीत् । किन्तु तस्याधिकारदर्पोऽत्यारूढ स्थितः। क्षमायास्तस्मिन्नामापि न श्रूयते स्मेति पश्चादवगतोऽस्मि। स्वपार्श्वमुपागतानां यदवहेलनं तत्किल तस्य साधारणे विषयः। अणुमात्रविपर्ययेणाप्यसौ रोषेण ज्वलति स्म।।

प्रायेण मम कार्याणां भूयिष्ठोंऽशस्तदीयन्यायसभायामेव परीक्षणीयोऽभवत् । न्यायतस्तस्याधिकारिणः समाधानकरणं ममाशक्यमासीत् । तस्य प्रसादनाय नीचैः प्रहृताश्रयणं न मेऽभिममासीत् । किं बहुना। व्यवहारेण त्वामभियोक्ष्य इति प्रथममेनं भीषयित्वा पश्चात्तूष्णीमासिका न मे समञ्जसा प्रत्यभासीत्।।

तदानीं पोरबन्दरसंस्थानमाङ्ग्लसाम्राज्येन नियमितस्याधिकारिणः शासने स्थितम्। तत्रत्यपराणाप्रभोरधिकारवृद्धये मयः प्रयत्नः करणीय आपतितः। मेराख्येभ्यस्तत्रत्यकृषीक्लेभ्योऽत्यधिकः करो गृह्यते स्म। अस्मिन्विषयेऽपि मया (एडमिनिस्ट्रेटर इत्येतदाख्यः) शास्तिकर्ता द्रव्यव्येऽभवत् । सोऽधिकारी देशीयोप्याङ्गलाधिकारिणं दर्पतोऽतिशयान इवालक्ष्यत। स च स्वकार्ये विचक्षणः परन्तु तदीयकार्यकौशलात् कृषकाणां न कोऽपि लाभः समजनि। राणाप्रभोरधिकारस्य क्वचिद्वृद्धिप्रापणे मम प्रयत्नः सफलोऽभवत् । किन्तु कर्षकसार्थस्य भारो न लघूकृतः तदीयकष्टविचारो यथावदधिकारिणा न पर्यशोधीति मन्ये। अत्रान्तरे पोरबन्दरवर्ती वणिक्सार्थ एको मदग्रजस्य पत्रमेवं व्यलिखत् —

''वयं दक्षिणाफ्रिकादेशे वाणिज्यकर्तारः। अस्मदीयो व्यापारः परमार्जितो भवति। तत्रास्मकमेको महाव्यवहारः प्रवर्तते। चत्वारिंशत्सहस्रसुवर्णमुद्रासाध्यकोऽयं व्यवहारस्तत्रत्यन्यायसभायां प्रवेशितोऽस्माभिः। स च बहुभिर्दिनैः प्रचलति परमघटका न्यायवादिनो व्यारिस्ट जनाश्च तदर्थेऽस्माभिः स्थापिता भवन्ति। भवदीयमनुजं यदि भवन्तः प्रेषयेयुस्तदा नस्तेन बहूपकृतं स्यात् । सोऽप्यानुकूल्यमाप्स्यति। स खल्वस्मदपेक्षया व्यवहारसम्बद्धान्विषयानस्मदीयन्यायवादिभ्यः स्पष्टतरं व्याख्यायात्। क चास्य नवीनदेशदर्शनं च सेत्सयति नूतनपरिचयश्च सम्पत्स्यत इति।।

अस्य कृते मदग्रजो मया साकममन्त्रयत। प्रस्तुतोऽर्थो न हि मया स्पष्टमबोधि। व्यवहारमधिकृत्य न्यायवादिषु विषयनिरूपणमात्रं

मया कर्तव्यमुताहो न्यायसभापि मयोपस्थातव्येत्यहं नाज्ञासिषम् । तथापि गमनोत्साहो मामग्रहीत् ।

'दादा' अबदुल्ला-वाणिज्यशालाव्यवस्थापकानामेकतमं शेठ-अबदुल-करीम-झवेरीमहाशयं मदग्रजो मां पर्यचाययत् । स च श्रेष्ठी मह्यमित्थं न्यवेदयद्यथा—

'भवद्भिस्तावदतिश्रमो न वोढव्यो भवति। सन्ति नः सुहृदो महान्त ऐरोप्यजनाः। तैः सहापि परिचयो वः सम्पत्स्यते। अस्मद्विपणिकार्येऽपि साहाय्यं कर्तुं भवतामवकाशो भविष्यति। अस्मदीयलेख्यपत्राणां भूयिष्ठो भाग आङ्ग्ल्भाषामयो वर्तते। तत्सम्बद्धकार्येष्वस्माकं भवद्भिरुपनिबद्धं कर्तुं शक्यते। युष्मन्निवासायास्मदीयमर्म्यान्तर एव वसतिः परिकल्प्यते। तस्माद्वसतिनिर्मितव्ययभारो युष्मदुपरि न पतिष्यतीति।।

अथाहमपच्छम —

'कियन्ति दिनानि मया वः सेवा कर्तव्या। कियद्वेतनं मे प्रदीयत इति।'

''समयस्तावदेकवत्सरं नातिवर्तेत्। युष्मदीयगतागतस्य प्रथमश्रेणीभाटिका प्रदीयते। किञ्च भोजनोपहारव्ययेन सह पञ्चोत्तरशतं सुवर्णमुद्राश्च प्रदीयन्ते।''

तदेतदुद्दिष्टं मदीयगमनं न खलु न्यायवादिकार्यार्थमिति वक्तुं शक्येत। तद्धि केवलं तदीयविपण्यां भृत्यत्वस्वीकारार्थमेवेति स्पष्टम्। परं तु यथा कथा वा हिन्दुस्तानाद्बहिर्गन्तुमिच्छा मां नुदति स्म। गमनान्न केवलं नवीनदेशदर्शनं नवनवानुभवश्च सिध्यतः परन्तु मदग्रजस्य कुटुम्बव्ययार्थे पञ्चोत्तरशतं सुवर्णमुद्राः प्रेषयितुं शक्यं भविष्यति। तस्मात्किञ्चिदप्यविब्रुवंस्तदुक्तवेतनेन तदीयकार्यमनुष्ठातुं प्रतिपद्य दक्षिणाफ्रिकादेशं प्रति प्रस्थातुं सज्जोऽभवम्।

आत्मज्ञानमीश्वरसाक्षात्कारं मोक्षं च लक्ष्मीकृत्य तत्साधनायैतस्त्रिंशद्वत्सरेभ्यः प्रभृति प्रयतमानः स्थितोऽस्मि। मम स्थितिर्मतिर्जीवितं चेत्येतत्सर्वमप्येतदर्थमेव। मया क्रियमाणानां कथापलेखनराजकीयप्रयत्नानां च लक्ष्यमप्येतदेव। एकपुरुषेण यत्साधितं तत्सर्वेषामपि शक्यसाधनमिति मम सार्वदिकः प्रत्ययः। अत एव मम साधनानि सर्वलोकप्रत्यक्षतयानुष्ठीयन्ते न त निभृतम। अनेन हेतुना तेषामाध्यात्मिकत्वस्य न कापि हानिरिति प्रत्येमि। केचिदर्थाः सृष्टस्रष्टृमात्रसंवेद्या भवन्ति। परावबोधनं पुनरशक्यमेव। मया तु वक्ष्यमाणानि साधनानि न ह्येवंविधानि। तानि नैतिकविचारसम्बद्धतया किलाध्यात्मिकानीत्युपचर्यन्ते। नीतिरेव हि जीवातुर्धर्मस्य।

परं सिद्धान्तांस्तत्त्वानि वा यद्यहं जिज्ञासितुकामोऽभविष्यं तदा स्वात्मकथालेखनप्रयत्नं नैवाकरिष्यम्। वस्तुतस्तु तत्प्रमाणमेवाङ्गीकृत्य मया यद्यदाचरितं तस्योपनिबन्धनमात्रेऽद्यप्रवृतोऽस्मि। अत एवास्य सत्यशोधनमित्याख्या व्यधायि। सत्यभिन्नतया प्रतीयमानानामहिंसाब्रह्मचर्यादीनामपि साधनविचारोऽत्र निरूप्यते। सत्यं हि सर्वव्यापि इति मे प्रत्ययः। अत्र ह्यसङ्ख्यातानि तत्वान्यन्तर्भवन्ति। सत्यं नाम न केवलं वाङ्मयमेव। यथेदं वाङ्मयं तथा मनोमयं च । तथाप्येतन्न काल्पनिकं परं स्वतन्त्रं चिरस्थायि च इत्थं च सत्यं नामेश्वरस्वरूपमेव। ईश्वरविभूतीनामसंख्यातत्वादीश्वरशब्दस्य व्याख्यानान्यप्यसंख्यानि भवन्ति। एतानि मामाश्चर्यचकितं कुर्वन्ति। क्षणमात्रं बुद्धिं व्यामोहयन्ति। किन्त्वहं सत्यमूर्तेरीश्वरस्योपासकोऽस्मि। स एव सत्यस्वरूपः शिष्टाखिलं मिथ्या स तु नाद्यापि मया साक्षात्कृतः। तदर्थमेव नैरन्तर्येण शोधनपरायणोऽस्मि। तत्प्राप्तये ममात्यन्तप्रियाण्यपि वस्तूनि परित्यक्त सज्जास्थितोऽस्मि। एतत्साधनयज्ञे मच्छरीरमप्याहुतीकर्तुं न विकल्पिष्ये। एवं हि मे श्रद्धा। तथापि यावदस्य स्वतन्त्रस्य चिरस्थायिनः सत्यस्य साक्षात्कारो मे न जातस्तावदन्तरात्मना सत्यत्वेनाद्य परिगृहीतं काल्पनिकं सत्यमेव प्रमाणतयाङ्गीकृत्य तदेव मार्गदर्शकं प्रवृत्त्याश्रयभूतं च विधाय जीवनयात्रा निर्वहणीया भवति। एषा सरणिरसिधारेव निशितङ्कटापि मदनुभवे सुलभ च शीघ्रफला च दृष्टा। एनं मार्गं नियतमवलम्ब्य प्रवर्तमानस्य मे दोषा हिमालयस्थूला अप्यणु मात्रतया प्रत्यभासन्त। अयं मार्गः सम्भविभ्यो महद्भयः सङ्कटेभ्यो मामरक्षीत् । अपि च मे प्रयाणं बहुशः सुकरमचीकल्पत् । अस्मिन्मार्गे तस्य विशुद्धसत्यस्य प्रभामयूखा दूरदूरे मया प्रत्यक्षीकृताः। ईश्वरस्तावदेक एव जगति सत्यं तदन्यदखिलमप्यसत्यमिति श्रद्धा मे मनसि दिने दिने दार्ढ्यमापद्यते। कथमियं श्रद्धा मयि स्थैर्यमापन्नेति जिज्ञासवोऽवगच्छन्तु। मदीयसाधनानामपि च मे दृढप्रत्ययानाममी भागिनो भवन्तु। यद्यन्मया साधितं तत्तद्बालापत्यस्यापि शक्यसाधनमिति प्रत्ययो मे प्रतिदिनं दृढीभवति। ईदृग्विश्वासदार्ढ्यस्य प्रबलाः सन्ति हेतवः। सत्यशोधनस्य साधनानि यथा कठिनानि प्रतिभान्ति तथा सरलान्यपि भवन्ति। अहङ्कारिणः पुरुषस्य यदसाध्यमिव प्रतीयेत तदेव बालकस्य सर्वथा शक्यं भवेत। सत्यशोधकेन रजः कणादप्यधिकनम्रतासम्पन्नेन भवितव्यम्। लोकः किल रजःकणं पादेनाहन्ति। तस्यापि कणस्य स्वयमधोवर्ती पादाहतियोग्योऽहमल्प इति सत्यशोधको यावन्न जानाति तावदस्योपरि स्वतन्त्रसत्यस्य प्रकाशो नायिर्भूवति। इदं वसिष्ठविश्वामित्रयोः संवादे स्पष्टम्। क्रैस्तमत धर्म इस्लाममतं च वाक्यमेतत्समर्थयतः।।

यदि मदीयलेखनेषु यत्र क्रापि मे स्वाभिमानग्रहः पाठकानां प्रतिभासेत तदा नूनमवबोद्धव्यं यदस्य शोधनक्रमे किमप्यसाधु विद्यते। अनेन यत्प्रत्यक्षीकृतं स मृगतृष्णिका न तु प्रकाश इति। प्रणश्यन्तु नाम परश्शतामादृशाः। सत्यं पुनर्विजयताम्। मद्विधानामल्पात्मनां योग्यतां परिशीलयद्भिर्मा खलु सत्यप्रमाणमणुमात्रमपि न्यूनीकृतं भूत्।

अधस्तनाध्यायेषु प्रकीर्णाः सूचनाः प्रमाणत्वेन न कोऽप्यङ्गीकरोत्वित्याशास्यते। तथा च नाङ्गीकर्तव्यमिति मे प्रार्थना। अत्र वर्णितानि साधनानि दृष्टान्ततया परिगृह्य सर्वोऽपि स्वशक्ति बुद्ध्यनुरोधेन स्वेच्छा स्वीकर्तुमर्हति। एतावन्मात्रेणैव मदात्मकथार्थवत्सामग्रीकल्पत इति प्रत्येमि। तथा हि कथनीयां रोष्वाभासकरमिति न किञ्चिभिन्नमूह्यते न वा मन्दमुपवर्ण्यते। मम दोषापराधसर्वस्वं पाठकानां परिचयविषयीक्रियते। सत्याग्रहस्य शास्त्रीयप्रयोगवर्णनमेव ममोद्देश्यम्। मदीयसौगुण्यख्यातिलोभस्तावल्लेशतोऽपि मे नास्ति। मद्योग्यतापरितोलनायां सत्यमिव निर्दाक्षिण्यवृत्तिर्भवितुं यतिष्ये। अन्यैरप्येवं वर्तितव्यमिति मदाशयः। एवंविधपरिमाणेनात्मानं परिमाय निरूपयमाणेन मयापि श्रीसूरदासोक्तीत्या वचनमित्थुमुपन्यसनीयं स्याद्यथा—

''क्व मत्समः कुटिलखलाभिको भवे-

त्तनुप्रदं परिजहदुद्धतो जनः''॥ इति॥[2]

सम्यगहं जाने यदीश्वरो मे जन्मदाता प्रतिश्वासं च तच्चैतन्यमनुगतमस्तीति। तथाप्यस्मादेवं यवीयसी मम स्थितिर्निरन्तरं मे हृदयं कृन्ततीव। तत्तादृशस्थितेर्मम मनोविकारा एव निदानमित्यवगच्छामि। अथापि तान् दूरीकर्तुं न पारये।

●

[2] सत्यशोधनम्– पं.हो॰ना॰शास्त्री, नवदेहलीम्, 2009.

PENOLOGICAL PURPOSE OF PUNISHMENT: A GANDHIAN PERSPECTIVE

PROF. BIBHA TRIPATHI*

Penology is the study of making of punishment, application of punishment and effects of application of punishment. The history of penology is as old as our civilization. From the ancient illiterate society to the modern literate society the forms of punishment are continuously changing with an aim to achieve the very goal and objective of punishment.

Punishment has a penological purpose. Reformation, retribution, prevention, and deterrence are some of the major objectives in that regard. Punishment is the collective conscience of the people. The whole development of penology, leads towards justification of punishment. The journey of punishment through the ages travelled from punitive to purposive punishment. We can also discern the journey from reaction to reformation. It has also been observed that if punishment is given for the sake of punishment, without any justification than it shall not serve any purpose.

Primarily it is to be borne in mind that sentencing for any offence has a social goal. Sentence is to be imposed according to the nature of the offence and the manner in which the offence has been committed. The fundamental purpose of imposition of sentence is based on the principle that the accused must realise that the crime committed by him has not only created a dent in his life but also a concavity in the social fabric. The purpose of just punishment is designed so that the individuals in the society which ultimately constitute the collective do not suffer time and again for such crimes. It serves as a deterrent. True it is, on certain occasions, opportunities may be granted to the convict for reforming himself but it is equally true that the principle of proportionality between an offence committed and the penalty imposed are to be kept in view. While carrying out this complex exercise, it is obligatory on the part of the Court to see the impact of the offence on the society as a whole and its ramifications on the immediate collective as well as its repercussions on the victim.[i]

Justified punishment may not always be harsh. As Malimath Committee was also not in favour of prescribing death penalty for the offence of rape. Instead the Committee recommends sentence of imprisonment for life without commutation or remission[ii].

In Shailesh Jasvantbhai and another v. State of Gujarat and others[iii], the Court has observed thus:

"Friedman in his Law in Changing Society stated that: "State of criminal law continues to be - as it should be -a decisive reflection of social consciousness of society." Therefore, in operating the sentencing system, law should adopt the corrective machinery or deterrence based on factual matrix. By deft modulation, sentencing process be stern where it should be, and tempered with mercy where it warrants to be. The facts and given circumstances in each case, the nature of the crime, the manner in which it was planned and committed, the motive for commission of the crime, the conduct of the accused, the nature of weapons used and all other attending circumstances are relevant facts which would enter into the area of consideration".

In State of M.P. v. Babulal[iv] it was observed that: -

Punishment is the sanction imposed on the offender for the infringement of law committed by him. Once a person is tried for commission of an offence and found guilty by a competent court, it is the duty of the court to impose on him such sentence as is prescribed by law. The award of sentence is consequential on and incidental to conviction. The law does not envisage a person being convicted for an offence without a sentence being imposed therefore.

The object of punishment has been succinctly stated in Halsbury's Laws of England, (4th Edition: Vol.II: para 482) thus:

"The aims of punishment are now considered to be retribution, justice, deterrence, reformation and protection and modern sentencing policy reflects a combination of several or all of these aims. The retributive element is intended to show public

*Professor, Faculty of Law, Banaras Hindu University

revulsion to the offence and to punish the offender for his wrong conduct. The concept of justice as an aim of punishment means both that the punishment should fit the offence and also that like offences should receive similar punishments. An increasingly important aspect of punishment is deterrence and sentences are aimed at deterring not only the actual offender from further offences but also potential offenders from breaking the law. The importance of reformation of the offender is shown by the growing emphasis laid upon it by much modern legislation, but judicial opinion towards this particular aim is varied and rehabilitation will not usually be accorded precedence over deterrence. The main aim of punishment in judicial thought, however, is still the protection of society and the other objects frequently receive only secondary consideration when sentences are being decided".

(emphasis supplied)"

In Gopal Singh v. State of Uttarakhand[v], while dealing with the philosophy of just punishment which is the collective cry of the society, a two-Judge Bench has stated that just punishment would be dependent on the facts of the case and rationalised judicial discretion. Neither the personal perception of a Judge nor self- adhered moralistic vision nor hypothetical apprehensions should be allowed to have any play. For every offence, a drastic measure cannot be thought of. Similarly, an offender cannot be allowed to be treated with leniency solely on the ground of discretion vested in a Court. The real requisite is to weigh the circumstances in which the crime has been committed and other concomitant factors.

If it has mandated a minimum sentence for certain offences, the Government being its delegate, cannot interfere with the same in exercise of their power for remission or commutation. Neither Section 432 nor Section 433 of Code of Criminal Procedure hence contains a non-obstante provision. Therefore, the minimum sentence provided for any offence cannot be and shall not be remitted or commuted by the Government in exercise of their power under Section 432 or 433 of the Code of Criminal Procedure. Wherever the Indian Penal Code or such penal statutes have provided for a minimum sentence for any offence, to that extent, the power of remission or commutation has to be read as restricted; otherwise the whole purpose of punishment will be defeated and it will be a mockery on sentencing.

Gandhian perspective of punishment

Mahatma Gandhi the great visionary has been oft quoted by the thinkers, philosophers, jurists and judges while discussing law[vi], legal philosophy punishment and its justification. Gandhiji's vision on peace and non violence is also worth noticeable to understand his vision on punishment[vii].

Peacemaking Criminology is considered as a future direction of criminology. It advances the notion that social control agencies and the citizens they serve should work together to alleviate social problems and human sufferings and thus reduce crime. Peacemaking Criminology which includes the notion of service has also been called "compassionate criminology" and suggests that "compassion, wisdom and love are essential for understanding the suffering of which we are all a part and for practicing criminology of nonviolence."

Peacemaking criminology is a non-violent movement against oppression, social injustice and violence as found within criminology, criminal justice and society in general. According to Conklin, "[peacemaking criminology] regards crime as the product of a social structure that puts some groups at a disadvantage, sets people against one another, and generates a desire for revenge.[viii]"

There are two major questions before the peace seekers, first, how to stop crime and second, how to maintain peace?[ix]

The principles of peacemaking criminology are as follows:

1) Crime is suffering, and crime can only be ended through the elimination of suffering.

2) Crime and suffering can only be ended through the achievement of peace.

3) Human transformation will achieve peace and justice.

4) Human transformation will occur if we change our social, economic and political structure.

5) The current criminal justice system is a failure because it is rooted in the same problem it wants to eliminate i.e; violence.

Moreover, peacemaking criminology argues that the state itself perpetuates crime and violence through harsh policies of social control such as death penalty, lengthy prison sentences for offenders and the criminalization of non –violent drug offenders.

John fuller's peacemaking pyramid includes the following:

1) Non violence
2) Social justice
3) Inclusion
4) Correct means
5) Ascertainable criteria
6) Categorical imperative

To end crime and sufferings they suggest for community connectedness, conflict resolution, rehabilitation, and reform in education system, purity of mind, art of forgiveness and ultimately opting for restorative justice.

Gandhian perspective of reformation

Gandhiji was the strong follower of reformative theory of punishment. His principles of reformation was applied not only on the criminals but also on the criminal justice system and society as a whole. He used to say that "hate the sin not the sinner", meaning thereby he opined that the criminal is not responsible solely for his acts rather the society by way of creating and generating criminogenic influences for the commission of crime.

He also used to say that crime is the outcome of a deceased mind and jail must have an environment of hospital for treatment. In this way he advocated for prison reform. Gandhiji was never in favor of death sentence or retributive theory of punishment. He used to say that "an eye for an eye will make the whole world blind".

He was in favor of Restorative justice. Restorative justice is meant to restore the victim, the community and the offender too. Therefore, the criminal justice system should move away from criminal justice system to restorative justice which is balanced and remedial.

The western thinkers and philosophers have not only understood the significance of non violence of gandhiji but also propounded newer concepts like peacemaking criminology to make it more relevant than even the times of Gandhi. It is a high time for the whole universe and its civilization to accept these principles as an ideal.

Conclusion

In the end we can submit that realization of guilt is the crux of punishment. The moment a person realizes the wrong committed by him and the loss occurred to the society in general and the individual in particular, the goal of punishment is achieved. Therefore, the criminal justice system must follow the gandhiyan perspective of punishment in relevant cases. This can be a noble way of offering tribute to him on his 150th birth anniversary.

References

I. Shyam Narain v. NCT Delhi, AIR 2013 SC 2209, J. Dipak Mishra

II. Malimath Committee Report on Reforms of Criminal Justice System,2003, at 291-92

III. (2006) 2 SCC 359

IV. AIR 2008 SC 582

V. 2013 (2) SCALE 533

VI. for gandhi the institution of law is only an external institution to settle the dispute but the ultimate aim is to change the heart. thus, for family and community feeling we have to extend our love and trust and forgiveness to farther domains. the modern legal system has done little to develop and mobilise man's moral sensibilities and capacities for reflection and introspection. instead, it requires him to transfer them to a central agency telling him how to run his life and conduct his relations with others, including his own neighbours, wife, ex-wife and children.(upasana pandey, mahatma gandhi and modern civilisationmainstream, vol xlviii, no 41, october 2, 2010)

VII. Gandhiji used to say that "non-violence is the greatest force at the disposal of mankind. It is mightier than the mightiest weapon of destruction devised by the ingenuity of man". It is an honest belief that if humankind can only pledge ahimsa as a universal principle, there would be an amazingly wonderful planet. Intellect and creativity – the two unique characterstics of man, can fructify and achieve some worthwhile goal only and only on the basis of ahimsa. In brief, ahimsa is an essential precondition for existence, development and achieving a goal. This reality itself categorically reveals the importance and significance of it. Of course there will be conflict and dissatisfaction, but these can be ironed out through negotiations and peaceful means. No violence, no destruction. With ahimsa gandhiji showed an adaptable and unique way to restore justice, freedom and equality on the basis of this connection, remains unprecedented in the annals of human

history. These principles of peacemaking have certainly inspired Harold Pepinsky and Richard Quinnney to develop the concept of peacemaking criminology.

VIII. CONKLIN, JOHN E. (2007). Criminology (10th ed.). Boston: Pearson, Allyn and Bacon. p. 5.3.2.1

IX. Richard Quinney, *"Life of Crime: Criminology and Public Policy as peacemaking"*, Journal of crime and justice, Vol.16, No.2 (1993) pp3-9 cited in, Frank Schmalleger, Criminology Today, chapter 14, Future Directions in Criminology, 556-591 at p 573, second edn,1999, New jersy.

●

NEED OF THE CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY ON THE LINE OF MAHATMA GANDHI

DR. ANUP KUMAR MISHRA*

Any attempt to talk and trace now days about Gandhi is a great challenge. Especially in the era of globalization and in stage of modern governance system playing the role of Gandhi is a risk bearing effort. But the result of globalization and the governance of many states automatically recall Gandhi and the world is admiring the role of Gandhian thought in the modern era. Amidst the great thinkers of recent past, the name of Gandhi, the father of our nation, shines with a peculiar luster his vision was too wide to concentrate exclusively on political economics[12] and at the same time, too comprehensive to rejected it. His economic political thought formed an integral part office general philosophy of life[14]. He recognized economics as one of the decisive forces of human life. His spiritual beliefs and basic commitment to ethical values provided the foundations for his economics, social and political thought. "Economics, for Gandhi, to worth anything must be capable being reduced to terms of religion or spirituality …….. the economics is untrue which ignores or decreases moral values"[4]. Unlike many earlier Indian economics – political thinkers, Gandhi repudiated many of the concepts and tents of western political economics and developed his own and that too not in the isolation of the ideas unrelated to the problems of life of their effective solutions. Now Gandhian view has rightly come to be regarded in the whole world as a distinct, original and exclusive development in Indian Political economics thought. The effort of the present paper is to highlight the current situation of global and Indian economic situation in the era of the globalization and focus on the need of social corporate responsibility (CSR) on the line of Gandhi's trusteeship model.

Nearly three decades has been passed with the term globalization as common usages. The period of nineteen years is sufficient to analyze the trend of the globalization. The result is in front of us, verified itself by the satisfied records of the United Nations publications. The aim of the globalization in not being fulfilled due to the rigid and biased nature of the rich and developed nations. Instead of a 'global village' globalization resulted more regional groupings. Instead of prosperity in increased poverty. Instead of creating job it threatened the job opportunities, instead of bridging the gap between rich and poor it widened the gap. Instead of elimination the chronic diseases it increases the contagious diseases (AIDS, Hepatitis etc), Instead of maintain peace in creates more wars, instead of spreading social justice it speeded social conflicts instead of establishing sustainable development it disturbed the environmental balance, instead of respecting cultural values and traditions, it started patenting and crushing the values and instead of sharing power it imposes super power blocks.

These are the concerning areas by which 'globalization' become so controversial and Gandhi become so relevant.

Factual Scene

The great hope from the globalization was the technological progress achieved by the developed countries will be available to the under privileged countries for improving in well being of their citizens. But that not to happen, on the other hand, the economics gap between the developed and developing continued to widen. Poverty, poor health, low life expectancy and on unequal distribution of income and wealth are endemic throughout the world. This fact is well vindicated by the documentary support provided by the UNDP Human development reports. The HDR highlight that the top three billionaires in the world have now assets greater than the combined gross national products of all the 48 least developed countries and their 600 million people. The world's richest people raised their net worth from US $400 billion in 1998 or two and half times in just four years [6]. Unfortunately in the same period over 80 countries have fallen below what they had as-per-capita incomes only a decade ago. A glance at the widening income gaps between the rich and the poor countries will reveal the shocking facts that the income ratio between the richest and poorest countries which was about 3:1 in 1820, 11:1 in 1913, 35:1 in 1950, 44:1 in 1973, 72:1 in 1992, 74:1 in 1997 and 80:1 in 2005 (WDR, 2007/2008). The growing concentration of the world's

*Associate Professor in Economics, DAV PG College (BHU), Varanasi

wealth has been highlighted by a report showing that the 26 richest billionaires own as many assets as the 3.8 billion people who make up the poorest half of the planet's population.

In an annual wealth check released to mark the start of the World Economic Forum in Davos, the development charity **Oxfam** said 2018 had been a year in which the rich had grown richer and the poor poorer. It said the widening gap was hindering the fight against poverty, adding that a wealth tax on the 1 percent would raise an estimated $418bn (£325bn) a year – enough to educate every child not in school and provide healthcare that would prevent 3 million deaths. Oxfam said the wealth of more than 2,200 billionaires across the globe had increased by $900bn in 2018 – or $2.5bn a day. The 12 percent increase in the wealth of the very richest contrasted with a fall of 11 percent in the wealth of the poorest half of the world's population. As a result, the report concluded, the number of billionaires owning as much wealth as half the world's population **fell from 43 in 2017** to 26 last year. In 2016 the number was 61 The World **Inequality** Report 2018 – co-authored by Piketty – showed that between 1980 and 2016 the poorest 50 percent of humanity only captured 12 cents in every dollar of global income growth. By contrast, the top 1 percent captured 27 cents of every dollar.

The above facts automatically force us to remember the concept of equality of Mahatma Gandhi.

Poverty and Hunger

Poverty, unemployment and low productivity employment are of the highest concern to many developing countries including India, in the present globalization era. In the economics in transition, poverty and hunger have emerged as significant problems as these countries change from onset of institutional arrangement to another. In South Asia 30 percent of the babies and born underweight. Although child mortality rates continues to be high (200 per 1000 live births). Female mortality is particularly high. The world has object poverty amid plenty. Of the world's six billion people 2.8 billion – almost – half – live on less than $2 a day and 1.2 billion – a fifth – live on less $1 a day, in which 44 percent are living in south Asia. Whereas rich countries like European Union and Japan spend $2.5 and $7.0 a day for a cow, respectively.

In rich countries less than 1 child in 100 dies not reaches its fifth birthday. Wherein the poorest countries as many as fifth of the children do no. And while in rich countries fewer than 5 percent of all children under five are malnourished, in poor countries as many as 50 percent are malnourished[16].

New evidence continues to signal that the number of hungry people in the world is growing, reaching 821 million in 2017 or one in every nine people, according to the State of Food Security and Nutrition in the World 2018. Limited progress is also being made in addressing the multiple forms of malnutrition, ranging from child stunting to adult obesity, putting the health of hundreds of millions of people at risk.

Hunger has been on the rise over the past three years, returning to levels from a decade ago. This reversal in progress sends a clear warning that more must be done and urgently if the Sustainable Development Goal of Zero Hunger is to be achieved by 2030. The annual UN report found that climate variability affecting rainfall patterns and agricultural seasons, and climate extremes such as droughts and floods, are among the key drivers behind the rise in hunger, together with conflict and economic slowdowns.[12]

Consumption pattern

It is instructive to have a look at the consumption disparities in the beginning of the 21st century. In the globalised world 20 percent of the world's richest people account for 86 percent of the total private consumption expenditure, the poorest 20 percent consume only 1.3 percent. The richest fifth consume 45 percent of all meat and fish, the poorest fifth consume only 5 percent of same. In energy consumption the richest fifth have the lion's share of 58 percent, the poorest fifth are left with less than 4 percent.[13] Viewing the above fact we admire the Gandhian perception of consumption. We find an entirely different approach which stresses on minimizing of wants and relates this principle to some of the major issues and concerns in development economics and policies.

Gandhi put forth the golden principle of "minimization of wants and/or consumption" and found that resources are "abundant enough" to satisfy the needs of all in a comfortable way. Instead of maximizing utility, consumers have to set their goal to satisfy their needs.

Present Global Economic Situation

While globalization has created unprecedented

opportunity for some, others have been left behind. There are still around 1 billion people living at the margins of survival on less than US $ 1 a day, with 2.6 billion – 40 percent of the world's population- living on less than US $ 2 a day. Around 28 per cent of all children in developing countries are estimated to be underweight or stunted. If India's high economic growth is unequivocal good news, the bad news is that this has not been translated into accelerated progress in cutting under-nutrition. One-half of all rural children are underweight for their age. Progress on child mortality lags behind progress in other areas. Around 10 million children die each year before the age of 5, the vast majority from poverty and malnutrition.

Infectious diseases continue to blight the lines of the poor across the World. An estimated 40 million people are living with HIV/AIDS, with 3 million deaths in 2004. Every year there are 350-500 million cases of malaria, with 1 million fatalities. Africa accounts for 90 percent of malarial deaths and African children account for over 80 percent of malaria victims worldwide.

These deficits in human development draw attention to deep inequalities across the world. The 40 percent of the world's population living on less than US$2 a day accounts for 5 percent of global income. The richest 20 percent accounts for three quarters of world income. Income inequality is also rising within countries. Income distribution influences the rate at which economic growth translates into poverty reduction. More than 80 percent of the world's population lives in countries where income differentials are widening. Skewed income distribution intersects with wider inequalities. Child death rates among the poorest one-fifth in the developing world are falling at half the average rate for the richest, reflecting deep disparities between rural and urban population remain substantial. Rural areas account for three in every four people living on less than US$1 a day and a similar share of the world population suffering from malnutrition. However urbanization is not synonymous with human progress. Urban slum growth is outpacing urban growth by a wide margin.

Global growth is expected to remain at 3.0 per cent in 2019 and 2020, however, the steady pace of expansion in the global economy masks an increase in downside risks that could potentially exacerbate development challenges in many parts of the world, according to the World Economic Situation and Prospects 2019. The global economy is facing a confluence of risks, which could severely disrupt economic activity and inflict significant damage on longer-term development prospects. These risks include an escalation of trade disputes, an abrupt tightening of global financial conditions, and intensifying climate risks. In many developed countries, growth rates have risen close to their potential, while unemployment rates have dropped to historical lows. Among the developing economies, the East and South Asia regions remain on a relatively strong growth trajectory, amid robust domestic demand conditions. Beneath the strong global headline figures, however, economic progress has been highly uneven across regions. Despite an improvement in growth prospects at the global level, several large developing countries saw a decline in per capita income in 2018. Even among the economies that are experiencing strong per capita income growth, economic activity is often driven by core industrial and urban regions, leaving peripheral and rural areas behind. While economic activity in the commodity-exporting countries, notably fuel exporters, is gradually recovering, growth remains susceptible to volatile commodity prices. For these economies, the sharp drop in global commodity prices in 2014/15 has continued to weigh on fiscal and external balances, while leaving a legacy of higher levels of debt.[20]

Realizing the above facts, now we can say that Gandhian ideas successfully expose the inherent weaknesses of the conventional approach and its irrelevance to the basic problems of mass poverty, hunger and unemployment in the major parts of the world where intolerable international disparities rationalized by economic theory are made to coexist with growth of GNP in an iniquitous socio-economic system maintained by the brute force of the class-dominated states.

India's Position

In India too, the growth has not benefited all sections of population. High rate of per capita income growth with very little reduction in poverty is itself a sufficient proof of the inequities character of growth. Some recent estimates[5] and[2] show that Gini coefficient of consumption expenditure has increased substantially both in rural and urban areas during 1993-94/2004-2005. According to estimates made by Asian Development Bank , Gini coefficient which was 0.326 in 1993 and rose to 0.368 in 2004. The ratio of income of the top 20 percent to that of the bottom 20 percent increased from 4.9 to 5.5.[1] Does it mean that

growth has not 'trickled down' to the sizeable group of population? In fact, the notion of 'trickle down' does not seem to be a relevant now days and hence the term 'inclusive growth' has been recognized in India in the latest government economic policies.

During the Tenth Plan period (2002-2007), the overall economy has growth at 7.8 percent, but the growth rate of agricultural sector has been only around 2.0 percent 9 at present it is negetive0. And agriculture still employs 55 percent workers and is the major source of livelihood for almost 60 percent of population. Industry and service sectors which have experienced much faster growth at around 9 and 10 percent have not been able to draw many people away from agriculture in their employment and provide them the opportunity for raising their levels of living. As a result of the slow growth of agriculture, the large masses of rural population have remained insulated from the benefits of the high aggregate growth of the economy. Their exclusion has been further reinforced by the fact that urban-centered and high technology-based subsectors in industry and services have been the main engines of recent growth.[9]

Despite softer growth, the Indian economy remains one of the fastest growing and possibly the least affected by global turmoil. In fact, the effects of the aforementioned external shocks were contained in part by India's strong macroeconomic fundamentals and policy changes (including amendments to the policy/code related to insolvency and bankruptcy, bank recapitalization, and foreign direct investment).

The Indian economy is likely to sustain the rebound in FY 2018–19—growth is projected to be in the 7.2 percent to 7.5 percent range and is estimated to remain upward of 7 percent for the year ahead. These projections could be attributed to the sustained rise in consumption and a gradual revival in investments, especially with a greater focus on infrastructure development. The improving macroeconomic fundamentals have further been supported by the implementation of reform measures, which has helped foster an environment to boost investments and ease banking sector concerns. Together, these augur well for a healthy growth path for the economy. India has already surpassed France to become the sixth-largest economy. By 2019, it may become the fifth-largest economy, and possibly the third-largest in 25 years.

India climbed one spot to 130 out of 189 countries in the latest human development rankings Programme.[22] India's HDI value for 2017 is 0.640, which put the country in the medium human development category. Between 1990 and 2017, India's HDI value incased from 0.427 to 0.640, an increase of nearly 50 percent – and an indicator of the country's remarkable achievement in lifting millions of people out of poverty. Between 1990 and 2017, India's life expectancy at birth too increased by nearly 11 years, with even more significant gains in expected years of schooling. Today's Indian school-age children can expect to stay in school for 4.7 years longer than in 1990. Whereas, India's GNI per capita increased by a staggering 266.6 percent between 1990 and 2017.

While significant inequality occurs in many countries, including in some of the wealthiest ones, on average it takes a bigger toll on countries with lower human development levels. Low and medium human development countries lose respectively 31 and 25 percent of their human development level from inequality, while for very high human development countries; the average loss is 11 percent.

According to UNDP "While there is ground for optimism that the gaps are narrowing, disparities in people's well-being are still unacceptably wide. Inequality in all its forms and dimensions, between and within countries, limits people's choices and opportunities, withholding progress," (Selim Jahan, Director of the Human Development Report Office at UNDP.)

And the Gandhi's fear comes true when we visualize the above facts. In 1909 he opposed the use of machines in ***'Hind Swaraj'***, which pushes millions of people to be unemployed.

Need of Gandhi and Corporate Social Responsibilities (CSR)

Any discussions on globalization would remain incomplete unless we recall Gandhi. It is quite easy to come to an instant conclusion that Gandhi, despite the historic role he played in our freedom struggle, was old-fashioned, someone who could not fit well into the ethos of the new age. Indeed, his insistence on ascetic principles, his inclination to the centrality of the village in our socio-economic life, and his discomfort with modern machine, Railways and the legal system might give the impression that Gandhi is irrelevant. Even Nehru – The disciple and admirer of Gandhi –

could not resist expressing his disagreement. He did not seem to feel comfortable with Gandhi's blueprint, his 'glorification of poverty and suffering'. But it is important to learn from Gandhi's spirit, not to get obsessed with external forms and symbols. It is desirable to learn from this spirit, use it creatively and alter the trajectory of the prevalent form of modernity.[11] It is in this context we can tract the important points related to **'Swaraj'**.

CSR and Gandhi's Trusteeship

The business environment has undergone vast changes in the recent years in terms of both the nature of competition and the wave of globalization that has been sweeping across markets. Companies are expanding their boundaries from the country of their origin to the evolving markets in the developing countries which have been sometimes referred to as emerging markets. The current trend of globalization has brought as realization among the firms that in order to compete effectively in a competitive environment; they need clearly defined business interest in the markets. The increase in competition among the multinational companies to gain first mover advantage in various developing companies by establishing goodwill relationships. With both the state and the civil society is ample testimony to this transformation.

China and India are emerging as major challengers but when we see the situation within these countries, especially in India, we realize how rapid growth of GDP does not get translated into distributive justice within. At least a quarter of the people fall in the category of extreme poor. Rampant corruption and violence has gripped practically all countries of the world. And global warming and climate change threaten human survival and development.

All these problems have their roots in the way market economy operates. Unless the ethical dimensions of life and living are not integrated with the pursuit of self – interest, higher profits and more income, those problems will not only continue but also get more acerbated. Basically Gandhi suggested trusteeship doctrine as an answer to the economic inequalities of ownership and income- a kind of nonviolent way of resolving all social and economic conflicts which grew out of inequalities and privileges of the present social order. Gandhi never ceased to believe in trusteeship in theory from the begging, at any rate, towards the later part of life, though the method was proving ineffective. He believed in the indispensability of nonviolence, noncooperation and Satyagraha in converting the privileged classes into trustees. He even advocated violence as a last resort to dispossess property – owners of their wealth.

Therefore man's dignity, and not his material prosperity, is the centre of Gandhian economics. Gandhian economics aims at a distribution of material prosperity keeping only human dignity. Thus it is dominated more by moral values than by economic ideas.

Concept of Corporate Social Responsibility (CSR)

Corporate Social Responsibly (CSR) is viewed as a comprehensive set of policies and programs that are integrated into business operations, supply chains and decision making process throughout the organization – whenever the organization does business – and includes responsibility for current and past actions as well as future impacts.[8]

CSR involves addressing the legal, ethical, commercial and other expectations society has for business and making decisions that fairly balance the claims of all key stakeholders. Effective CSR aims at "achieving commercial success in ways that honor ethical values and respect people, communities and the natural environment.[7]

The nature and scope of CSR has changed over time. The concept of CSR is relatively a new one – the phrase has only been in wide use since the 1960's. Several terms have been used interchangeably with CSR - They include – business ethics, corporate citizenship, corporate accountability, sustainability and corporate responsibility.

In the 18th century the great economist and philosopher Adam Smith expressed the traditional or classical economic model of business. In essence, this model suggested that the needs and desires of society could best be met by the unfettered interaction of individuals and organizations in the market place. By acting in a self – interested manner individuals would produce and deliver the goods interested manner, individuals would produce and deliver in goods and services that would earn than a profits but also meet the needs of others. The view point expressed by Adam Smith over 200 years ago still forms the basis for free market economies in the 21st century. However, Smith recognized that the free market did not always perform perfectly and he stated that market

place participants must act honestly and justly toward each other if the ideals of the free market are to be achieved.

World Business Council for Sustainable Development defines CSR as "The continuing commitment by business to behave ethically and contribute to economic development while improving the quality of life of the workforce and their families as well as of the local community and society at large".[8]

Gandhi and CSR in India

Unlike western capitalism, business in Asia are part of a social welfare philosophy embedded in corporation philanthropy. Some families from traditional merchant communities pioneered indigenous industrialization in India in late 19th century and participated not only in freedom struggle but in the nation building process thereafter.

Gandhi Ji in 1916 said that "Every human being has a right to live and therefore to find the wherewithal to feed himself and where necessary to clothe and house himself. But, for these very simple performances we need no assistance from economists and their laws" ……." Modern science is replete with illustration of the seemingly impossible having become possible within living memory. But the victories of physical science would be nothing against the victory of the science of life, which is summed up in love which is the law of our being ". Gandhi thus placed the spiritual beings that we primarily are fra above the intellectual, physical and economic being.[15]

Thus, in a Gandhian economic system, each individual, family and community will have access to all basic needs (food, clothing, shelter, education, health, security and self – esteem) at a level the productive capacity of the country keeping in view the environmental constraints, permits. It is not the state which will produce the goods and services needed to meet the needs, it is the individuals as in the market economy which would the producers of goods and services but the goods and services so produced would be distributed as to achieve the following five objectives :

(i) Antyodaya

(ii) Sarvodaya

(iii) Swaraj

(iv) Bread Labor

(v) Trusteeship

Gandhian ethics neither gives free hand to the so called market forces to produce whatever it most profitable to the producers, nor does it give right to the workers to control state. It looks at human beings from a holistic perspective, not from economic perspective alone (Pasricha , A , 2010).[10]

Swaraj (Ideal State): The Ultimate Objectives

Gandhi's notion of *swaraj i*s immensely illuminating. He wanted us to regain the power of 'soul-force', and become independent of the huge techno-economic enterprise of modernity. Gandhian Politico-economics is concerned with the desired or the ideal state which is yet unachieved anywhere in this world. People also doubt if it is ever achievable. But Gandhian thought persists in the possibility of achieving this state, otherwise economic activities become meaningless. For the individual, it may be "*moksha*" or "Nirvana", but for the society, It is "*Swaraj*" or the "*Ramrajya*". In "*Swaraj*" or "*Ramrajya"*, everyone is ruled by one's own self and by no one else. In such a state, all kinds of freedom are enjoyed. The ruling principle in this society is "*Ahinsa*" – truth and nonviolence – which are the purest and the greatest spiritual force. The conditions laid by Gandhi to attain this goal and rather stringent. One has to pass through the transition path of *satygraha* to attain goal. Satyagraha is a law of love and is conducive to the common good of the whole community. It is without anger and retaliation. It does not intend to injure the opponent in any way. It is self-dependent too. This law of love is a law of truth as without truth, there is no love.[14]

We have seen how modernity elevates the power of the techno-scientific structure and the nation state. It is not our contention to deny that these modern structures (Globalization) have made out life easier. But then, these very structures, have also led to an 'iron cage' or an 'administered totality' that tends to paralyze our one agency and reflexivity. In other words, we become increasingly dependent on the 'expertise' solutions emanating from the techno-bureaucratic elite. This, as Gandhi worried, has belittled man. In the Gandhi's own version we could see his worry – "If people were to settle their own quarrels, a third party would not be exercise any authority over them. Truly, men were less unmanly when they settled their disputes either by fighting or by asking their relatives to decide for them. They become more unmanly and cowardly when the resorted to the courts of law. It was certainly a sign of

savagery when the settled their disputes by fighting. Is it any the less so, if I ask a third party to decide between you and me? Surely, the decision of a third party is not always right. The parties alone know who is right. We, in our simplicity and ignorance, imaging that a stronger, by taking our money, give us justice".[3]

"Likewise, if I fall sick, I am incapable of looking after myself, and altering my life-project. Instead, I begin to rely more and more on the medical expert. Indeed, the doctors induce us to indulge, and the result is that we have become deprived of self-control, and have become effeminate".[3] Gandhi sought to alter it. He thought that we must cultivate our 'soul force' – our moral/spiritual power – to revitalize ourselves, our villages, and our communities. In a way, Gandhi notion of *Swaraj* was far deeper, not just the replacement of one kind of a authority by the other.

Against Globalization

In the Gandhian non violent socio-economic order based on ethical and spiritual foundations, economism or modern concept of globalization could not be the basic urge of human life. Gandhi was a vehement and consistent critic of economism in the socio-economic system. As such, he strongly denounced the endless pursuit of western materialism which gave only suffering and hardships of human beings. He aimed at and preached improving the quality of life which wealth and income were to work as the means of human welfare and not and end in themselves. Stressing that ethical and spiritual values are superior to materialistic greed. Gandhi disfavored modern industrialization, mechanization, centralization and urbanization processes which entailed evils like slum life, child labor, endless pursuit of profit, destruction of the spirit of cooperation, fluctuating employment (often large scale unemployment), decay of small, agro and handicraft industries, exploitation of labor, disruption of self-reliant and self-contained village life, moral degradation, class-conflict- etc.

Gandhi rejected industrialization and competitions as, in his view, America the most industrialized country in the world, had failed to banish poverty and degradation and hence favored cooperation along with insisting upon best utilization of the whole main power by way of distribution of the new products among them.[14]

Above description itself shows the relevance of Gandhi in the modern era of globalization. Gandhian ideas successfully expose the inherent weaknesses of the conventional approach and its irrelevance to basic problems of mass poverty, hunger and unemployment in the major parts of the world where intolerable international and international disparities rationalized by economic theory are made to coexist with growth of GNP in an iniquitous socio-economic system maintained by the brute force of the class-dominated state.

Conclude

Today, the world is coming round full circle in emphasizing the concept of CSR, but Mahatma Gandhi, the charismatic visionary leader was a person who several respect was ahead of his time. His view of the ownership of capital was one of trusteeship, motivated by the belief that essentially society was providing capitalists with an opportunity to mange resources that should really be seen as a form of trusteeship on behalf of society in general.

Truly, speaking, Gandhi was a visionary. But dubbing the Gandhian economic theory simply as visionary and utopian or rejecting the Gandhian approach as mystic, value-loaded, primitive and therefore irrelevant is simply to overlook many aspects of the existing economic situation in the world. Depletion of exhaustible resources, destructions of forest, ecological imbalances, pollution of air and water, spread of terrible diseases, colossal waste, operation of diminishing returns, emergence of high-cost-economy, monopolization of gains by and conspicuous consumption of a small friction of population, the elite decay of moral values are these ugly aspects. Actually these are the natural concomitants of material progress or globalization which have considerably disillusioned the human beings. It is here that Gandhi thinking comes to warn that the time running out for the mankind and offers the lasting solution.

In the next 50 years, do we need the development of a few or all? Do we need integral human development or a lopsided development? There should be positive people participatory development plan well-integrated with the country's problems in the present century is to make men and women better off in their own environment without any discrimination and deprivation. It lies in the perfection of the social order based on Gandhi's route of '*Swaraj*' that is in

the modern sense people's entitlements and empowerment. Globalization has indeed done a lot of good things; but it has also caused severe damage to our life and environment.

It is very good to see that CSR is becoming a fast developing and increasingly competitive field and if honestly corporate houses of India practices this that will become the real development story of India. We moderns would lose nothing except our arrogance if we learn a couple of lessons from Gandhi's visionary insight.

References

1. ADB (2008), Key indicators, Manila, Asian Development Bank.
2. Dev and Ravi (2007), 'Poverty and Inequality All India and States,' Economic and Political Weekly, February, 10.
3. Gandhi, M.K.; 1909, Hind Swaraj or Indian Home Rule, Ahmedabad : Navajivan Publishing House, p. 51.
4. Hare A.E.C. ; "First Principles of Industrial Relations", Quoted in J.S. Mathu, ed., Economic thought of Mahama Gandhi, (Allahabad Chaitanya, 1962), pp. 30-4.
5. Himanshu (2007), 'Recent Trends in Poverty and Inequality' some preliminary results, Economic and Political Weekly, February, 10.
6. Human development report (1999), UNDP, Oxford University press, Chapter 1.
7. Moon , J. (2000) Corporate Social Responsibility : An overview in International Directory of Corporate Philanthropy , London , Eurpa Publication.
8. Moon, J. (2005), Corporate Social Responsibility Education in Europe, Journal of Business Ethics, Vol 54,
9. Papola, T.S.(2008), ' Disparities in Development' Trends in Regional variations in High Growth Period, Presidential Address at Fourth Annual Conference of UPUEA, DBS College, Kanpur, November,08.
10. Pasrica, Asha (2010), Corporate Social Responsibility: In Indian Context, Journal of Gandhiian Studies, Vol VIII, no 1.
11. Pathak Avijit,; Modernity, globalization and identity : Towords a reflexive quest, Aakar Books, New Delhi, 2006, p. 58.
12. Sethi J.D. (1992); Gandhi Today, vikas ; New Delhi, p. 63.
13. Stiglitz, j.(2002); Globalisation and its discontents, Penguin books, New Delhi.
14. Singh, Ramashankar (1991) ; Elements in Gandhian-Economics, Gandhi Marg, Jan-March, p. 454.
15. Tendulkar, D.G. (1975) , Mahatma , Vol II , New Delhi Publications Division , Ministry of Information and Broadcasting , Govt. of India .
16. World development report, (2000/2001), U.N. Publications.
17. World Development Report (2007/2008), UN Publications.
18. https://www.theguardian.com/business/2019/jan/21/world-26-richest-people-own-as-much-as-poorest-50-per-cent-oxfam-report
19. https://www.who.int/news-room/detail/11-09-2018-global-hunger-continues-to-rise---new-un-report-says
20. https://www.un.org/development/desa/dpad/publication/world-economic-situation-and-prospects-2019/
21. https://www2.deloitte.com/insights/us/en/economy/asia-pacific/india-economic-outlook.html
22. http://www.in.undp.org/content/india/en/home/sustainable-development/successstories/india-ranks-130-on-2018-human-development-index.html

●

REFLECTIONS OF ECONOMIC IDEOLOGY OF MAHATMA GANDHI IN DEVELOPMENT PLANS OF THE COUNTRY

DR. ANURAG SINGH*

2nd, October 2019 is the 150th birth anniversary of Bapu. He is proudly referred as the 'Mahatma' as well as the 'Father of Nation'. Even after 71 years of his assassination, he lives in the hearts and minds of people. He lived an exemplary life, which has inspired the generations. He was the leader of Indians in the 'Independence Movement' against the British rule. By profession, he was a lawyer; but worked for several English, Hindi and Gujarati newspapers in India and South Africa. Newspaper *'The Harijan'*, *'Indian Opinion' (South Africa)* and the '*Young India'* were the main. Mahatma Gandhi wrote his autobiography, "The Story of My Experiments with Truth, in which he has explained every incident of his life in detail[1]. His autobiography was published in 1927, which was declared as one of the most spiritual books of the 20th Century[2].

Gandhi lived his life on his principles, which has become a ideology and a school of thought in today's environment. Gandhiji happens to be the devoted sign of peace and non-violence across the world, and was nominated many times for the Nobel Peace Prize. He was selected once in 1948, but didn't receive the world's greatest honour of peace due to his assassination[5]. However, Bapu never visited US, yet many Americans followed his principles. Henry Ford was one of the followers. Recognising his devotion and following, Bapu sent an autographed charkha to Henry Ford [5].

Gandhian ideology is regarded to be a fundamental and eternal doctrine. It is also consistent with a perspective to the progressive development of human beings. The ideology of Gandhi is a two-edged weapon, intends to bringing individual and community in the line of truth and non-violence. Gandhian ideology shares many western concepts that maintain more equitable community[4]. His words like welfare of all, labour, khadi, trusteeship, honesty, promotion of Swadeshi became the ideology for the development.

Acharya S. N. Agarwala wrote a book based on Gandhian ideology and named the book 'The Gandhian Plan'. In this book, Acharya emphasised the development of Tiny and Small manufacturing unit along with the development of Agricultural farms [17]. However, this plan was not adopted completely, yet its reflections in other plans focused to economic development can be seen. The literature available in this area is unsystematic and unfocused. Hence this article aims to explore the Mahatma Gandhi's views on Economy, investigate the Gandhian model of Economic Development in order to trace the consideration of his ideology in economic development plans.

Background of the Study

The supreme concern of Gandhian ideology is the welfare of people, not the institutions or the system. It concentrates on the key principles (truth, non-violence, freedom, equality, full employment, bread, duty, trusteeship, decentralization, and Swadeshi) and values inherent in his thinking. His principles manifest the foundations of a new social order. Along with this, he advocated profound respect for Mother Nature, reducing the exploitation in industries, strengthening relationship between people in villages, religion and the nation. He also supported production if required, poverty eradication, and reducing the domination in race, class, language, gender and religion.

Gandhi ji followed these principles throughout his life and also motivated everyone in this direction. He often talked these principles in his public addresses. His enlightenment for the labour, khadi, trusteeship, honesty, promotion of Swadeshi and welfare of all became the ideology for the development.

His thoughts were appreciated everywhere. Even the Nobel Laureate Martin Luther King Jr, Dalai Lama, Aung San SuuKyi, Nelson Mandela and Adolfo Perez Esquivel along with many western people were the admirers of his ideology. Many a time it was initiated to build the Nation on the thoughts of

∗Associate Professor, Institute of Management Studies, Banaras Hindu University, Varanasi

Gandhiji, but due to many imperfections, it could not materialise. His thoughts can be manifested in various economic plans aimed at economic development of the country.

Research Objectives

In order to work on the article theme, the researcher has framed below mentioned objectives:

- To investigate Mahatma Gandhi's view on Economy.
- To scrutinize the 'Gandhian model of Economic Development.
- To explore the consideration given by the Government for the Gandhian ideology in Development Plans.

Research Methodology

The researcher has undertaken an exhaustive literature review to formulate the aims. The study is based on secondary literature and information. Information on Gandhian ideology was collected from research papers published in online and offline Journals, edited and reference books, websites, magazines and newspapers. The information was analysed in the light of objectives considered.

Discussion

1. Mahatma Gandhi's Views on Economy:

Bapu was innately sympathetic towards the poor. In view of the marginalized poor Indians and South Africans, he advocated improving the conditions of the needy and deprived. Gandhi thought that most of the pain of the poor was rooted in capitalist economy. He said business is evil without human considerations. He believed that poverty and inequality exists due to one community, which flourishes on the works of someone else. Below are the key highlights of Gandhian ideology on Economy:

Un-touchability was a sin against Goodness and God. It was the poison, aimed to kill the Hinduism. He taught Swaraj has no significance if millions of the individuals were held in the notion of untouchable subordination[6]. Un-touchability is sufficient to reject the hard-work of the citizens and curse for unity. An important issue that caught Gandhi's eye was the *'Population Growth'*. He was against the population explosion, due to inreasing demand of manufactured and farm product, as that time India was not self-sufficient in fulfilling its necessity[6]. Gandhi advocated controlling the population by self-control or following 'brahmacarya' instead of using contraceptives. He regarded self-control as "the authoritative solution"[6]. Bapu always advocated, '*Simple Living and High Thinking'* to fulfil one's requirements [2], [6]. He vigorously felt that the natural needs of a human were enhanced by Western modernity. Gandhi always supported non-violence, and therefore his economy can be termed as *'Non-Violent Economy'*. He supported non-violent environment in British period; as that time there were no industrial activities without violence [12,6].

Gandhi Ji always supported the '*Development of Rural People and Rural Areas'*. He supported the concept of Sarvodaya village. He wished to revive old village societies with a thriving agriculture, decentralization and cooperatives of small-scale units[4]. He always wanted rural people to participate at all stages. He said that the true India could be found in the villages. He envisioned making each village, a model village.

Gandhi advocated *'Economic Regulations in Accordance with Nature'*. He wanted physical progress with social equality and moral development. He was of a view, that there should not be any contradiction between the law of the universe and economics. A country's economic laws are ascertained with the climate, geology and temperamental circumstances. Gandhi ji always promoted *'Swadeshi'*. It was focused on the concept of *'Exchange Economy*. He wanted every Indian village to be an independent entity. He encouraged the exchange of local made commodity with those commodities which are not being manufactured in their area. He said not to use those items, which are not made in India[11,6] but supported to import important and essential goods like surgical equipment. He opposed the purchase of those items which can destroy the tiny and cottage units in rural area.

Gandhi never supported massive industrial development, since it caused many ill effects on socio-economic developments. He favoured a '*Decentralized System of Cottage Industries'*, due to less requirement of labour. He thought that India has plenty of human capital, and thus *'self-utilization of skills'* approach

must be supported in villages [11], [6].Gandhiji, after his return from South Africa, thought that Khadi could save thousands from hunger and would add the income to poor. He also thought that, it was impossible to fix the issue of the cloth production by factories; thus he highlighted the *'Growth of the Khadi'*. The Khadi was the sign of justice and equality for Gandhiji. Gandhiji considered *'Use of Machinery'* a 'great sin'. He assumed contemporary automation was a cause of human anger, violence and conflict. Gandhiji didn't oppose the use of equipment and machines[15,6]. He said "Charkha is a machine", but he was always against the machinery of destruction. He supported such devices and equipment, which rescued the jobs and helped cottage industry.

Another important economic ideology traced in literature is *'Work and Earn'***.** Gandhiji said that every person should gain his own meal through his work. The bread-labor rule is related solely to agriculture, but because, everyone was not a farmer, hence by doing some other work one can earn his meal. If all will work, all will have enough food, and cloth, All will be happy and will overcome the poverty[15,14]. Mahatma Gandhi highlighted the need of '*Economic Welfare and Equality'* in the manufacturing units. Gandhiji stressed Economic Welfare and Equality only after witnessing, that the factory labours were suffering from injustice due to un-graceful treatment in the plants. He was against the use of *'Child labour'*. He said that "Child labour creates a huge loss to the nation[14]. He wanted less duration work by an employee with more recreation, in order to prevent employees from animal like treatment. Gandhiji noted that capitalist were the thieves of wealth [15,14]. He said that money earned by the businessman does not belong to them, as it is the outcome of hard work of labour in the manufacturing units. Favouring the *'Trust and Welfare of All*, he advocated that, business man earning should be used for all.

After visiting Bengal in 1943-44, the Mahatma realized that the whole country was suffering from food shortage, and therefore suggested various solutions. He said that everyone should minimize their food requirements to handle *'Food Crisis'*. For cultivation purposes, every agriculture field must be used[16]. Black marketing, exporting important food products should be discontinued; water supply and deep wells should be supported by the administration. Gandhiji rejected the consumption of *Intoxication Items'* (such as coffee, tea, tobacco and liquor). He said that the use of same is harmful. He said that the use of alcohol is non-objectionable, if given under doctor's advice [17].

Based on the Gandhin ideology for the development of the Nation, an initiative was undertaken by his supporters to develop an Economic development Model, which passed through criticisms and appreciations.

2. Conceptualisation of 'Gandhian model of Economic Development:

The directions to Gandhian Economic Development Plan were received from *'Bombay Plan'* and *'Scheme for Citizens'*. The Bombay Plan, developed by Indian capitalists was one of the most commonly debated plans in the 1940s[13]. It was a scheme of growth, with a large degree of public involvement. It highlighted the importance of industrial sector, with the objective of increasing domestic revenue and per household earnings in next 15 years. In 1944, M N Roy provided an option to a Bombay Plan. His scheme was named as the *'Scheme for the Citizens'*[20]. His concept was derived from the Soviet plan, and suggested the development of the country, taking agriculture, farmers and small units into consideration.

In the same year, Acharya S. N. Agarwala wrote a book *'The Gandhian Plan'*, in view of the fundamental values of Gandhian ideology and thereby emphasizing the development of farms and small manufacturing units[13]. The Gandhian Plan was written with an aim, to raise the social level of Indian citizens within 10 years. This book focused decent quality of life, through scientific advancements in agriculture and small manufacturing to improve the economic situation of villagers[17]. Although Gandhi wasn't an economist, he stated ideologies related to agricultural and industrial growth in many of his addresses to bring Indians out of slavery, yet Acharya Agarwala tried to reaffirm development model in 1948[17].

Salient Features of Gandhian Model of Development:

- Priority is to given to ethical, social and economic growth of the community.
- Human practices and judgments are to be encouraged by truth and non-violence.
- Happiness and health should be guaranteed by growth.

- Industrialisation and mechanization must be focused on employees to satisfy the fundamental needs.
- Food, apparel, housing, schooling and jobs for all should be guaranteed by the development.
- Focus on the cottages, crafts, labor intensive units and agriculture.
- Full distribution and decentralization of the roles and authority to each village to make autonomous.
- Comprehensive focus on social justice, non-violence, true life, and social responsibility
- Development must be evaluated at the level of wealth rather than materialism and financial gains.

The pundits of Indian Economy considered this model an idealistic[17], which could not be applied realistically. Nevertheless, the supporters of Gandhian ideology appreciated it.

3. Gandhian Ideology: Reflections in Economic Development

There are three key proofs of the acceptance of the Gandhian agricultural and rural manufacturing strategy in India, i.e., khadi, rural development and sanitation. Rural growth and agricultural industrial sectors were regarded as the main tool for promoting jobs in rural and urban areas.

After analysing the requirements of the villagers and their possible development, the *Khadi* Industries Board was exclusively set up in late 1953. Afterwards Khadi Industries Board was formed in 1957[19].The 1st plan (1951) had adopted comprehensive Gandhian approach, to develop KVIC, with the use of indigenous raw material and simple tricks in cottage and village units. For the progress of KVIC, other initiatives like establishment of KVIC Board, Hand-Loom Board, Handicraft Board and the Small Scale Industries Boards were established. The subsequent Five-Year Plan offered the promotion of cottage industry thereby creating a customer base for heavy-manufacturing units and solving the unemployment problems. The fundamental strategy for the development of KVIC was also formed by the board. Effort to execute, suggested approach by integrating Khadi and Village Industries with larger programs of Rural Development in various plans were worked out in 2nd and 3rdfive year plans[18]. Scheme for Rural Jobs and the Drought Prone Area Programs had been launched to counter massive unemployment, through agriculture initiatives. In special programs of employment, KVIC (which has the uniqueness of skill and craftsmen) was not included. Hardly anything remarkable regarding KVIC was there in 8th plan, except, incentive to modernize, upgrade technology, and creation of a monitoring department to guarantee the huge credit needs of this sector[16]. In the same plan it was suggested to combine KVIC with Handloom, Sericulture and Handcrafts Programs in order to handle the local needs and to boost the rural employment. But no measures to enforce this strategy are proposed.

In the first five-year plan, *Agriculture* was provided the highest priority. The Community Development Program (CDP) was introduced to increase agricultural output and reinforce economic systems [9]. The Intense Agricultural District Program was introduced in the second plan to boost output through fertilizer, pesticides supply and seed improvement etc.[3]. Many cement and fertilizer factories were constructed in the third plan. In this plan few schemes, like Applied Nutrition Program, Tribal Development Block Program, and Rural Works Program, The Rural Industries Projects, High Yielding Variety Program etc. were started. The 4th Plan initiated schemes like the Crash Scheme for Rural Employment, the Drought Prone Area Program, the Small Farmer Development Agency, the Tribal Area Development Agency and the Pilot Intensive Rural employment Program[3]. The 5th Plan started with the Hill Area Development Program, Special Livestock Production Program and food for Work Program etc.[7]. The sixth plan solely focused on one-child birth control strategy. In the 7th5-year plan the Panchayti Raj system and Jawahar Rozgar Yogana were introduced with the objective of providing jobs in agricultural regions, enhancing domestic and economic facilities and improving quality of life[3]. The main aims of the eighth Plan were to control fast population growth, eradicate poverty, boost jobs, Panchayatiraj for rural development, NGOs, decentralization and the involvement of people in government practices. Besides these, the highlights of this Plan were the Sampoorna Grameen Rozgar Yojano (SGRY) and the Pradhan Mantri Gram SadakYojana[8].Introducing flagship programs like the NREGP, the National Rural Health Mission, Sarva Shiksha Abhiyan, Mid-Day-Meal, the National Social Assistance Program and the Total Sanitation

Campaign made rural economy strong in 11th plan. The 12th Five Year Plan was driven by MGNREGA, [12]. In conjunction, the Govt. of India has introduced MP Constituency Development Scheme in this plan.

Rural *Sanitation* was always on the priority of the Government, but its impact can be seen from the 11th 5 year plan. The Ministry of Rural Development (MoRD) launched PURA (Providing Urban Amenities to Rural Area) scheme in 11th five year plan to make basic amenities such as decent roads, infrastructure, schools, hospitals, rural sanitation and drinkable water available to the residentsin remote areas[20]. The Ministry of Rural Development aimed to introduce the PURA system through PPP model, involving Gram Panchayat (s) and private sector associates, with the help of Dept. of Economic Affairs and Asian Development Bank. The scheme offered various advantages, such as the growth of rural area and employment. All attempts were aimed at establishing an alternative infrastructure for the effective execution of agricultural and rural growth, thereby enabling the public and private players to make effective delivery mechanism. On the Swachatta principle of Gandhi Ji, the Swachh Bharat Mission (SBM) has been initiated to make Indian cities, and villages clean in 2014-19. Swachh Bharat Mission has aimed to eliminate open defecation by constructing 90 million toilets in rural India for public and households, and to develop a responsible toilet surveillance system. The Swachh Bharat Mission aims at: SBM-Rural and SBM-Urban.

Conclusion

The vision of Gandhi about the economy was simple and easy. His economic views were disapproved by perfectionist to decline on multiple fronts. However, it has profound political implications. Gandhi considered financial motivation as the fundamental concept of slavery, and therefore, he recognized that Britishers could be invaded by attacking their fundamental financial benefits and Indians can be saved through his ideology[14]. In connection to the real knowledge of Indian situation, he developed a distinct version of Indian economic adjustment, which he transmitted in his public speaking. His worry about the difficulty of the Indian village was real and he was keen to mechanize the global economy by following ethical considerations. However many voices were raised to consider the comprehensive model of economic development based on Gandhian thoughts in the country, yet less was adopted. The economy has given healthy results, even when partially implemented. His economic development model has shown an enormous impact, of achievement, whenever implemented in India and in other countries as well.

References

1. Bhikhu, P. (1 989), Gandhi h Political Philosophy, Macmillan, London.
2. Brahmananda, P.R. (1 977), 'Integrated Gandhian Society and Total Revolution', Indian Express, Oct, 17.
3. Brejesh, K., Goyal, S. K., Goyal, R. K., & Singh, S. R. (2015). Indian agriculture and rural development under five year plans: an appraisal, 3(1), 41-47.
4. BT, (2018), Mahatma Gandhi's economic beliefs that are still relevant, retrieved on 24/07/2019 from https://www.businesstoday.in/current/economy-politics/mahatma-gandhi-economic-beliefs-that-are-still-relevant/story/283518.html
5. Desai P & Sonawane S (2019), Economic impact of Gandhi's models, retrieved on 24/06/2019 from https://www.mkgandhi.org/articles/economic-impact-of-gandhis-models.html
6. Dutta N (2019) India's Economic Plans: History, Characteristics and Objectives, retrieved on 27/06/2019 from http://www.economicsdiscussion.net/economic-planning/indias-economic-plans-history-characteristics-and-objectives/6467
7. GOI (1974), Government of India, Fifth Five year Plan
8. GOI (1997), Government of India, Ninth Five year Plan
9. GOI, (1952), Government of India, Planning Commission, First Five Year Plan, New Delhi, 1952, pp. 88-92
10. GOI, (2012) Government of India, Twelve Five Year Plan, pp.59-66.
11. Koshal, M., & Koshal, R. (1973). Gandhi's Influence on Indian Economic Planning: A Critical Analysis. *The American Journal of Economics and Sociology*, *32*(3), PP. 311-330.
12. Kumar A, Vijayalaxami N, (2016), Relevance of Gandhian Philosophy in the 21st century, *International Journal of Research in Engineering, IT and Social Sciences* Vol. 6, No. 1, PP 1-8
13. Lockwood, D. (2011). Was The Bombay Plana Capitalist Plot? *Proceedings of the Indian History Congress*, *72*, 618-631.
14. MoI (2013), Economic Ideas of Mahatma Gandhi, retrieved on 26/06/2019 from https://www.mapsofindia.com/personalities/gandhi/economic-ideas.html
15. Mukerji, D.P. (1954), "Gandhiji's Views on Machines and Technology", *International Social Bulletin*, Vol. 6 No.3. PP. 46-57.
16. Nayak P B, (2005), Gandhian economics is relevant, retrieved on 10/06/2019 from https://timesofindia.indiatimes.com/edit-

page/Gandhian-economics-is-relevant/articleshow/1249762.cms

17. Pani, N (2002), Inclusive Economics: Gandhian Method and Contemporary Policy, Sage Publication, Delhi.
18. Rivett, K. (1959). The Economic Thought of Mahatma Gandhi. *The British Journal of Sociology, 10*(1), 1-15.
19. Sharma, R. (1997), Gandhian Economics. Deep and Deep Publications Pvt. Ltd., New Delhi.
20. Suresh M, (2017), Economic ideas of Mahatma Gandhi-Issues & Challenges, retrieved on 06/06/2019 from https://www.mkgandhi.org/articles/economic-ideas-of-mahatma-gandhi.html

●

MAHATAMA GANDHI: AN IDOL FOR TODAY'S MANAGERS AND ENTREPRENURES

SAMEERA KHAN* AND DR. NEHA PANDEY**

Mahatma Gandhi was not only one of India's greatest leaders; he is hailed as a world icon. Although he held no position of authority he moved a country to free itself from British rule in 1947 by adopting a novel method – peaceful protest – to make his points to the world with a series of marketing masterstrokes. Gandhiji could achieve high moral and ethical standards due to his managerial skills.

We all know Gandhiji as a man of principles, discipline, and dedication to his work and a brilliant strategist and all these qualities Gandhiji achieved due to his managerial skills that he had. Gandhiji was a great manager and it is well reflected through the newspapers he was associated with. From the very beginning he showed a remarkable grip over each detail in running the newspaper. From typesetting to printing, from content to layout, form packing to posting and from collecting of subscription to overall budgeting, Gandhiji had a great command. Looking at Gandhiji's other involvement it is important to understand how did he manage to have right sort of coordination among workers and effective administration of office details.

Gandhiji achieved high ethical standards by setting up examples and in the early days of the Indian Opinion, he was doing almost everything single handed. Gandhiji personally trained some workers when he was running the Young India and the Harijan. He always kept a watchful eye on each detail. Gandhiji had realized success of a newspaper did not depend only on qualitative content but also on efficient management. Gandhiji was well aware of the fact that in spite of excellent editorial and rich content circulation was also important to run a newspaper and for this it needed great management skills at each strategic point. Gandhiji implemented new things for the success of his newspapers. He introduced a new tone in his correspondence unlike the official firm and extremely synthetic in an average newspaper office, he used simple and direct language. It was short and very to the point. Gandhiji always executed whatever he planned and when he was away from his team, he kept constant touch with them through his letters.

The Swadeshi movement lead by him created brand awareness for Khadi, and similarly for every videshi goods burnt he provided options symbolizing "a solution for every problem".

He had an approach of first creating platforms for the public so that they can connect to each other and later using their talents for their own benefits. Swadeshi, Champaran and the Dandi March are examples of events led by Mahatma Gandhi that created huge brand awareness.

Mahatma Gandhi is an inspirational personality and a role model for many struggling managers. Mahatma Gandhi has taught us that a manager should never have low confidence even at the toughest times. Resource constraint never bothered him. He understood the Bruisers were powerful with technological armors. So, he changed the game fundamentally in order to deal with the situation. He gathered his power through the support of common people rather than weapons. He kept on reinventing his strategies.

Just like how managers face problems not only from outside the company but also from within, Gandhiji also faced rejections and hindrance from people within the Congress. There were many who did not go along with the plan all the time. One of these was Pandit Jawaharlal Nehru's father Motilal Nehru who wrote him a long letter asking him to drop out the idea of Dandi March. Motilal Nehru doubted that the plan would not succeed and may cause embarrassment to the party. Mahatma Gandhi wrote back a single line in reply- "Kar ke dekho" (do it and see). This signifies not only his sheer management skills but also his boldness in experimenting. It is known to everyone that how successful his experiment of Dandi March was.

∗Research Scholar, Deptt. of Journalism & Mass Communication, Banaras Hindu University, Varanasi
∗∗Assistant Professor, Deptt. of Journalism & Mass Communication, Banaras Hindu University, Varanasi

In contrast with those who look up to Gandhi as a great Management Guru there are many people who concede that all his ideas would not be applicable in today's scenario. They say that Mahatma Gandhi was against industrialization and he felt that it would have a highly negative impact on society. But to say that Gandhi was completely against industrialization would be wrong. He was not even an enemy of the capitalists. Gandhiji offered his exclusive theory of Trusteeship. This theory guides capitalists to consider the wealth they have in their hand as being held with a responsibility for the up gradation of the poor. The trusteeship is nothing but a mid way path between core capitalism and core communism.

Gandhiji felt that the rich were the custodians of the wealth they earn and it should be used for the welfare of the society which constitutes the less-fortunate ones. This is the essence of Corporate Social Responsibility which is popularly practiced now-a-days. Mahatma Gandhi's style of leadership as applied to corporate India would make even the lowest person in the organization believe in himself and the significance of his contribution towards the organization. Gandhiji had a way of doing things so that everyone in the cause is connected to the goal. Mahatma Gandhi's role as a manager is truly extraordinary. In the same way, entrepreneurs need to find different ways of managing and leading their workforce. He taught the world that the company goal is above the individual merits. Very few people realize that while Gandhiji was leading India towards freedom, he put forth exceptional Management skills.

People who have realized this and adopted his management methods have tasted the glory and touched zenith. Gandhiji's message of peace at a time of turbulence was so effective that, years later, other icons like Martin Luther King cited him as their role models. Even Apple featured him in their 1988 Think Different advertising campaign. Here are four lessons that all leaders can learn from Gandhiji-

1) Innovation and team building

When Gandhiji wanted to send out a message, he needed to do it in a way that would gain world attention. Entrepreneurs need to do this to stand out from the crowd, sell their brand and therefore their product. They need to get creative. When Britain ruled India, its Salt Act stopped Indians from collecting or selling salt, despite the fact that salt forms an important part of an Indian diet. Indians had to buy it from the British, who not only controlled its manufacture and sale; they also levied a heavy salt tax. The poor suffered most under this tax.

Gandhiji decided to march in an act of civil disobedience against this tax from his religious retreat at Ahmedabad to the Arabian Sea coast roughly 240 miles away. Along the way, he and 60,000 people were arrested. The Salt March grabbed world attention, Gandhiji's Freedom Movement continued and India won its independence in 1947. His message reached the world more effectively than any PR company could have achieved for him; communication, clearly, was something he had mastered. He realized the importance of thinking out of the box.

Gandhiji's sacrifice and dogged determination inspired others to follow him, dedicating their lives to serving him and his cause. Thus Gandhiji built a loyal team around him. How could one man influence all of India's then 300 million people? Entrepreneurs would love that kind of reach so take a lesson from the man; follow your gut and don't allow yourself to be swayed from your path to success.

2) Good company

Gandhiji believed in lifelong learning and having the right people around you to advise you. So mentors and a positive peer group are important. It is critical for entrepreneurs, who are often not part of a large structure in an organisation, to have the right people watching and looking out for them. Gandhiji knew that thoughts and company influence life to a great extent. Having a source of inspiration, a strong mentor and positive peers hold great importance for those in pursuit of a business dream.

3) Integrity

A mother came to Gandhiji complaining that her son ate too much sugar and asked him to say or do something to inspire the child to give up the substance. She felt the boy would listen to Gandhiji as the child idolized him.

The pair waited while Gandhiji looked at the mother then simply said, "Come back in two weeks."

When they returned, Gandhiji spoke directly to the child. "Boy, you should not eat sugar. It is bad for your health."

The mother asked why he had not said that two weeks ago.

Gandhiji smiled, then said, “Mother, two weeks ago I was still eating sugar myself.”

Gandhiji believed so much in integrity that he would not counsel anything he did not do himself. How can entrepreneurs be successful if their values are not kept at the forefront of their minds? Good entrepreneurs are guided by a core belief that becomes their lodestar, the benchmark that gives them a standard they will not allow to be lowered.

4) Communication

In order to reach the mass of the Indian population, which is divided by state and language, Gandhiji made sure that any changes taking place in the country were communicated across the nation, state by state, through regional language newspapers. This meant that most families could keep in touch with what was happening across the country, since there was always someone; someone in their house, in their street, or in their village, who could read.

Getting the message to the common man- the man or woman who forms the bulk of the Indian population- is what Gandhiji mastered.

In business, you may be talented and have a great idea but unless people know about your product it’s hard to progress. Getting your message to your target market requires thought and planning and, like Gandhiji, making sure that the message is communicated to the right people in the right way.

5) Negotiation Skills Training

Many times the British sat down with Gandhiji to coerce him to accept their authority. Sometimes they used force, like the Jallianwala Bagh, and sometimes they had across-the-table discussions; however, at all times Gandhiji did not compromise his principles of non-violence and non-cooperation. Gandhiji was a powerful negotiator as he was clear about what was negotiable and what was non-negotiable. He stood firm and fearless on what he considered a ‘non-negotiable’. He did not want the British to rule India – this was a non-negotiable. Finally, the British succumbed!

6) Presentation Skills Training

At the start of the fight for freedom, Gandhiji lacked any impact in his presentations. But as the fight gained momentum and his passion was fuelled, there was not a single person in the audience who was unmoved. Great presentations are possible when there is palpable passion!

7) Blended Learning

Gandhiji was born in India, worked in UK, started the fight for freedom in South Africa and finally ended up in India to give us independence. He blended all the learning and experiences he got from the various cultures and used what was appropriate for the situation. He was willing to replace the known with the unknown when the known did not create the necessary impact!

On Conclusive note

A typical management programme includes modules in all the above topics through various sources - online and offline and teaching methods. The article examines how Mahatma Gandhi’s Autobiography and episodes from his life could help a professional learn fundamental management principles. It is high time that the new generation discovers the relevance of his methods and ideas in modern day business challenges. The main message that could be taken from his work and writings is that management is all about purposeful action and that the ‘means is as important as the end.’ Generations to come will scarce believe that such a one as this ever in flesh and blood walked upon this earth! As said by Albert Einstein.

References

1. The Story of My Experiments with Truth, M. K. Gandhi
2. Satyagraha in South Africa, M.K. Gandhi
3. www.mkgandhi.org/
4. http://www.ibo.org/ibaem/conferences/documents/EmotionalIntelligence-JSchmitz.pdf
5. http://gandhiking.ning.com/profiles/blogs/chauri-chaura-incident-and-mahatma-gandhi
6. http://www.brainyquote.com/quotes/authors/m/mahatma_gandhi.html

●

IMAGINING GANDHI'S CONVERSATION WITH YOUNG MINDS IN CONTEMPERARY INDIA

DR. SWATI SUCHARITA NANDA*

Mohandas Karamchand Gandhi must have been the most written among all the Indians who lived in the last century. Seen primarily as an idealist, Gandhi has been, at once, a philosopher and an activist who led an extraordinary freedom struggle against mighty the British Empire in the modern history of the world. The extraordinary nature of India's freedom struggle sprang from the non-violence preached by Gandhi which at once made each participant conscious of her/his duties towards the nation yet taught them to confront violence with total control over their emotions. In other words, it was Gandhi who led the non-violent freedom struggle of India against the British Empire. This makes Gandhi one of the enigmatic personalities to be studied not only in India but also in the outside world.

Yet, introducing Gandhi to younger generation Indians of the present times is replete with challenges. The first challenge comes from the fact that Gandhi has been too simplistically presented as an advocate of extreme non-violence who can probably be idolized but cannot be practically followed in one's day-today life. For some, he can at best be considered as a philosopher, while for others, he cannot be considered as a model to be accepted in an era of competitiveness. The second challenge to studying Gandhi comes from the upsurge of narrow nationalist ideologies that make Gandhi not only irrelevant but in some ways, a hurdle. The third challenge pertains to the fact that Gandhi is often pinned to his time and context limiting his relevance only to the time period when he existed. This blocks the understanding of the younger generation regarding the contemporary relevance of the person. All these notions on Gandhi call for even a better understanding of his personality by the younger generations.

A good beginning would be to introduce Gandhi as a man with multifaceted personality who not only had an active political life but also was author of many books and articles. A prolific writer, Gandhi has penned books such as *Satyagraha in South Africa, Gram Swaraj, Hind Swaraj, India of my Dreams, My Experiments with Truth* (Autobiography) as well as numerous articles available to the contemporary world as collected works. He also published a number of journals such as *Indian Opinion, Navajivan*, *Young India*, *Harijan*, *Harijan Sevak* and *Harijan Bandhu*. Gandhi's writings were clearly aimed at reaching out to people. This is evident from the fact that he wrote and published in multiple languages. He also experimented with unique methods of communication to hold the readers' interest. One of the important structures that he chose was that of a conversational style to discuss important issues as done in Hind Swaraj that was written on board of a ship called SS Kildonan Castle from London to South Africa in 1909. The adopted mode successfully engages the audience in the Gandhian thought process. It would be pertinent to note that Gandhi was yet to make his appearance in the Indian freedom struggle against the British. However, Gandhi who had just touched forty years of age at the time of writing of this book had sufficiently matured intellectually to have a deep insight into the issues he was touching upon.

Hind Swaraj was as much a conversation with himself as with the thinking Indian minds of the time. The book becomes important as it shows Gandhi's serious involvement with questions of his time as well as his resolved thought process through responses to the questions. The conversation between the editor (Gandhi himself) and the reader (the Indian thinking minds) touch upon burning issues of the time such as the lack of faith of the Indian population in the Indian National Congress, a platform led by westernized Indian leaders of the time such as Dadabhai Naoroji. The book reflects Gandhi's thoughts on the partition of Bengal and its repercussions on the 'English ship' as well as on the general Indian population. The partition, according to him, has at one level led to division of Indians into two sections as reflected in the division within the Congress, at another level, this has led to a consciousness among Indians to remain united to drive the British away from the land. He spends considerable time discussing the concept of Swaraj. He also makes clear that true swaraj is not in making Hindustan an Englishstan but in keeping the spirit of

*Assistant Professor of Political Science, DAV PG College, Varanasi

Hindustan alive. Swaraj for Gandhi goes beyond mere transfer of power. Swaraj would be attained in real sense when Indians will learn to govern themselves and would themselves experience the responsibility of such self-rule. Gandhi does not attempt to conceal his aversion towards the western materialistic civilization. He shows it through sharp critique of western perspectives of development as seen through the introduction and growth of railways as well as creation of new elites such as the lawyers and doctors.

It is important to note that the book was written at a time when India was yet to experiment with democracy as an independent entity. Hopes and expectations in the goodness of Indians ruling their own people and land through a democratic system remained untested. Growth-directed development had just made its first knock on the nation's doors. What perturbed Gandhi were issues that also deeply disturbed the thinking minds of that time. Today, when India's democracy has passed through its infancy and can probably be said to have attained an age that goes beyond even tender youth, thinking minds are grappling with questions about the health and future of the democratic set up, the direction of development and many more issues that remain far from being resolved. At this juncture, it would be interesting to imagine what form would the conversations between Gandhi, the editor and Gandhi, the reader would have taken if it happened in the contemporary times. Further, it would be even interesting to imagine how Gandhi would have comprehended the worries of the tender thinking minds of the younger generations of the contemporary period.

Before proceeding any further, it would also be relevant to understand that in this conversation, Gandhi centres his attention on questions that may appear to be political on surface but are, actually, deeply philosophical. If Hind Swaraj is anything to go by, then Gandhi's keenness lay in the individual, in how he relates to other individuals, more importantly, how he relates to the ecology. Gandhi essentially sees people as ecological people. His ecological approach colours his political views. He looks for rootedness in political institutions.

Since the imagined conversation between the younger generation Indians and Gandhi would be situated in the current timeframe, the questions would be those that disturb the minds today. One of the most important questions would be related to the right kind of ideals to be set and ideology to be followed by the youth. Given the fact, contemporary period is one in which ideals and ideologies set by 'reason' and 'rationality' are being put to question, the young minds are in a dilemma what to believe and what not to. This period is certainly different from the one in which Gandhi actually lived. Indians, for example, understood that British colonialism must be resisted but the current period is one in which the younger minds are torn between what is to be resisted and what is to be supported.

Gandhi's reply to such a question would have centred around the 'death of the moral individual' and the dominance of the 'rational individual'. As can be understood from his various writings, speeches and actions, Gandhi didn't believe that abstract principles of morality can alone play a role in guiding our actions. To him, it is important for each individual to live according his/her belief of what is right or wrong. Morality was an individualistic matter for Gandhi. It was a matter between the individual and his conscience. The Gandhian moral tradition is actually a story of faith in determining the actions of the individual. Faith ensures that one understands actions of moral worth to be motivated by certain emotions. Faith is predicated on the human beings' ability to do what is right. In this sense, "Gandhi would test his faith with his reason but he would not allow his reason to destroy his faith".[i] Gandhi sincerely believed that rationality must be wedded to truth, and not merely be seen as 'instrumental rationality' as conceived by science.

In practical terms, this would mean not believing blindly in the campaigns of reason and science but trying to understand whether 'morality' conforms to it or not. It is in this sense that he was critical of many scientific and technological inventions which may have been results of perfect methodology but the result may not conform to morality. If we take a cue from the Hind Swaraj, then Gandhi would have linked the advancement of technology in the field of medicine and consequent mushrooming of hospitals and doctors as a sign of immorality at least for two reasons. First, hospitals and the corporates manufacturing medicine gain when people do not take care of their bodies and fall sick. The entire political and economic system supports the hospital network to profit by encouraging the individuals to be self-indulgent in matters of lifestyle. The individual is discouraged to follow self-control in matters of food, drinks etc. Second, medicines must be tested on

animals and in many cases on marginalized and powerless human beings to ascertain the levels of their harmful effects. The advent of big capital in the sector of medicine and super-specializations are campaigning for legitimising our dependence on them. In such a context, Gandhi would have expected the younger minds to question these developments that treat human bodies as machines and make an effort to get back control of our bodies from them.

It must be remembered that Gandhi tried to live a life of truth. As the name of his autobiography suggests, he continuously experimented with truth to see what impacts would it have as against untruth. One can find numerous examples right from his childhood days when he sided with truth and faced the consequences. In his conversation, Gandhi would have advised the students of the contemporary times to open their own eyes and through that listen to the voice of their own souls rather than be blind followers of any ideology, however scientific or rational it may claim itself to be.

A relevant question from the young minds would be how Gandhi would conceptualize collective identity of a nation when religious nationalism dominates the notion of collectivity.

Though Gandhi advocated for each individual to understand himself through his own eyes, he was far from a self-oriented utilitarian individualist as propagated by the modern western philosophy. His ideas of self were informed by altruism and morality which was wedded to the human collective. Gandhi's idea of collectivity was not one in which uniformity or homogeneity becomes the key principle. In fact, he has been quite vocal about the need to maintain pluralism be it in matters of food or faith. His advice to students of the present times, then, would have been to contribute towards a moral civil society in which each actor is "a self-conscious choice-making individual".[ii] Gandhi strongly believed that pluralism of a nation cannot be considered to be a weakness. He explicitly stated that religion and nationality are not synonymous. "In reality, there are as many religions as there are individuals; but those who are conscious of the spirit of nationality do not interfere with one another's religion. In no part of the world are one's nationality and religion are synonymous".[iii] Gandhi felt that the Indian civilizational history proved the existence of a faculty for assimilation of various cultures in the concept of Indianness.

Many young minds of today are being disturbed by fact that the very concept of development is being juxtaposed with real and serious issues such as degeneration and scarcity of resources and pollution, to name a few. What, then, should one do?

To answer this, Gandhi would have focussed on discussing issues related to growth-oriented development coupled with rapid urbanization and industrialization of the contemporary times. In fact, it is on this count that he had critiqued the western model of development so much that it seemed satanic as per his descriptions. His primary concern being autonomy of the human soul, Gandhi saw western model of development that seriously lacked human element and therefore, would go against individual and nature. Gandhi understood that market must not be given to dominate human lives. It is because of this, he advocated for making efforts both individually and collectively to fulfil the needs. His use of *charkha* to weave clothes is an example of this. Given this, he would have suggested to the young thinking minds of today to conceptualize a balanced notion of development that would involve body, mind and soul of individual as a part of the collective. Such a development would not only require more hands in various activities, thus resolving the issue of unemployment in part, but also be in tune with dignity of labour and social justice. Gandhi would have been perturbed by the contemporary trends such as migration of the youth towards the urban areas leaving behind sectors such as agriculture. Keeping with his idea of Gram Swaraj or autonomous village systems, he would have urged the younger generation to invest their energy in making villages autonomous. Gandhi would also have turned attention of the younger generation towards the internal colonization happening within societies by tendencies that focus on centralization of resources and services in capital, metro cities. This would mean not only reviewing the very process of contemporary models of urbanization in a holistic manner but also undertaking a serious rethinking about the very concept of creating urban centres.

Given the fact that Gandhi believed in simple living in harmony with the nature, he would have turned the attention of his young readers towards an ecological life. Beginning with a reverence for all kinds of life forms, Gandhi always stressed on human connectedness with nature. He could be put in the category of 'deep ecology' scholars who refuse to look

at the earth from a human-centred lens. Gandhi along with the deep ecologists would rather look at the earth as belonging to all. His respect for all beings found expression in his stress of protection of cows. "It takes the human being beyond his species. The cow to me means the entire sub-human world. Man, through the cow, is enjoined to realise his identity with all that lives".[iv]

A pertinent question to be raised in the contemporary times would be regarding the role of the state in relation to individual citizens. While the state has a responsibility to look after the distribution of resources and maintenance of law and order that requires it to take up the role of a disciplinarian, what happens when the state tries to take charge of the individuals' lives completely. Should the individual simply give in to the state's disciplinary commands which may also mean giving up many freedoms for the sake of the general interest?

Gandhi looked at the modern state as a centralized structure of authority. Speaking of centralization, Gandhi would have discussed one of his important concerns relating to the state as an all-powerful entity that absorbs the self of individuals. Gandhi was very sceptical of the modern variant of state system that tends to concentrate power geographically and in a few hands. He went on to write, "the state represents violence in a concentrated and organized form. The individual has a soul, but the state is a soulless machine, it can never be weaned from violence to which it owes its very existence".[v] Given the kind of significant role that the modern state has come to play in our lives controlling it right from cradle to grave, Gandhian advice to the students would have been to transfer their dependence on the state machine for their very existence gradually to their own village communities. Given the kind of stand that he took in relation to the British, his stand would have not been different for rulers who tend to control all aspects of lives of people. In other words, Gandhi would have given legitimacy to individuals' right to dissent against the state.

Conversing at a time when most Indians believe that India is on the verge of becoming a *vishwa guru*, Gandhi's model seem out of place as it is neither aggressively nationalistic nor make any effort to carve a niche for the country in the international arena. How would Gandhi have responded to a question in this regard from the younger generations?

A cursory reading of Gandhi's ideas would portray him as an absolute pacifist who would not allow any space to national interest in his ideas. A deep understanding of Gandhi, however, would reveal him advocating for a value-based nationalism that is people-centred not merely for India but for all societies across the globe. An international system based on such value-based nations would not look at inter-state relations in terms of competition and conflict. The result of such value-based nationalisms would be a cooperative and peace-seeking international system. Such a value-based international system can be further maintained by international legal and justice system that treats all nations equally and would ensure that all nations contribute towards the sustenance of a humane international system. Such notions of an international system could be found in thoughts of founders of the League of Nations and the United Nations. Gandhi would have reminded the younger generations that India, for that matter any country of the world, does not exist in isolation. We are a totality- in terms of human beings, nations, species who live along with the flora and fauna. Any idea of a better existence of us, whether as a people or a nation, must be informed by this understanding. Once this happens, then no people on this earth would say 'victory to my country' rather would give a call for 'survival of all'.

It would be significant to note here that Peace Research, a very important sub-discipline that has emerged within the academic discipline of International Relations, considers Gandhi as its main inspiration. Johan Galtung has been explicit about the contribution of Gandhian ideals in his concepts of structural violence. He writes, "(e)exploitation is violence, but it is quite clear that Gandhi sees it as a structural relations more than as the intended evil inflicted upon innocent victims by evil men".[vi] Thus, Gandhi has emerged in the international arena as a symbol of morality and conscience.

In conclusion, it can be said that Gandhi stands as an apostle of human integrity who keeps us aware of our own existence in the nation with people one lives in proximity as well as with those living far away on this planet. At a time when Gandhi becomes the centre of controversial political debate in his own country, there is an urgent and serious need to delve deep into his ideals beyond his public activism. His legacies must be kept alight for the younger generations to take guidance and inspiration.

References

I. Govind, Madhav (2009) Science, Truth and Gandhi - Divergence and Convergence, *Gandhi Marg*, 31 (1), 57-82.

II. Madan, T. N. (2002) Gandhi's Altruistic Individualism, *The Hindu* (*Opinion*), Wednesday, October 2.

III. Gandhi, M. K. (2014) *Hind Swaraj*, Sarva Seva Sangha Prakashan, Rajghat, Varanasi.

IV. Gandhi, M. K. (1921) *Young lndia*, 6 October, p.36. available at https://www.mkgandhi.org/momgandhi/chap81.htm

V. Gandhi, M. K. (2009*) India of my Dreams*, Navjeewan Trust, Ahmedabad, p. 70.

VI. Galtung, Johan (1981) 'Gandhi and Conflictology', In Balasubramanian, N. And Devadoss, T.S. (ed.) Gandhian Thought, University of Madras, Madras, pp. 72-85.

●

MAHATAMA GANDHI'S VIEWS ON HEALTH

VISHAL GUPTA AND DR. VANDANA VERMA***

India spends 4.10 per cent of its GDP on health as per XII Five Year Plan. Diseases belong to lifestyle are emerging as India's major health hazard resulting from bad food habits, physical inactivity, wrong dietary pattern and distorted biological clock. A joint report of World Economic Forum and W.H.O. reveals that India has suffered an accumulated loss of $236.6 billion by 2015 on account of unhealthy lifestyles and faulty diet. On his 150th birth anniversary on October 2nd 2019 it will be very remarkable respect to Bapu if we review his ideas regarding health issues which are very relevant in current scenario of health and disease. Gandhi ji has given insight about all the dimensions of health like opting the path of Satya and Ahimsa, Yama and Niyam is helpful for social and mental health, living with nature, intake of vegetarian diet, milk, praying for Nature and God is helpful for physical and spiritual health.

1. About Our Body

Very fewer people know that Gandhi's book on "Keys to Health" is one of the most popular creations in all of his writings which throw fire on significance of his ideas on health. Gandhi ji used to say "It is Health that is real Wealth and not pieces of gold and silver"[1] Gandhi says that it is necessary to obligate knowledge about one's body which most of them are ignorant about. He argues that human body is composed of five elements which have been described well in Indian system of medicine i.e. Ayurveda as Earth (Prithavi), Water (Jala), Sky (Aakash), Fire (Agni) and Air(Vayu). He further states that good working of the human body depends upon the harmonious activity of the various component parts. The first element Air without which we can't live is surrounded us on all sides and the second element Water is basic necessity of life. The third element Earth which can be used as nature's way to treat ailments i.e., mud poultices to cue scorpion sting, constipation ordinary boils etc. The other element fire which we get from sun has many uses such as sunbaths. The last Sky which can be also termed as Aakash, helps to maintain and regain health. These five basic elements known in Ayurveda as ***Panchmahabhuta,*** constitutes our body. Gandhi Ji asks what is the use of the human body? Gandhi replies to it that, "everything in the world can be used and abused and it applies to our body too. We abuse it when we use it for selfish purposes, in order to harm our body. It is put to right use if we exercise self-restraint and dedicate ourselves to the service of the whole world."[2] Moving ahead let us consider how often and how much to eat? Here Gandhi replies, "Food should be taken as a matter of duty even as a medicine to sustain the body, never for the satisfaction of palate. There should be self-control as such habits of elders, influence children to some extent."[3]

2. About Cleanliness

Although every religion underlines the importance of cleanliness and Gandhi stated that Indians should follow the western countries regarding cleanliness. Further Gandhi focused on sanitation in camps. Though it is difficult to maintain but Gandhi has offered various solutions in his book "Social Service, Work and Reform Vol-1".Bapu suggests that one of the best solution offered by him was every person should become bhangi i.e. sweeper to maintain cleanliness and this was practiced by Gandhi himself. The concept of 'Sanitation' is a comprehensive one including effective management (collection, treatment and disposal/recovery, reuse or recycling) of human waste, solid waste (including biodegradable and non-biodegradable refuse/trash/rubbish), waste water, sewage effluents, industrial wastes, and hazardous (such as hospital, chemical, radioactive, plastic or other dangerous) wastes.

The standards of sanitation in a society are closely inter-related to the levels of hygiene and public health in it and, hence, to the attainable standards of longevity and extent of diseases, and thus to the productive levels of the society. These also determine the levels of avoidable wastages of available resources and to what extent the so-called wastes are being recycled as valuable resources. Due to lack of sanitation facility, which includes lack of cleanliness

∗Ph. D. Scholar, Deptt. of Kriya Sharir, Faculty of Ayurveda, IMS, Banaras Hindu University, Varanasi
∗∗Assistant Professor, Deptt. of Kriya Sharir, Faculty of Ayurveda, IMS, Banaras Hindu University, Varanasi

and causing dirt, filth and pollution, has not only vital economic consequences but also serious social consequences. Mahatma Gandhi had realized early in his life that the prevalent poor state of sanitation and cleanliness in India and particularly the lack of adequate toilets, largely in rural India, needed as much attention as was being devoted toward attainment of Swaraj. He said that unless we "rid ourselves of our dirty habits and have improved latrines, Swaraj can have no value for us. “Simultaneously with the struggle for India's independence, Gandhi Ji led a continuous struggle for sanitation, cleanliness, and efficient management of all categories of wastes throughout his public life , in South Africa and then in India also. He dealt with nearly all aspects of sanitation-technical, social and economic-and it’s various aspects-personal, domestic and corporate as well.

3. About Diet and Dietary habits

It is accepted universally that the food choices we make on a daily basis have a direct influence on our overall wellness. On the basis of simple, healthy eating habits becomes very easy to follow in the dietary footsteps of one of the greatest humans in the history of the world. Within his series of articles entitled *Guide to Health,* Gandhi pointed out: “The body was never meant to be treated as a refuse bin, holding all the foods that the palate demands.” While he himself limited his diet to mainly raw and cooked vegetables, fruit, curd, unpolished rice and grains, soya beans, and a variety of nuts and seeds, a new-age palate may require an increasing number of textures and flavours. Thankfully small changes can be made to render a modern-day diet substantially healthier. Like Gandhi Ji is very clear of overly-processed foods and beverages as much as possible, opting instead to prepare your own from fresh, seasonal produce. You can make deliciously fragrant meals without making use of any store-bought consignment and instead experimenting with combinations of oils, herbs, and spices. Gandhi enjoyed food that was raw or prepared in a simple manner the most. There is no need for extravagant cooking equipment and gadgets while following a diet inspired by his lifestyle.

4. About Fasting as a measure for optimal balance in Health

Gandhi is known to use fasting as a non-violent measure throughout India's fight for freedom. Among 17 recorded fasts, the longest fasting for 21 days, promoting unity between Hindus and Muslims. Nowadays, fasting in its various forms more often go hand in hand with a balanced diet in a bid to achieve optimal health and well-being. While contemporary medicine does not endorse fasting for long periods of time, occasional fasting has been found to have many health-related benefits. Not only have several global studies indicated that fasting may help control blood sugar levels but it is also known to reduce the acute inflammation often linked to cancer, arthritis, and even cardiac disease. Alternating controlled periods of fasting with a wholesome diet we will not only enjoy many physical benefits but a more focused and disciplined mind as well.

5. Belief of Gandhi Ji on Natural Cure

Now in this 21st era it is well accepted that science of natural therapeutics is based on the use of same five elements, for the treatment of various diseases, which constitute the human body which are known as a single term ***Panchmahabhuta.*** Mostlyit is a common thinking among people today that Nature Cure is expensive, more so than Ayurvedic or allopathic. But it is not true. I think it is the duty of a Nature Cure doctor not only to look after the body but also pay attention and prescribe for the soul of a patient. Gandhi Ji had a strong belief on Nature cure and this has come true in this era of Modern age too .India is needed Nature Cure doctorsin this great work for the Humanism. There can be no question of making money in it. The need is for those who are filled with the spirit of service to the poor, and it is observed that only with a sufficient number of such doctors may the dream come true.

6. About to be vegetarian

Very early from his life Gandhi Ji appreciates the natural world and chose to live a pleased life as a vegetarian Observing to a vegetarian lifestyle has countless benefits. Not only can you sleep with a clear conscience at night knowing that no animals were killed in order to feed you, but you will also be an overall healthier person. What the Gandhi Ji has advocated nearly 50 years back has furnished in the Study published by the ***National Institutes of Health*** in the USA found that vegetarians and vegans tend to have a lower body mass index (BMI) than flesh-eaters. Vegetarians display healthier cholesterol levels also.

7. About mutual resources of the society

Gandhi ji suggests that Improvement in Method of Cremation by obligating the crematorium

constructed scientifically so that the body could be reduced to ashes in a furnace. However he was also distressed to see 'bunch of flowers' being wasted in his welcome and started asking for garlands instead to be made of hand sprung yarn. He was very critical of the extravagant indulgence in feasts and clothes in Hindu marriages, as these led to insanitation and wasteful uses of our mutual resources. He got a totally worn out blanket renewed by being sewn on to a thick khadi piece, and even wore it to the Royal palace in London in 1931. He insisted on every article in the Ashram, including water and salt, being used without any wastage and anyone wanting to miss a meal to inform in advance to avoid any food being wasted. He never allows wasteful use of any commodity in his meetings. Once he saw wastage of food through food left uneaten, a practice common among the rich and also in feasts and ceremonies, as a sign of "bad breeding" and wanted an educational awareness campaign to be organized against it.

Conclusion

Besides, a large number of Indian's still live 'Below Poverty Line' giving birth to the need of a cost effective yet qualitative health system which seems a farfetched dream with the shortage of medical persons and hospitals specially in the rural areas. AYUSH, the Department of Ayurveda, Yoga and Naturopathy, Unani, Siddha and Homeopathy, started by the Ministry of Health and Family Welfare, Government of India in November 2003 to function along with allopathy in improving health issues at all levels of rural and urban medical care, is the most befitting example of timeless efficacy of Gandhian belief in traditional and economical methods of medication for the masses of India. Equally, the sprouting of traditional health care centres spread across different parts of India have played a vital role in transforming the country into a medical hub, with the state of Kerala holding first position, and promote the cause of 'Health Tourism' generating over forty million new jobs in India, by 2020.Thus, once again it is Gandhi's Key to Health. So in my opinion Mahatma Gandhi's view on health is much relevant in present context also as it was in last decades.

References

1. Gandhi M. K., "An Autobiography or The Story of My Experiments With Truth", Navajivan Publisihng House, Ahmedabad, India, 1927. pp 23
2. Gandhi M. K., "Keys to Health", Navjivan Publishing House, Ahmedabad, India, 1948.pp 13
3. Gandhi M. K., "Social Service, Work and Reform" (Vol-1), Navjivan Publishing House, Ahmedabad, India, 1976.pp78
4. Gandhi M. K., "Diet and Diet Reform", Navjivan Publishing House, Ahmedabad, India, 1949
5. Rajeh j. Kumar: 'Collected works of Mahatma Gandhi' (1958-94), vols. 1 to 100, New Delhi: Publications Division; pp46
6. Bindeshwar Pathak '*Sociology of Sanitation*', containing the presentations made in 'National Conference on 'Sociology of Sanitation' (2013, New Delhi), Chapters 1 to 30, Delhi: Kalpaz Publications (2015). pp105

●

EXAMINING THE 'GOOSEBERRY' CULTIVATION AND ITS PRODUCTIVITY TRENDS IN DISTRICT PRATAPGARH (U.P.)

MUKESH KUMAR YADAV* AND DR. ANUP KUMAR MISHRA**

Agriculture plays a vital role in the Indian economy. Over 70 per cent of the rural households depend on agriculture as their principal means of livelihood. The total share of agriculture and allied sectors in terms of percentage of GDP is 13.9 per cent during 2013-14 at 2004-05 prices.[1] Horticulture is that branch of Agriculture which concerns with the garden crops. Horticulture can also be defined as the branch of agriculture concerned with intensively cultivated plants directly used by man for food, for medicinal purposes or for aesthetic gratification.[12] Horticulture plays important role in Indian economy. Importance of Horticulture in improving the productivity of land, generating employment, improving Economic condition of the farmers and entrepreneurs enhancing export and above all.[5] Providing nutritional security of the people is now acknowledged. Presently, the Horticulture sector contributes around 30 per cent to the total GDP of Agriculture from nearly 13 per cent of the total cropped area and support nearly 20 per cent of the agriculture labor force.[7] Besides many fruits like mango, guava, citrus and flowers like roses, one of the most important Horticulture fruit is Gooseberry. Gooseberry is also known as Aonla. Aonla (*Emblicaofficinalis*, Gaetn Syn. *Phyllanthusemblica* Linn) belong to the family Euphorbiaceae with the chromosome number 2n=28.Aonla is also known by its several vernacular names such as ‘amla’ or ‘aura’ in Hindi, ‘dhatri’ or ‘amlaki’ in Sanskrit,‘amla’ or ‘amlaki’ in Bengali or ‘Indian gooseberry’ in English. Aonla bushes produce an edible fruit and are grown on the both a commercial and domestic basis. It is good source of vitamin C. Gooseberry is having medicinal value. It has acrid, cooling, diuretic and laxative properties. Dried fruit are useful in haemorrhages, diarrhea, dysentery, anaemia, jaundice and cough. Aonla is used in the indigenous medicines (aurvedic system) viz. trifla and chavanprash. Gooseberries are commonly used for preserve (Murabbas), pickles, candy jelly and jam besides fruits leaves bark and even seeds are being used for various purposes. It is native to Europe, northwestern Africa, west-south and south-east Asia. Gooseberry was growing popular in the 19th century as described in 1879. The gooseberry is indigenous to many parts of Europe and western Asia, growing naturally in alpine thickets and rocky woods in the lower country, from france eastward, well into Himalayas and peninsular India as well as it is found in different states of India. Aonla is mostly cultivated in the states of Uttar Pradesh, Maharashtra, Gujarat, Rajasthan, Andhra Pradesh, Karnataka, Tamil Nadu, Himachal Pradesh etc. Uttar Pradesh is the highest producer of Aonla among different states of India. Aonla is more popular in Uttar Pradesh where it is largely cultivated in commercial orchards in Pratapgarh, Azamgarh, Varanasi, Faizabad, Sultanpur, Raibareli and Bareilly districts and due to distinct features of soil and climate condition Pratapgarh District known as king of Aonla (NBH). Area under gooseberry cultivation in Pratapgarh is about13000 hectares.[11] The present paper tries to examine the Gooseberry cultivation and its productivity trends in district Pratapgarh of Uttar Pradesh.

Review of literature

Singh and Patel[10] conducted a study on productivity of Potato crop under riverbed cultivation is about 330 quintal per hectare which is about 50 per cent higher than under field situations. Cultivation of Potato both under riverbed and fields is a profitable proposition but it requires heavy investment too. Farmers face many constraints in the availability of inputs. Area has potential to produce even high yields of Potato which may be achieved by relaxing the constraints in farm supplies.

Handiganur[6] conducted a study on “Economics of production and processing of grapes in Bijapur district, Karnataka” analyzed the growth rates of area, production and productivity of grapes in Bijapur district from 1978-79 to 1992-93. Growth rate analysis had showed an increase of 7.12 per cent of area in Bijapur district and an increase of 0.6 per cent in area, 2.80 per cent in production and 2.0 per cent in

∗Research Scholar, Deptt. of Economics, Banaras Hindu University, Varanasi
∗∗Associate Professor, Deptt. of Economics, DAV P.G. College, Banaras Hindu University, Varanasi

productivity of grapes was observed in Karnataka state. The increase in production and productivity was due to the use of improved cultural practices, increased use of manures, fertilizers and plant protection chemicals.

More[9] conducted a study on "Economics of production and marketing of banana in Maharashtra state" analyzed the growth rate in area, production and productivity of banana in Nanded district, Parbhani district and Maharashtra state as a whole 4.50percent due to suitability of climate to cultivate banana in addition to more awareness of farmers towards horticultural crops in Nanded district. In Nanded district production growth rate had shown higher growth rate 21.04 percent. The higher growth in production was contributed mainly by significant increase in area coupled with productivity. The growth rate of productivity was high 1.43 percent in Maharashtra state as a whole as compared to Nanded 1.40 percent and Parbhani 0.90 percent district. It was due to the use of improved cultural practices, higher use of manures and fertilizers, more use of other inputs and also increased yield levels in other districts of the states.

Singh and Srivastava[13] conducted a study on "Growth and instability of sugarcane production in Uttar Pradesh: A regional study." analyzed the growth and instability in sugarcane area, production and productivity in Uttar Pradesh for different regions for the period from 1980-81 to 1998-99**.** Semi-log equations were fitted to estimate compound growth rates and coefficient of variation analysis to study the instability. Area, production and productivity under sugarcane registered a significant and positive growth rate in all the study regions and state as a whole. The variability coefficient was relatively higher in the central region but, Western and Eastern region registered the lowest.

Dhakre and Sharma[3] conducted a study on "Growth Analysis of Area, Production and Productivity of Maize in Nagaland" this study was based on secondary data for the period of 1979-80to 2004-05 by using of semi log model. Maximum decrease in area under maize crop was (-) 16.02 percent found in the year 1999-2000 and maximum increase in area under maize crop was 30.23 percent in the year 2000-01, whereas maximum increase in production and productivity of maize crop in Nagaland was 103.05 percent in the year 1988-89 and 101.26 percent in the 1988-89 respectively Among area, production and productivity of maize the instability was highest for the production. Growth rates were significant at 1 percent level of significance.

Rai, Singh and Singh[11] conducted study on "Economics of aonla Production in district Pratapgarh (U.P.)" The study was carried out in Sadar block of district Pratapgarh in Uttar Pradesh with30 Aonla growers (8 marginal, 6 small and 16 big respondents) selected randomly with six villages of the selected block. The overall plantation cost of one hectare aonla was worked out of Rs.47000 .The cost of gestation period was calculated as Rs.78876.60 for six years of gestation period. On an average cost of aonla production per hectare came to Rs.27386.02. The highest cost intake of 6-12years orchard was worked out as Rs.33272.08/ha, while lowest cost was observed in 24 years and above aged orchard as Rs.23836.00/ha. The input-output analysis shows that aonla crop fetched on an average 5.45 times more return on investment of Re 1. Problems of insect-pest and diseases, lack of plant protection measures and lack of skilled human resource at peak season was observed as main constraints in the study area.

Objective of the paper

- This research paper will try to examine the trend and pattern of Area, Production and Productivity of gooseberry cultivation in the Pratapgarh district in Uttar Pradesh.

Hypothesis

H_{01}: Area, Production and Productivity of the Gooseberry cultivation in the study region has increased over time.

Methodology

The present study is based on secondary data collected from Jila Udhayan Kendra, Pratapgarh (Uttar Pradesh) for the period of 1990-991to 2015-16. We used semi log model for the calculation of Annual growth rate and compound Annual Growth rate.

Data Analysis and Discussion: Gooseberry Cultivation in All India

Status of the Area, Production and Productivity of Gooseberry cultivation in India are analyzed by using data published by Horticulture statistics division, Department of Agriculture, Coopn & Farmer welfare. Analysis of the data (table: 1) is presented and discussed below-

Table :1 State-wise Area, Production and Productivity of the Gooseberry Cultivation in India									
STATES/ UTs	2014-15			2015-16			2016-17(Provisional)		
	Area	Production	Productivity	Area	Production	Productivity	Area	Production	Productivity
	in'000 Ha	in'000 MT	MT/Ha	in'000 Ha	in'000 MT	MT/Ha	In'000 Ha	in'000 MT	MT/Ha
Uttar Pradesh	34.34	374.28	10.89	35.37	379.14	10.71	34.9	380.7	10.9
Madhya Pradesh	13.98	373	26.68	14.85	187.07	12.59	19.11	210.44	11.01
Tamil Nadu	8.22	173.74	21.13	8.39	171.47	20.43	8.4	164.5	19.58
Gujarat	9.67	95.63	9.88	8.54	85.35	9.99	8.54	85.35	9.99
Chhattisgarh	3.35	36.21	10.8	3.53	38.43	10.88	3.67	40.3	10.98
Assam	0.9	16.27	18.07	0.92	16.84	18.3	0.93	17.1	18.38
Andhra Pradesh	0.85	9.17	10.78	0.99	21.81	22.03	0.78	15.68	20.1
Bihar	1	15	15	0.9	14.8	16.44	0.91	14.95	16.42
Haryana	2.23	11.02	4.94	2.23	12.06	5.4	2.26	14.71	6.5
Rajasthan	1.61	12.89	8	1.66	14.1	8.49	1.7	14.5	8.52
Maharashtra	0.35	3.44	9.82	1.07	8.86	8.28	0.88	8.45	9.6
Punjab	0.44	6.06	13.77	0.48	6.64	13.83	0.55	7.6	13.81
Jammu & Kashmir	1.88	2.6	1.38	1.97	3.28	1.66	1.97	3.28	1.66
Nagaland	0.27	2.91	10.77	0.25	2.59	10.36	0.25	2.62	10.48
Uttarakhand	0.76	2.04	2.68	0.81	2.37	2.92	0.83	2.38	2.86
Himachal Pradesh	2.32	2.05	0.88	2.52	2.16	0.85	2.52	2.06	0.81
Jharkhand	7.9	33.82	4.28	0.28	1.31	4.67	0.29	1.41	4.86
Mizoram	0.3	1.32	4.4	0.33	2.04	6.18	0.3	1.32	4.4
Karnataka	0.15	1.02	6.8	0.16	1.05	6.56	0.16	0.88	5.5
Odisha	2.02	0.71	0.35	2.02	0.71	0.35	2.03	0.73	0.35
Kerala	2.56	0.16	0.06	1	0.1	0.1	0.1	0.1	1
Telangana				0	0.01		0.02	0.03	1.5
Others				0.2	0.12	0.6	0.02	0.07	3.5
Total	95.09	1173.33	12.33	88.47	972.29	10.99	91.12	989.14	10.85

(Horticulture Statistics Division, Department of Agriculture, Cooperation& Farmers Welfare)

Table 1 shows state-wise Area, Production and Productivity of the Gooseberry cultivation among the different states of India. It may be seen from table 1. That Uttar Pradesh is highest producer of Gooseberry in terms of Area and production among different states of India. While in terms of productivity Tamil Nadu and Madhya Pradesh are more than Uttar Pradesh.

Gooseberry cultivation in Pratapgarh District: An analysis of Data (Annual Growth Rate).

The trend in Area, Production and Productivity of Gooseberry cultivation in the Pratapgarh district are analyzed by using the data published by Jila Udhayan Kendra Pratapgarh district Uttar Pradesh. (Table: 2) The result of the analysis of the table 2 are presented and discussed below-

Table:2 Annual Growth rate of Gooseberry cultivation in the Pratapgarh District Uttar Pradesh (1990-91 to 2015-16)

Year	Area (in Ha)	Growth rate of Area (in percentage)	Production (in MT)	Growth rate of Production (in percentage)	Productivity (MT/ Ha)	Growth rate of Productivity (in percentage)
1990-91	8000		50000		6.25	
1991-92	8002	0	48283	-3	6.03	-3
1992-93	8114	1	49859	3	6.14	2
1993-94	8216	1	46832	-6	5.70	-7
1994-95	8312	1	47329	1	5.69	0
1995-96	8872	7	47617	1	5.37	-6
1996-97	9321	5	47909	1	5.14	-4
1997-98	10124	9	46131	-4	4.56	-11
1998-99	10543	4	48627	5	4.61	1
1999-00	11749	11	40489	-17	3.45	-25
2000-01	11866	1	40130	-1	3.38	-2
2001-02	12036	1	36087	-10	3.00	-11
2002-03	12036	0	78448	117	6.52	117
2003-04	12439	3	77279	-1	6.21	-5
2004-05	12960	4	88230	14	6.81	10
2005-06	13522	4	86214	-2	6.38	-6
2006-07	11214	-17	85135	-1	7.59	19
2007-08	12830	14	82737	-3	6.45	-15
2008-09	13040	2	84760	2	6.50	1
2009-10	13266	2	92862	10	7.00	8
2010-11	13400	1	94406	2	7.05	1
2011-12	13507	1	73478	-22	5.44	-23
2012-13	13678	1	97674	33	7.14	31
2013-14	11850	-13	70000	-28	5.91	-17
2014-15	8042	-32	55222	-21	6.87	16
2015-16	7000	-13	50000	-9	7.14	4

Source: (Jila Udhayan Kendra Pratapgarh district)

Table 2 reveals that annual growth rate (increase or decrease) in the Area under Gooseberry cultivation is not uniform in the study period, (1990-91 to 2015-16). Maximum change in the Area found to be 14 percentages in the Year 2007-08.Maximum decrease in the Area is (-) 17 percent in the year 2006-07. Maximum increase in production is 117 percentage in the year 2002-03 and maximum decrease in production is (-) 28 percentage in the year 2013-14. In terms of the productivity increasing trend is not regular. Maximum increase in productivity has been 117percentage in the year 2002-03 and maximum decrease in productivity is (-) 25percentage in the year 1999-00. The present paper rejects the hypothesis that "Area, Production and Productivity of Gooseberry cultivation increased overtime," On the basis of data analysis we found that after the year 2010 the gooseberry cultivation (Area, Production and Productivity) in the Pratapgarh district declined up to (-)13 percent, (-)14 percent and 4 percent respectively, while compound annual growth of gooseberry cultivation (Area, Production and productivity) is 2.37 percent, 3.26 percent and 0.26 percent, respectively. The annual growth rate of Area, Production and Productivity are depicted in figure 1, 2 and 3 derived from table 2.

Figure: 1

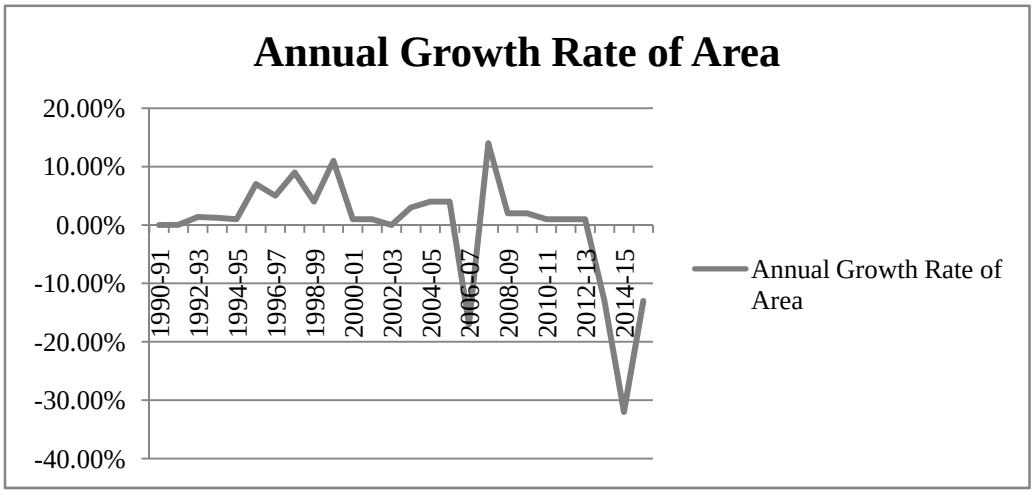

Figure: 2

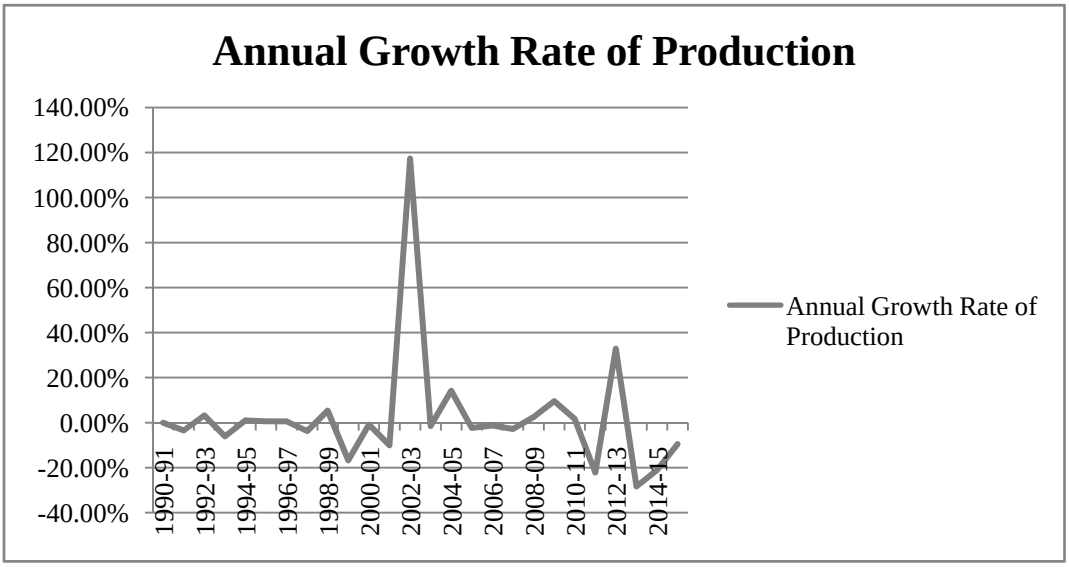

Figure: 3

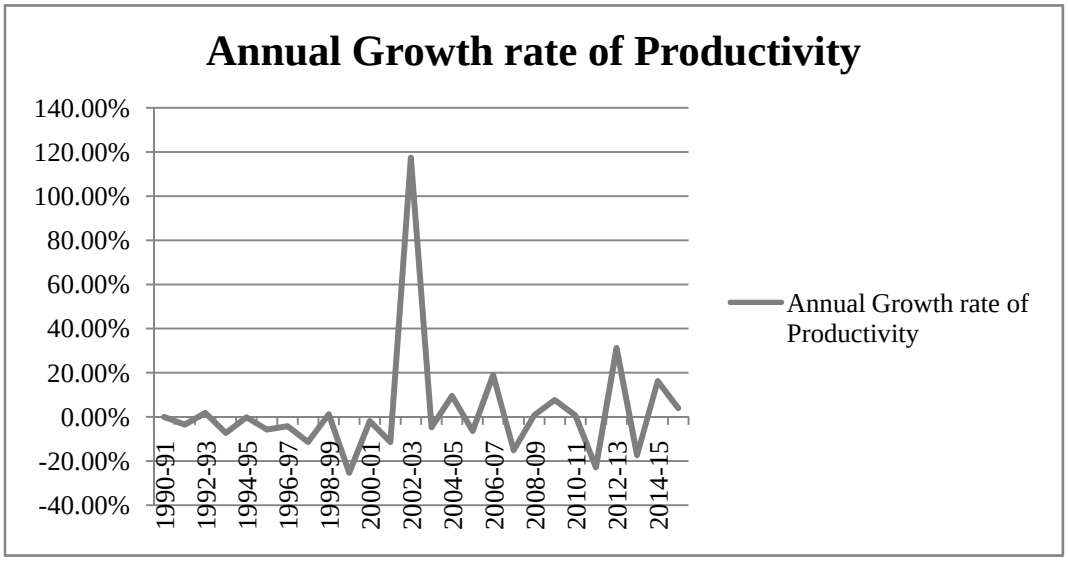

Gooseberry cultivation in Pratapgarh District: An analysis of compound annual Growth rate

Table no.3 reveals compound annual growth rate of Area, Production and Productivity of Gooseberry cultivation in Pratapgarh. The overall trend over a time period of (26 Years) is shown in table3. The table reveals that area, production and productivity has increased 2.37 percent ,3.26 percent and 0.26 percent respectively over the period of 1990-91 to 2015-16.. This calculation is done by adopting semi log model by taking the data of table 2.

Table no:3 Compound Annual Growth Rate of Area Production Productivity of Gooseberry cultivation in Pratapgarh district.

	Area (in percentage)	Production (in percentage)	Productivity (in percentage)
1990-91 to 2015-016	2.37	3.26	0.26

Major Challenges in Gooseberry Cultivation in Pratapgarh district

The role of fruits in balance diet needs not to be emphasized. It plays an important role in supplying the vitamins and the minerals for human body. Hence, it is called protective foods. India ranks second in fruit production in the world and had produced about 63.83 million tones during 2010-11. Horticulture crops cover 13 percent cropped area of the country. The area, production and productivity of fruit have increased3.0, 8.0 and 3.0 times from 1961 to 2011.[11] Analysis of the result of Gooseberry Cultivation in district Pratapgarh, we found area, production and productivity of Aonla cultivation has been decreasing trend since 2013-14.

We observed various challenges and problems in the study area which are as follows:

- The sizes of agriculture land holdings are decreasing under gooseberry cultivation.
- Still it is depending much on weather.
- Irrigation is inadequate.
- Access to quality seeds.
- People suggest Imbalanced use of soil nutrients resulting in loss of fertility of soil.
- Uneven access to modern technology in different part of the country.
- Lack of access to formal agriculture credit.
- Limited procurement of food grains by government agencies.
- Failure to provide remunerative prices to farmers.
- Eastern states are lagging behind the rest of the country for Gooseberry farming.

Conclusion

In the Pratapgarh district, Gooseberry cultivation is witnessing a downward trend in contribution of horticulture sector which encompasses fruit, flower and vegetables cultivation. Many factors like illiteracy among the farmers, lack of irrigation facility, lack of mechanization and modern technologies, inadequate credit facilities etc. can be sited as the reasons for low Gooseberry cultivation (Area, Production and productivity). In order to tackle unemployment, attention should be drawn to the potentials of agro based industry, fruits, flowers, vegetables cultivation. If the proper focus is given to above challenges, definitely there will be significant improvements in the contribution of gooseberry cultivation to Pratapgarh. The activities like agro based industry can be effectively practiced in rural areas, as it does not need huge investments. Moreover, they create ample employment opportunities for landless, marginal, small and large farmers in agro based industry like gooseberry processing industry. The scope of horticulture is increasing in the present era. It can reduce the evils of poverty and unemployment to a certain extent if properly utilized and organized.

References

1. CSO. State-wise Estimates of Value of Output from Agriculture and Allied Activities with New Base Year 1999-00. Ministry of Statistics and Programme

Implementation, Central Statistical Organisation, Government of India. New Delhi, India, 2010.

2. Dahiya, P and singh, Ranveer (1997). Horticulture Development in Himanchal Pradesh: Profitability, Policy and Prospects. Indian journal of Agriculture Economics, 52 (3):592-598.

3. Dhakre, D.S. and Sharma, Amod, (2010). Growth Analysis of Area, Production and Productivity of Maize in Nagaland. Agric.sci. digest., 30 (2):142-144.

4. Giri, A.K. (2008). Horticulture Prospects and potential in India. Indian journal of Agriculture Economics, 63(3): 367-370.

5. Gogoi M, Borah D. Baseline Data on Area, Production and Productivity of Horticulture Crops in North-East and Himalayan States - A Study in Assam. Agro-Economic Research Centre for North-East India Assam Agricultural University, Jorhat – 785013, Assam, 2013.

6. Handiganur, S., (1995), Economics of production and processing of grapes in Bijapur district, Karnataka. M.Sc. (Agri.) Thesis, University of Agricultural Sciences, Dharwad.

7. Horticulture statisitcs-2017

8. Lathika, M. and Kumar C.M. Ajith, (2005), Growth trends in area, production and productivity of coconut in India. Indian journal of Agricultural Economics, 60(4):687-696.

9. More, S.S., (1999), Economics of production and marketing of banana in Maharashtra state. M.Sc. (Agri.) Thesis, University of Agricultural Sciences, Dharwad.

10. P. K. singh and V. M.Patel, (1993), productivity of Potato crop under riverbed cultivation in India, Indian Potato Association journal, 20(2): 155-161.

11. Rai,J.,Singh, Pratap, Shesh and singh, Kumar, Arun(2017).Economics of aonla production in district Pratapgarh. International Research Journal of Agriculture Economics and Statistics, 8 (2)426-430.

Saraswat and Rane, (2006), production and marketing of peach fruit: A case study of Rajgarh village. Indian journal of agriculture marketing,8 (5):318-325.

12. Singh J. Basic Horticulture, Kalyani Publisher, New Delhi, 2012.

13. Singh, Archana and Srivastava,R.S.L., (2003),Growth and instability of sugarcane production in Uttar Pradesh: A regional study. Indian journal of Agricultural Economics, 58 (2):279-282.

14. Viswanathan,K.U and K.J.S. Sataysai (1997). Fruits and vegetables: production trends and role of linkage. Indian journal of Agriculture Economics, 52 (3). 574-583

15. Vorghese, P.K., (2004), trend analysis in area, production and productivity and price behavior of cardamom in Kerala. Indian journal of agricultural, Economics, 59 (4):788-807.

●

RECONFIGURING THE ROLE OF GANDHI: NATION, HISTORY AND IDEOLOGY IN SELECT INDIAN FICTION IN ENGLISH

PROF. MITHILESH KUMAR PANDEY*

Unlike Europe, the conditions that provoked nationalist consciousness and independence struggles in the third World countries particularly in India during the first half of the 20th century marked the beginning of the Gandhian era. Benedict Anderson's concept of the nation "as an imagined political community"[1] and Partha Chatterjee's "moment of manoeuvre"[2] determine the image of Gandhi as crucial in the emerging nation where there is no common language, religion, ethnicity as shared history. They conceive nationalism as a socially formulated cultural artifact and analyze the various factors responsible for the formation of the modern nation. However, India, which was divided on the basis of caste and creed, Gandhi's mediation acted as a unifying factor among the peasants, untouchables, marginalized women, the elite and the middle class and awakened a sense of national spirit all over the nation. Negating the logic of the political concept that no nation could be created without war, Gandhi was instrumental in forging a new nation without an armed conflict and through non-violent methods, thus setting a model to the many emerging nations. Just as the methods of resistance are different, the political nature of the new nation is also unique and "distinct from alternative political models such as Anglo-Saxon liberalism, French republicanism, aesthetic communism and Islamic theocracy"[3]. Though the urgency of the moment was the political independence, but it was imperative to unite the masses of the country. Gandhi's role was essential to mobilize these masses for an unified national identity "but this mobilization could never be achieved", as Partha Chatterjee observes, "because it required the intervention of a political genius and spellbinding of a Gandhi"[4]. Therefore a revival of mythical past and a glorification of rural India, attempted by Gandhi himself, were requisite to arouse a cultural nationalism central to nationalist consciousness and to obliterate differences within the nation.

While colonialist writers like Sir John Stratchey and others could not even conceive the idea of a unified single nation with regard to India, it fell to the lot of Anglophone writers during 1940's to narrate the image of Gandhi and his dream of a nation and kindle the spirit of nationalism among the millions in the sub-continent. Indian novelists writing in English before independence came under the influence of Mahatma Gandhi as the dominating figure in the national movement. For most of the writers, Gandhi became an ideal person struggling against the colonizers through his revolutionary thoughts and actions. As K.R. S. Iyengar perceptively remarks:

> *Life could not be the same as before, and every segment of our national life—politics, economics, education, religion, social life, language and literature—acquired a more or less pronounced Gandhian hue. Thus it was that Gandhi exercised a potent influence on our language and literatures, both directly through his own writings in English and Gujarati and indirectly through the movements generated by his revolutionary thought and practice.*[5]

Thus being influenced by Gandhi, these novelists prioritized a representation of India breathing in unison, beyond the differences of language, caste, class and gender with its people joining to form one united front in resistance to the colonial rule. English though alien and the language of the colonizer, was the common language of the upper class elite who led the struggle. In India with its diverse linguistic communities, English served as a lingua franca among the educated. According to Benedict Anderson, "the convergence of capitalism and print technology on the fat diversity of human language created the possibility of a new form of imagined community, which in its basic morphology set the stage for the modern nation"[6]. Anderson emphasizes the role played by the printed novel and the newspaper in making the nation become aware of itself, enabling the citizens of a nation to form an imagined community in the midst of their diversity. The novel conveys the sense of "the solidity of a single community, embracing characters,

* Professor, Deptt. of English, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

authors, and readers moving onward through calendrical time"[7]. Thus these writers constructed the idea of the nation in an alien language in the early stages of the freedom struggle. But the novels written in alien language, consistent with the ideas conceived by Anderson contributed to the imagining of India as a nation, highlighting its unity in diversity. The novels of Raja Rao, Mulk Raj Anand and R.K. Narayan testify to the upsurge of mass movements for the freedom and to the role of the Mahatma which was the common and dominant factor of these upheavals. Writing in the midst of the political turmoil, these novelists could not ignore the diverse facets of the national movement and had to capture in their novels the various dimensions of the role and impact of Gandhi. The present paper attempts to analyse the power structures in the society and the representation of the role of Mahatma Gandhi and his relevance in the select novels of 'trio' in the pre-independence period.

I

Before independence, the role or impact of Gandhi is vigorously reflected in Raja Rao's maiden novel *Kanthapura* published in 1938. The story is based on a South Indian village divided into different sections according to caste and class and awakened to Gandhian principles and values through the intervention of an urbanized villager and Gandhian Moorthy. He was a representative of the nationalist students who went back to their native villages in the 1930's and strove to reform the social life of the villages and build miniature nationalist groups to resist the onslaughts of the foreign government. Gandhi, however, with his miraculous powers became a beacon of hope for Indian peasants with his call for social reform and self-sufficiency. As Claude Markovitz aptly observes that such hopes expressed themselves fully during non-cooperation, and even after its abandonment, "they remained linked in the minds of many to the person of Gandhi. They continued to burst forth sporadically during the 1920's, taking the form of localized agitations led by charismatic leaders who were seen as little Gandhis"[8].

Being inspired by Gandhian programme, Moorthy as a 'little Gandhi' was able to transform the mindset of the villagers who called him 'Big mountain' and 'small mountain'. Gandhi's ideas during the civil disobedience and non-cooperation movements had convinced such young people like Moorthy that religion and tradition held no barrier to political and nationalist movements and in fact these traditions could be invoked to mobilize the peasants to facilitate the social reform. In the novel, religion serves as a link between urban nationalism and the life and thoughts of the peasants. It was appropriate that Gandhi was introduced as a larger than life image, with the depth of influence he had over the masses and the decisive role he played in incorporating the peasants into the nationalist movement and in transforming the village life.

Raja Rao's treatment of Gandhian ideology is also very much evident in his biography *The Great Indian Way* apart from his fiction *Kanthapura*. Despite his sojourn in France, he was an Indian by heart in his portrayal of Gandhi which belongs to the category of "reverential ideology"[9]. However, in the foreword to the novel *Kanthapura*, Rao indicates that the Mahatma had become part of the 'Sthala-purana' of the village, just like Ram or Sita had been incorporated into the legendary histories of Indian villages, only because they had passed by these villages. It is the reason that Gandhi even without his physical presence in the village, had become such a mythical figure, and was given a status similar to that of gods and goddesses. When the carts brought goods to the village fair at Kanthapura, pictures of the Mahatma were mixed with that of Rama, Krishna and Sankara, testifying to the divine status given to Gandhi in these villages. In fact the novel exemplifies how the nationalist movement used traditional rituals and patterns of religious belief to serve political interests. When Moorthy was very young, he had a vision of God Hari and that holy vision got merged with one he had of Gandhi. It was a magical and reconstructing experience for him because he ultimately became a true Gandhi follower:

> *Mahatma patted him on the back, and through that touch was revealed to him as the day is revealed to the night the sheathless being of his soul… And he wandered about the fields and the lanes and the canals and when he came back to the college that evening, he threw his foreign clothes and his foreign books into the bonfire, and walked out, a Gandhi's man.*[10]

Here Gandhi's image and effect is obvious which transforms Moorthy and later reconstructs the village life. The change that the village undergoes is mirrored in the narrator, Achakka, who changes from an orthodox naïve Brahmin grandmother to a secular and open-minded narrator and can easily connect with her readers, even when her belief in Goddess

Kenchamma remains unwavering. Apart from Achakka, many peasant women irrespective of their caste and class, are inspired by Gandhi's political call for freedom. As Madhu Kishor observes "While for the mass of women it meant spinning and weaving, the well-to-do women were exhorted not only to give up their foreign finery but also to don Khadi, which purified both the body and soul"[11].

Gandhi's concept of 'Sarvoday' finds its repercussions in his attempts to include the pariah community into the mainstream, introduction of spinning wheel and rejection of foreign clothes. Gandhi's much acclaimed Dandi march against the new salt law and the subsequent Civil Disobedience movement are the main historical events which parallel the many incidents in the novel *Kanthapura*. The women like Rangamma and Ratna represent the newly awakened Indian rural women inspired by nationalist fervour under Gandhian movement. Though Gandhi himself believed that non-violence is the inherent quality of women and as they sacrifice for the family in the same way they can learn to make sacrifices for the country. Even though they had never met Gandhi but a awakening transformed the women of Kanthapura too, and it was the result of Gandhi's miracle working through Moorthy. These women were the first to follow Moorthy when the 'Don't Touch the Government' campaign began. As Rangamma cries out against the colonizers:

> *Now, sisters, forward! and we all cry out, Mahatma Gandhi Ki Jai! Mahatma Gandhi ki Jai! and we deafen ourselves before the onslaught, and we rush and we crawl, and swaying and bending and crouching and rising. We move on and on, and the lathis rain on us*[12].

In this way, Gandhi as Moorthy inspired the women of Kanthapura and many other villages to break the shackles of age-old orthodoxy and superstitions courageously and transform themselves into "something that the urban intellectual can easily understand and empathise with"[13].

Gandhi's intervention in the nationalist politics monopolized by urban elite as the 'movement of manoeuvre' was important to include the peasants into the national movement. This inclusion was essential to give a new shape to the movement, a sense of whole scale participation, which would help in the negotiations with the Britishers. In *Kanthapura*, this 'moment of manoeuvre' is highlighted with the political mobilization of peasant women and untouchables, exercising the name and guidance of Gandhi. The dull and illiterate village society got a rude shock and underwent a drastic change with the advent of Gandhism in their turmoil. This change was spontaneous and natural especially in the case of women who whole-heartedly participated in the village movement to get freedom. As the narrator Achakka points out:

> *But how can we be like we used to be? Now we hear this story and that story, and we say we too shall organize a foreign- cloth bycott like at Sholapur, we too, shall go picketing cigarette shops and toddy shops, and we say our Kanthapura, too, shall fight for the Mother*[14].

What Shahid Amin remarks in this context about the influence of Gandhi on every person is true "Gandhi, the person, was in this particular locality far less than a day, but the Mahatma as an idea was thought out and reworked in popular imagination in subsequent months"[15].

II

Among the 'trio', Mulk Raj Anand has also been heavily influenced by Gandhi as is pronouncedly reflected in his novel *Untouchable*. The main protagonist Bakha, being influenced by Gandhi is curious to get a glimpse of the Mahatma. As the novelist narrates "The word Mahatma was like a magical magnet to which he, like all the other people about him, rushed blindly"[16]. Bakha, the untouchable, was among the crowd hurrying to see and hear the Mahatma, and he was exhilarated like the rest. They hoped that Gandhi would show them a way out of their oppression. Anand presents their eagerness and expectations vividly as they think that the Mahatma would bring a new dawn to them and rescue them from their condition of indolence and subjection. But Bakha's excitement did not last long because he felt that his caste alienated him from other people as "an inseparable barrier between himself and the crowd"[17]. The Mahatma was the only common factor which made the crowd one. Anand presents Bakha's dilemma and his hope for the future in the following lines:

> *Gandhi alone united him with them, in the mind, because Gandhi was in everybody's mind, including Bakha's. Gandhi might unite them really. Bakha waited for Gandhi.*[18]

It is obvious that as in Kanthapura, Gandhi is the rallying cry for the masses, the unifying factor for the

different sections in the society, including the oppressed and marginalized. It is the reason that Partha Chatterjee has interpreted Gandhi's intervention as the moment of manoeuvre in the long march of the freedom struggle because Gandhi has the mission to gather the masses and enthrall them to ensure their participation in the national movement.

According to Anand, any attempt to weaken the national party would only undermine national unity and consequently India's attempt at decolonization would be negatively affected. So the incorporation of the minorities and outcastes into the national movement was necessary to create a sense of unified India even at the expense of their interests and demands. Anand's novel tentatively offers the solution of technology to the problem of untouchability, but presupposes a liberated nation. National liberation was of primary importance as Gandhi himself had emphasized, "Full and final removal of untouchability… is utterly impossible without swaraj"[19].

But what is remarkable in *Untouchable* about Gandhian ideology is inconsistencies in his attitude towards the untouchables. Due to this, the European educated Mohammedans condemn Gandhi as a hypocrite, a sentiment shared by Ambedkar. The same inconsistencies make Bakha confused when he listens to the Mahatma, only one step away from Krishan's judgement in Anand's autobiographical novel *The Bubble* that the Mahatma is a failure. It is Anand's socialist leanings and his early association with Bloomsbury group that compels him to pass this judgement on Mahatma Gandhi. As Rosenmary George remarks "Anand's hope for a socialist future takes over the narrative and is coupled with a very clear authorial distancing from the Gandhian position on caste"[20]. It is obvious that despite the ambiguities in the Mahatma's perspective regarding caste, Anand could not ignore the image of Gandhi which remained dominant in Bakha's mind even at the end of the novel keeping in view his involvement in the national movement.

III

R.K. Narayan's *Waiting for the Mahatma*, though published after independence in 1955, is a fictional text in which Gandhi appears again as a dominant character. Like Raja Rao and Anand, Narayan was not politically involved in the freedom struggle and mostly remained confined in his South Indian town Malgudi. Though the novel is set in the Malgudi town but the sedate world of Malgudi encounters turmoil and disorder with the arrival of Mahatma Gandhi. The transformation that the main protagonist Sriram undergoes is a manifestation of this turbulence which is indicative of the profound changes that happen at the national level. Narayan presents the exposure of remote villages of South India to Gandhian ideals through the minor events that happen in the life of Sriram. These personal incidents are linked with the events of national significance like Gandhi's social and political activities apart from 'Quit India Movement' and the Gandhi's assassination.

Like Raja Rao's *Kanthapura*, in *Waiting for the Mahatma*, the national movement is depicted through the perspective of a single character. In *Kanthapura*, the main protagonist is not significant in himself but only in relation with the movement. But in Narayan's work, the national movement serves the interest of the protagonist as Gandhi is a means to fulfill Sriram's dream of marrying Bharati. It is the reason that he becomes active under Gandhian influence as Meenakshi Mukherjee points out "in the familiar setting of Malgudi Sriram sleeps and eats, sits in his arm-chair, and walks smugly in his circumscribed universe, until suddenly he wakes up in a different world when the Mahatma and his followers came to his town"[21].

Though the narrative moves through Quit India Movement to India's independence and partition to Gandhi's assassination historically but highlights Sriram's changes in Gandhi's presence. Sriram's small world is juxtaposed with the vast canvas of Gandhian nationalism. He encounters the larger world during a train journey to New Delhi, on his way to meet Bharati. He is surprised to meet so many different people, speaking different languages and in this way gets a glimpse of the nation and its diversity. That crowded, congested compartment while traveling becomes a miniature of the Nation but Sriram is not particularly thrilled by his experience. What Narayan seems to suggest ironically is that an awareness of the nation is not always an exhilarating experience in comparison to Sriram's own transformation to Gandhian methods. According to Priyamvada Gopal "the novel does take the question of personal transformation seriously as its protagonist attempts to evolve from Malgudi delinquent to Gandhi-man and eventually, dedicated citizen of independent India"[22]. This change is obvious in the beginning when Sriram

was influenced by Gandhi for his personal purposes but later on he became Gandhian and is unhappy when Gandhi leaves his village as "the thought of having to leave a mundane existence without Mahatmaji appalled him"[23]. This proves the Mahatma's image and his unique ability to reach into the hearts of the people and transform them even inactive persons like Sriram.

However, the main thrust of the novel is on the humanistic ideals rather than the political and Narayan also uses comic irony to give a new dimension to the characters and events. Though with the realistic presentation of events and people, Narayan does not only focus on Gandhi's political activities but also on Gandhi's role as 'Mahatma' and his relevance in personal relationships.

Thus the fictional narratives of Raja Rao, Anand and Narayan have not only captured the image and role of Gandhi who was the main inspiring force behind the mass movements but also his personality as 'Mahatma'. Situated in the context of these insurrections, their novels foreground the multiple dimensions of the national movements and the germinal impact of the Gandhi. Though in Raja Rao's *Kanthapura* and Anand's *Untouchable*, Gandhi's socio-political relevance is narrated and accordingly his image distinctly established whereas in Narayan's *Waiting for the Mahatma*, his role is affirmed adequately on personal level. However, the rare political prodigy of Mahatma Gandhi and his socio-cultural acumen in uniting the masses, as reflected in these select novels, make his role heroic apart from his altruistic and humanitarian nature as father of a nation which is still a model to decipher the riddle of life and contemporary national issues of the world.

Works Cited

1. Anderson, Benedict. *Imagined Communities.* London: Verso, 2006, P. 6, Print.
2. Chatterjee, Partha. *Nationalist Thought and the Colonial World: A Derivative Discourse.* New Delhi: Oxford University Press, 1999, P. 125, Print.
3. Guha, Ramchandra. *Gandhi Before India.* New Delhi: Allen Lane, 2013, P. 758, Print.
4. Chatterjee, Partha. P. 150.
5. Iyengar, K.R.S. *Indian Writing in English.* New Delhi: Sterling Publishers Pvt. Ltd., 1985, rpt. 2011, P. 248-49, Print.
6. Anderson, Benedict. P. 46.
7. Ibid. P. 27.
8. Markovitz, Claude. *The Life and After Life of the Mahatma.* New Delhi: Permanent Black, 2004, P. 142, Print.
9. Sethi, Rumina. *Myths of the Nation: National identity and Literary Representation.* New Delhi: Oxford University Press, 1999, P. 87, Print.
10. Rao, Raja. *Kanthapura.* Gurgaon: Penguin India Pvt., 2014, P. 39, Print.
11. Kishor, Madhu. "Gandhi on Women". *Debating Gandhi: A Reader*, Ed. A. Raghuramaraju. New Delhi: Oxford University Press, 2006. P. 282, Print.
12. Rao, Raja. *Kanthapura.* P. 159.
13. Shingavi, Snehal. *The Mahatma Misunderstood: The Politics and Forms of Literary Nationalism.* London: Anthem Press, 2014. P. 95, Print.
14. Rao, Raja. *Kanthapura.* P. 149.
15. Amin, Shahid. "Gandhi as Mahatma: Gorakhpur District, Eastern U.P. 1921-22." *Selected Subaltern Studies*, Ed. Ranjit Guha and Gayatri Chakravorthy Spivak. New York and Oxford: Oxford University Press, 1988, P. 289, Print.
16. Anand, Mulk Raj. *Untouchable.* New Delhi: Penguin Books India, 2001. P. 126, Print.
17. Ibid. P. 128.
18. Ibid. P. 128.
19. Gandhi, M.K. *The Collected Works of Mahatma Gandhi*, 97 Vols. New Delhi: Publications Division 1958-1994. P. 61: 166, Print.
20. George, Rosenmary Marangly. *Indian English and the Fiction of National Literature.* Cambridge: Cambridge University Press, 2013. P. 97, Print.
21. Mukherjee, Meenakshi. *The Twice Born Fiction.* New Delhi: Pencraft International, 2001. P. 48, Print.
22. Gopal, Priyamvada. *The Indian English Novel: Nation, History, and Narration*. Oxford: Oxford University Press, 2009. P. 56, Print.
23. Narayan, R.K. *Waiting for the Mahatma.* New Delhi: Penguin, 2010, P. 72. Print.

●

''प्रज्ञा'' पत्रिका अंक 65, भाग 1, वर्ष 2019–20 का लोकार्पण करते हुए कुलपति प्रो. राकेश भटनागर
एवं मुख्य सम्पादक, प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय
स्थान एवं दिनांक – कुलपति आवास, 25 जनवरी 2020

लोकार्पण के उपरान्त लिया गया चित्र (फोटो)
मध्य में – कुलपति, प्रो. राकेश भटनागर
कुलपति के दायें– प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय, मुख्य सम्पादक, **'प्रज्ञा'** जर्नल, प्रो. जय शंकर झा, अंग्रेजी विभाग;
प्रो. मिथिलेश कुमार पाण्डेय, अंग्रेजी विभाग एवं प्रो. आनंद प्रसाद मिश्र, भूगोल विभाग
कुलपति के बायें– डॉ. ज्ञान प्रकाश मिश्र, पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग एवं प्रो. सदाशिव कुमार द्विवेदी, संस्कृत विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
BANARAS HINDU UNIVERSITY

सर्वविद्या की राजधानी

विश्वविद्यालय के उद्देश्य

1. अखिल जगत् की सर्वसाधारण जनता के एवं मुख्यतः हिन्दूओं के लाभार्थ हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत साहित्य की शिक्षा का प्रसार करना, जिससे प्राचीन भारत की संस्कृति और उसके विचार-रत्नों की रक्षा हो सके, तथा प्राचीन भारत की सभ्यता में जो कुछ महान् तथा गौरवपूर्ण था, उसका निदर्शन हो।
2. साधारणतः कला तथा विज्ञान की समस्त शाखाओं में शिक्षा तथा अन्वेषण के कार्य की सर्वतोन्मुखी उन्नति करना।
3. भारतीय घरेलू धन्धों की उन्नति और भारत की द्रव्य-सम्पदा के विकास में सहायक आवश्यक व्यावहारिक ज्ञान से युक्त वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक शिल्प कलादि सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार और प्रसार करना।
4. धर्म तथा नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर नवयुवकों में सुन्दर चरित्र का गठन करना।

OBJECTIVES OF THE UNIVERSITY

1. To promote the study of the Hindu Shastras and of Samskrit literature generally as a means of preserving and popularizing for the benefit of the Hindus in particular and of the world at large in general, the best thought and culture of the Hindus, and all that was good and great in the ancient civilization of India;
2. To promote learning and research generally in Arts and Sciences in all branches;
3. To advance and diffuse such scientific, technical and professional knowledge, combined with the necessary practical training as is best calculated to help in promoting indigenous industries and in developing the material resources of the country; and
4. To promote the building up of character in youth by religion and ethics as an integral part of education.